एक और कबीर

चौधरी चरणसिंह का जीवन चरित्र

राजेन्द्रसिंह

लगभग छः सौ वर्ष पूर्व हुए कबीर साहब ने जाति–पाति और धार्मिक पाखण्ड पर तीखा आक्रमण किया और जन–जन के मानस पटल पर छा गये....

बीसवीं सदी के प्रारम्भ में जन्म लिया एक और कबीर ने, जो चरणसिंह के नाम से जाने गये। इस कबीर ने जाति–पाति और धार्मिक कट्टरता के अतिरिक्त, राजनीति के सौदागरों पर जम कर प्रहार किया। भले ही इसके कारण उन्हें भारी हानि उठानी पड़ी।

'चौधरी साब' और **'किसान मसीहा'** नाम से प्रसिद्ध हुए चरणसिंह का व्यक्तित्व अलबेला था। सादा किन्तु सुन्दर, भव्य, विराट, अभेद्ध, अनौपचारिक, कर्मठ, लगनशील और ग्रामीण जन के प्रति समर्पित। जैसा सार्वजनिक जीवन, वैसा ही निजी जीवन।

गांधी और पटेल के बाद, भारतीय संस्कृति के वाहक थे चौधरी साब। कुछ मुद्दों पर तो अपने गुरू गांधी जी से भी एक कदम आगे। इसलिए वे स्वयं शिखर थे। शिखर पर थे, इसलिए अकेले ही नजर आते। लेकिन जनप्रवाह उनके पीछे रहा। यही कारण है कि कथित बुद्धिजीवि बार बार उनकी राजनैतिक मौत की घोषणा करते रहे और वे अधिक शक्तिशाली होकर उभरते रहे। भारतीय राजनीति में अद्भुत रूप से अलग दिखने वाले।

सन् 1937 से 1987, 50 साल का अन्तराल इन पचास वर्षों में पहले यू.पी. में और बाद में राष्ट्रीय स्तर पर राजनीति में केन्द्र–बिन्दु रहे। अपार लोकप्रियता मिली तो लांछन और विरोध भी। अभिजात वर्ग ने हमेशा उनका मजाक उड़ाया। चौधरी साब ने पता नहीं क्या कुछ सहा, विषपान किया, लेकिन ग्रामीण भारत को 'इण्डिया' के आगे

निरन्तर......

आदरणीय श्री कबीरसिंह जी

को

सप्रेम भेंट.

[illegible]सिंह

28.10.99.

एक और कबीर

चौधरी चरणसिंह का जीवन-चरित्र

प्रथम खंड (फरवरी 1968 तक)

राजेन्द्रसिंह

कलम प्रकाशन, जयपुर

अपनी बात

कभी नहीं सोचा था कि एक दिन मुझे किसान मसीहा, भारत के महानायक चौधरी चरण सिंह की जीवनी लिखनी पड़ेगी। वास्तव में मैं कबीर पर कोई पुस्तक लिखना चाहता था, किन्तु लिखी गई 'एक और कबीर'। इसके पीछे भी एक कहानी है। जुलाई 1992 में, एक भयानक हादसे में मैं दाहिना हाथ और पैर तुड़वा बैठा था। हाथ बुरी तरह टूट गया था और पैर में कुल्हे की हड्डी में फ्रेक्चर था। इस कारण चार माह तक पूरे शरीर पर प्लाटर चढ़ गया था। बेहद पीड़ाजनक स्थिति में, तख्त पर चित लेटे रहना पड़ा। नींद तो आठ माह तक नियम से आई नहीं। न दिन में चैन था, न रात को नींद। पलकें मूंदे, विचारों में डूबकर, इस कष्ट को भुलाने का यत्न करता था। हाथ का प्लास्टर तो एक साल बाद ही साथ छोड़ सका।

ऐसी पीड़ाजनक स्थिति में समय कैसे बीते? टेलीविजन देखने का मन नहीं करता था। रेडियो एक मात्र सहारा था. इस पर मैं प्राय: ही भजन सुनता रहता था। तब मैं रातों रात नास्तिक से आस्तिक बन गया था। विशेष रूप से कबीर के पद सुनकर मैं सारी पीड़ा भूल जाता। इसी दौरान, मैं तख्त पर पड़े-पड़े, बाबरी मस्जिद गिराने की घटना भी सुनता रहा। मेहनतकश वर्ग को, हिन्दू-मुस्लिम में बाँटने वालों का यह कारनामा था। इस हमाम में सभी राजनैतिक पार्टियां नंगी थी।

इस घटना के बाद, कबीर साहब मेरे लिए अधिक प्रासंगिक हो गये थे। तभी मन बना लिया था कि ठीक होने पर कबीर पर कुछ लिखूंगा। चलने-फिरने के बाद, मैं सामग्री जुटाने में लग गया। इसी दौरान चौधरी चरणसिंह पर लिखे गये कुछ लेखों, संस्मरणों पर भी मेरी नजर पड़ी। उनके जीवन के अनेक प्रसंग मर्मस्पर्शी थे। उनकी ईमानदारी, फक्कड़पन, अक्खंडता, कठिन परिश्रम, सादगी, दृढ़ विश्वास, माया के प्रति विरक्ति, सब पढ़कर अनुभव हुआ कि ये सब तो कबीर के ही गुण हैं। मानों एक और कबीर ने नूरपूर की झौंपड़ी में जन्म लिया था। बदलती परिस्थितियों में उन्होंने राजनीति का भी सहारा ले लिया था।

कुछ मित्रों ने विशेष आगृह किया कि पहले चौधरी साब पर ही लिखा जाये। उनके तर्क में वजन भी था कि कबीर पर तो बहुत कुछ लिखा गया है, लेकिन चौधरी साब पर अभी तक इस दिशा में गंभीर प्रयास नहीं हुए हैं। जितना मैं देख पाया या समझ पाया, उससे चौधरी साब के प्रति मेरी भी अनुरक्ति थी। इन सब कारणों से मैं गंभीरता से अपने प्रयास में जुट गया।

किसान ट्रस्ट के बारे में मैंने पहले ही सुन रखा था। पत्र डालकर चौधरी साब द्वारा लिखी

गई पुस्तकों बाबत पूछताछ करनी चाही। किन्तु मुझे कोई उत्तर नहीं मिला। शायद मेरा पत्र सही हाथों में नहीं पहुंचा। मुझे कुछ निराशा भी हुई। तब मैंने राजस्थान के पूर्व मंत्री और विधायक डा. चन्द्रभान से सम्पर्क किया। उन्होंने मुझे चौधरी अजितसिंह के निजी सचिव श्री रामअजोर का नाम बताया और सलाह दी कि मैं उनसे मिलूँ।

मैंने श्री रामअजोर से पत्र व्यवहार किया तो ज्ञात हुआ कि चौधरी साब की समस्त फाइलें तीन मूर्ति भवन के पुस्तकालय में रखी हुई हैं तथा उनके द्वारा लिखित पुस्तकें किसान-ट्रस्ट में उपलब्ध हैं।

तब मैं मार्च 1995 में सक्रिय होकर इस कार्य में जुट गया। किसान ट्रस्ट से उपलब्ध पुस्तकें एकत्रित की। एक डेढ साल में तीन बार तीन मूर्ति पुस्तकालय में गया। विभिन्न फाइलों को पढ़ा, आवश्यक नोट लिये तथा फोटो प्रतियां भी साथ लाया।

किन्तु यह सब इतना आसान नहीं था। समय और धन का मेरे लिए विशेष अर्थ था। एक बड़ी रुकावट बना रहा-मेरा खराब स्वास्थ्य। दो दिन घर से बाहर रहने पर बीमार पड़ना जैसे एक क्रम बन गया था। तब कुछ दिन अत्यंत निराशा के थे। सोचा, क्या इस चुनौतीपूर्ण कार्य को पूरा करने की शक्ति भी है?

निराशा के इन्हीं दिनों में एक दिलचस्प वाकया घटित हो गया। उस रात मैं सोया हुआ था कि देखता हूँ, चौधरी साब मेरे समीप एक कुर्सी पर बैठ गये हैं। वे मुस्कराकर पूछ रहे हैं, "बस, इतने में घबरा गये? मेहनत करने से डरते हो?"

मैं चुपचाप उन्हें देख रहा हूँ। कुछ बोलना भी चाहता हूँ, किंतु आवाज मानों चूक गई है। तब चौधरी साब अपनी चिर-परिचित अदा में मुस्कराकर कहते हैं, "काम में जुट जाओ बरखुरदार! सब ठीक होगा।" मैं शायद उनके चरण स्पर्श करना चाहता हूँ, तभी आंख खुल गई।

यह क्या हो गया? मैंने लाईट जलाकर देखा। रात का डेढ़ बजा था। प्रख्यात कथाकार अमृताप्रितम की एक पुस्तक की याद हो आई, जिसमें अलौकिक सपनों का वर्णन है। उन्होंने सपनों को भावी घटना का संकेत माना है। कह नहीं सकता कि उस पुस्तक के पढ़ने का प्रभाव था या निरन्तर सोचने की प्रवृत्ति के कारण, मुझे यह सपना आया।

कहा जाता है कि बाबा तुलसीदास ने जब 'रामचरित मानस' लिखना शुरू किया तो अनेक विघ्न शुरू हो गये थे। तब उन्होंने सबसे पहले इन विघ्न डालने वालों की पूजा की। विनती की, कि शुभ कार्य में रुकावट न डालें। किंतु मेरे लिए तो ये राक्षस अदृश्य थे। मेरा स्वास्थ्य ही मेरा दुश्मन था। अपने अस्वस्थ शरीर को इसी संदर्भ में देखा। बारह बजे के बाद मंगलवार शुरू हो चुका था। मेरी नजर आल्मारी में स्थित हनुमानजी की मूर्ति पर पड़ी। मन ही मन प्रणाम कर मैं गा उठा-

'दुगर्म काज जगत के जेते।
सुगम अनुग्रह तुम्हरे तेते॥
नासै रोग हरै सब पीरा।
जपत निरंतर हनुमत वीरा॥'

मेरा हौसला बढ़ा कि मंगलवार का शुभारम्भ चौधरी साब के आशीर्वाद के साथ हुआ है। शायद हनुमानजी की ही कृपा रही हो। काफी देर तक सोचता रहा। दूसरे ही दिन मैं दिल्ली के लिए चल पड़ा था।

दूसरा सपना मुझे दिल्ली में आया था। उस दिन रविवार था। कहीं आना-जाना नहीं था। पड़े पड़े सोच रहा था कि अजित सिंह के अतिरिक्त, मुझे चौधरी साब के परिवार से सहयोग नहीं मिल रहा है। इस विचार का कोई कारण नहीं था। शायद मेरा भ्रम हो। ऐसे ही भ्रम में खोया हुआ, साउथ ऐवेन्यू में, अपने एक मित्र के कमरे में लेटा हुआ था। आंख लग गई। देखता हूं, चौधरी साब धीरे धीरे आ रहे हैं। चेहरे पर गंभीरता। वे आकर फर्श पर ही मेरे सिरहाने की ओर बैठ जाते हैं। दोनों

हाथों से मेरा सिर सहला रहे हैं। उनके चेहरे से मेरे लिए स्नेह टपक रहा था। मैं मानो लज्जा से गड़ा जा रहा हूँ। तभी मेरी आंखें खुल जाती हैं। मैं कहां हूँ? छत की तरफ आंखें टिमटिमाकर देखता हूँ। कमरे के दरवाजे की ओर देखता हूँ। वह तो बन्द है। इधर-उधर देखा, चौधरी साब कहां गये! तब अनुभव हुआ, यह तो सपना था। मात्र पांच मिनट में यह सब कुछ हो गया।

यह जुलाई का महीना था। सपने के बाद गर्मी में ही मैं 12 तुगलक रोड़ की ओर चल पड़ा। मुझे कोई झिझक नहीं हुई । घंटी बजाकर मैंने माताजी से मिलने की इच्छा प्रकट की। चौधरी साब की बेटी वेदवती ने मुझे बैठाया। थोड़ी देर बाद ही माताजी के दर्शन हो गये।

एक बड़े हाल में माताजी से बातें कर रहा था। सामने की दीवार पर चौधरी साब का एक बड़ा सा चित्र लगा हुआ था। वे एक विशाल जनसभा को हाथ उठाकर सम्बोधित कर रहे थे। मैं भावविह्वल हो गया। माताजी के करीब बैठा, मैं सोच रहा था-चौधरी साब किसी कोने से प्रकट हो मुझे डांटेंगे-तुम तो आने से डर रहे थे। क्या किसी ने तुम्हें कुछ कहा है? दूसरे ही क्षण समझ में आया, अब तो चौधरी साब सपनों में ही आ सकते हैं। बहुत देर तक माताजी से मैं बातें करता रहा।

इन दोनों सपनों में एक समानता थी। निराशा के क्षणों में ही दोनों सपने आये। उसके बाद मुझे बार बार लगता रहा कि चौधरी साब की तिक्ष्ण दृष्टि मेरा पीछा कर रही है। जिस कमरे में बैठकर यह पुस्तक लिखता रहा हूं, उसमें तीन ओर, दीवारों पर चौधरी साब की तस्वीरें लगी हुई हैं। लिखते लिखते थक जाता तो कुछ देर आराम करने की नियत से लेट जाता। सहसा ही मेरी नजर उनकी तस्वीर पर पड़ती। मुझे लगता, वे मुझे घूर रहे हैं और कह रहे हैं-तुमतो थोड़ी सी मेहनत से थक जाते हो। तुम्हारी आयु में मैं तो मात्र चार घंटे सोता था। तब मैं चौंककर उठ बैठता और लिखने की मेज पर जम जाता। इसी कारण मैं यह पुस्तक शीघ्र लिख सका। हाँ, बाद में मुझे कोई सपना नहीं आया।

एक बात और। आदतन मैं धुम्रपान नहीं करता। किन्तु लिखते-पढ़ते समय मानों मन को हल्का करने के लिए कभी कभार शौक के तौर पर धुम्रपान कर लेता हूँ। उस दिन धुम्रपान करते हुए मेरी नजर उनके चित्र पर पड़ गई। अचानक ही मैं अपराध-बोध से ग्रसित हो गया। मुझे अनुभव हुआ कि चौधरी साब मंद मंद मुस्कराते हुए मुझे देख रहे हैं और कह रहे हैं,-बच्चू मेरी जीवनी लिख रहे हो किन्तु आदत नहीं सुधार सकते! उसके बाद धूम्रपान करने की हिम्मत नहीं हुई। उनमें मेरी आस्था ही मेरी प्रेरणा रही और तभी यह अत्यधिक श्रम का कार्य पूरा हो सका। सुधि पाठक, उनकी जीवनी से कितना कुछ ग्रहण कर सकेंगे, यह तो बाद में पता चलेगा। हां, मेरे लिए तो उनका आदर्श ही मेरा पारिश्रमिक है।

यह तो हुई सपनों की बात। इस लौकिक संसार में भी खट्टे-मिट्ठे अनुभव हुए। संयोग था कि जब मैं इस मिशन में पूरी तरह जुटा, उससे कुछ ही पूर्व अजितसिंह केन्द्रीय मंत्री बने थे। शुभचिंतकों और मित्रों ने नेक सलाह दी, कि मुझे जल्दी से जल्दी यह पुस्तक लिखनी चाहिए ताकि अजितसिंह से फायदा उठाया जा सके। कभी भी चुनाव घोषित हो सकते हैं। कांग्रेस की सरकार दुबारा नहीं बनेगी, इसकी भविष्यवाणी सभी कर रहे थे। उनका अभिप्राय था कि मंत्री परिषद् में रहते हुए वे मेरी अधिक आर्थिक सहायता करवा देंगे। अवसर नहीं चूकना चाहिए।

इसके लिए बहुत सरल तरीका था। लेख-संस्मरण मैंने जुटा लिये थे। छोटी-मोटी जीवनी पुस्तक भी मिल गई थी। अखबारों से सामग्री ले ली थी। इन सबको मिलाकर आराम से एक और पुस्तक तैयार हो जाती। तब अजित से मिलकर जल्दी से पुस्तक छपवा ली जाये। बस, मेरी ड्यूटि खतम। किन्तु जब मैं इस दिशा में आगे बढ़ा और चौधरी साब को कुछ समझा, तो लगा कि क्या ऐसी जीवनी सही अर्थों में जीवनी होगी भी? इस वृत्तान्त मात्र से, तब क्या उस महामानव के प्रति न्याय होगा? क्या चौधरी साब मात्र राजनीतिज्ञ थे? मेरा उत्तर है, नहीं। राजनीति तो उनकी मजबूरी थी। वास्तविक रूप से वे राजनैतिक संत थे, समाज सुधारक थे, ग्रामीण भारत के उद्धारक थे।

बदलते युग में राजनीति में आना समय की मांग थी। किन्तु राजनीति में रचना-बसना उनके स्वभाव में नहीं था। इसलिए उनके वास्तविक चरित्र को सामने लाना आवश्यक था। यह जल्दबाजी में संभव न था। फिर भी स्वीकार करता हूँ कि उनके वास्तविक रूप को मैं सम्पूर्ण रूप से खोज भी नहीं पाया हूं। इसके लिए मेरी कुछ मजबूरियाँ थी। फिर भी मेरा यह वायदा है कि अगले भाग में मैं काफी अनछुए प्रसंग तलाशने का प्रयास करूंगा। उन्हें यथास्थान सजाने की भी चेष्टा करूँगा।

नई दिल्ली तो राजनीति या सत्ता की महारानी है। वहाँ राजनीति के अतिरिक्त कुछ सूझता ही नहीं। कौन विश्वास करेगा कि मेरा जैसा व्यक्ति निजस्वार्थ के परे भी, इन विशाल कोठियों के चक्कर लगायेगा। ऐसा हुआ भी था। कुछ कथित लेखक चौधरी साब पर लिखने हेतु इधर-उधर मंडराये और अपने व्यक्तिगत स्वार्थ साधकर छूमंतर हो गये। इसका खामियाजा मुझे भी भुगतना पड़ा। कोई सीधे मुंह बात करने को भी तैयार नहीं। एक सज्जन ने सीधा प्रश्न किया, "अजितसिंह के मंत्री बनने के बाद ही आपने जीवनी लिखने का विचार कैसे किया? चौधरी साब को दिवंगत हुए ही आठ-नौ साल हो चुके हैं। यह विचार आपके मन में पहले क्यों नहीं आया?"

मैं उनकी भावना समझ रहा था। मैंने अपनी सफाई में यही कहा कि लिखना किसी योजना के अन्तर्गत नहीं हो सकता। यह लेखक के अन्दर उपजी प्रेरणा से ही संभव होता है। बातों ही बातों में चौधरी साब के बारे में, कुछ पुराने प्रसंगों की मैंने चर्चा कर डाली। तब उन सज्जन को विश्वास हो गया। बाद में उन्होंने मेरी भरपूर सहायता की।

अजीब संयोग है कि इन पंक्तियों को लिखते समय, अजित सिंह मंत्री परिषद में नहीं हैं। आगे क्या होगा, कह नहीं सकता। मेरे शुभचिंतक इस मामले में, मुझे एक असफल लेखक कह सकते हैं। किन्तु मेरा प्रश्न है कि ऐसे मामलों में क्या चौधरी साब भी सफल राजनीतिज्ञ थे?

मेरा शुरू से विचार था कि अजित सिंह से मैं उचित समय पर मिलूंगा। विस्तार से बातें होंगी; और वो समय जब आया, चुनाव घोषित हो चुके थे।

इसके अतिरिक्त तीन-मूर्ति पुस्तकालय में भी कई दिलचस्प बातें सामने आई। यहां शौध करने वाले दूर दूर से आते हैं। मुझे बताया गया है कि एशिया का यह सबसे बड़ा शौध संस्थान-पुस्तकालय है। जब किसी को पता लगता कि मैं चौधरी चरण सिंह की जीवनी लिख रहा हूँ तो वे व्यंग्य से मुस्करा कर एक दूसरे की ओर देखते। उनका ख्याल था कि चौधरी के जीवन में ऐसा क्या था, जिसे लिखा जाये? एक ने मुझे पूछा भी, "चौधरी चरण सिंह पर ही लिखने का विचार आपके मन में कैसे आया?" मैंने पूछा, "क्या मुझे नेहरू, इंदिरा गांधी या राजीव गांधी पर ही लिखना चाहिये?"

मेरे प्रति प्रश्न से वह सज्जन जरा सकपकाये। लेकिन कहे बिना नहीं रहे, "चरणसिंह के जीवन में ऐसा क्या था? वह तो दल-बदलू और जातिवादी थे।"

अपनी आदत अनुसार मैंने पुन: प्रति प्रश्न किया, "आपने चरण सिंह को कितना पढ़ा है? आपतो वही रटी-रटाई बातें कह रहे हैं जो इस देश की प्रेस ने और एक विशिष्ट वर्ग ने फैलाई हैं।"

वे लज्जित हो बोले, "मैंने उनके बारे में पढ़ा नहीं है।"

मैं हंसकर बोला, "मेरी पुस्तक पढ़ने के बाद ही आप मुझे पत्र लिखियेगा।"

हाँ एक को छोड़कर किसी ने मेरी जाति नहीं पूछी। उन्हें मैंने जवाब दिया, "लेखक की जाति लेखक ही होती है।"

आगरा युनिवर्सिटी के एक रिटायर्ड प्रोफेसर को जब मेरे उद्देश्य का पता लगा तो वे अनेक प्रसंग सुनाकर चौधरी साब की प्रशंसा करने लगे। अन्त में बोले, "चौधरी साब में एक ही कमी थी।"

"वह क्या? मैंने उत्सुकता से पूछा।"

"वे जाटों को काबू में नहीं रख सके। उनके नाम से जाट जातिवाद पर उतर आये थे।"

"कोई एक-दो उदाहरण तो बताइये, जहाँ चौधरी साब ने जाटों का पक्ष लिया हो।"

वे बोले, "हम शाम को अलग बैठकर बातें करेंगे।"

किन्तु ऐसा अवसर उन्होंने नहीं दिया। हां यह अवश्य चाहते थे कि मैं उनके संस्मरण सम्मिलित करूँ। मुझे अनुभव हुआ कि प्रोफेसर साहब मात्र अपनी उपस्थिति पुस्तक में दर्ज कराना चाहते थे। उनके सुनाये वृत्तान्त मुझे प्रामाणिक नहीं लगे।

हाँ, एक अधिकारी का सुझाव था कि मुझे यहां अधिक समय देकर चौधरी साब की विस्तृत जीवनी लिखनी चाहिए। उन्होंने मेरे प्रयास की प्रशंसा की।

जवाहरलाल नेहरू विश्व विद्यालय के एक शोध छात्र का तो वही सुझाव था, "इससे तो बेहतर होता आप किसी वामपंथी नेता पर लिखते।"

तब उसी के एक साथी ने एतराज किया, "चरणसिंह को तुम कितना जानते हो! मैं अर्थ शास्त्र का शोध छात्र हूं। उनकी पुस्तक, 'भारत की भयावह आर्थिक स्थिति, कारण और निदान मैंने पढ़ी है।"

"लेकिन वह हमारे पुस्तकालय में तो नहीं है।"

सुनकर हम दोनों हंस पड़े थे।

नई पीढी चरणसिंह को अधिक से अधिक केन्द्रीय गृहमंत्री, वित्तमंत्री और प्रधानमंत्री के रूप में जानती है। यह मेरी गर्वोक्ति न समझी जाये। उनके विरुद्ध जहर उगलने वालों ने उन्हें जनता पार्टी का संहारकर्त्ता भी बना दिया है। यह भी हो सकता है कि उन्हें यू. पी. के मुख्यमंत्री के रूप में भी जाना जाता हो। किन्तु इससे तो महत्वपूर्ण वे यू. पी. के राजस्वमंत्री एवं गृहमंत्री के रूप में रहे। यह उनका स्वर्णकाल था। किन्तु राजनीति से हटकर जो चरणसिंह था, वही असली चरणसिंह था। चरणसिंह ही ऐसे नेता हुए हैं जो बहुत कुछ को अस्वीकार करने का साहस रखते थे। वे खेत की झौंपड़ी में पैदा हुए। गांव-खेत की माटी में बड़े हुए। ताल-तलैया, कीचड़ में खेले। किसान के पसीने की खुशबू को पहचाना। थोड़े बड़े हुए तो रामायण और महाभारत के किस्से सुने। कबीर, नानक, दादूदयाल के पद गाये। सचमुच के कबीर बन गये, आर्य समाज की पहचान के साथ।

और यही कबीर चरणसिंह, तब बोली के अक्खड़, स्वभाव से फक्कड़, घर फूंक मस्ती और लापरवाही, अपने सिद्धान्तों पर अखण्ड विश्वास, और माया ठगिनि से दूर भागने वाले बन गये। अपनी बात बिना किसी आवरण के कहते। जो सही लगता, कहकर ही मानते। रहन-सहन के बाह्य आकर्षण से विरक्त। सच्चाई, ईमानदारी और गजब की कर्मठता। गांव का गरीब उनका सच्चा सांई था तो गांव तीर्थ स्थल। यही उनमें और देश के बाकी नेताओं में बुनियादी अन्तर था। वे टूट सकते थे, किन्तु अपने विश्वास से झुक नहीं सकते थे। इस मायने में वे पक्के जाट थे।

राजनीति में वे कुछ लेने नहीं, देने आये थे। भयावह गरीबी का ताण्डव देख-भोग चुके थे। गांव और शहर में जमीन-आसमान का अन्तर था। सदियों से ग्रामीण समाज शोषित रहता आया था। स्वतंत्रता के बाद इसी असली भारत को वे और पिसता नहीं देख सकते थे। इसी के लिए वे आजीवन लड़ते रहे और किसी नुक्शान की परवाह नहीं की। देश का अभिजात्य वर्ग अंग्रेजों की जगह मालिक बन बैठा था। ग्रामीण भारत को जब-तब टुकड़े फेंकना ही उसने अपना पुनीत कर्तव्य समझ रखा था। किन्तु यहीं चौधरी साब का टकराव प्रारम्भ होता था। वे रात दिन इस उधेड़बुन में लगे रहते कि कैसे गांवों का कल्याण हो। तब, सता पर कुंडली मारे बैठे उच्च वर्ग ने; उन पर एक किस्म का 'हल्ला बोल' शुरू कर दिया था। दिल्ली से लेकर लखनऊ तक के सुबेदार अपने हथियारों की धार तेज करने लगे थे। उन पर अस्तित्व का संकट था, किन्तु चौधरी विचलित होने वाले सिपाई नहीं थे। मठाधीशों के चक्रव्यूह को उन्होंने समय समय पर तोड़ा और इन 'अवधूतों' को करारा जवाब दिया। उनके दोगलेपन को उजागर किया। बेशक, अनेक अवसरों पर वे राजनीति के हांसिये पर सरका दिये गये, किन्तु चरणसिंह को चौधरी बनने से नहीं रोक

सके। जनता को भरमाने वालों, स्वयंभू महान नेताओं पर उन्होंने कभी दया नहीं की।

होश संभालने के बाद, उन्हें कभी चैन नहीं मिला। कभी आराम से बैठने का समय नहीं मिला। जीवन संग्राम-स्थल था। इसलिए वे रात-दिन भागते रहे। अधिक भागदौड़ से बीमार पड़े तो खाट पकड़ ली। ठीक होते ही फिर राह पकड़ ली। ऐसे व्यक्ति की जीवनी लिखना निःसंदेह कठिन काम है। राजनीति में जो कुछ किया, वह तो उपलब्ध है किन्तु जो बैचेनी की दौड़ थी, उसके छोर को पकड़ना ही दुरूह कार्य है। गांव-किसान को समर्पित जीवन को खोजना ही सत्य को खोजना है। इस सत्य को तटस्थ भाव से पाठकों के सम्मुख रखना ही लेखक का पहला कर्त्तव्य है।

यदि उनके जीते जी, कोई जीवनी लिखने का प्रयास होता तो निश्चय ही सफल और आसान था। उनके साथ खाने-पीने, उठने-बैठने, बातचीत करने से काफी कुछ प्राप्त हो जाता। किन्तु अब जो लिखा जायेगा, वह अधिक तटस्थ, अधिक खुलकर लिखा जायेगा। जीवनी कोरा इतिहास या वृत्तान्त मात्र तो नहीं होता। वह व्यक्ति विशेष का, गहरे पैठकर किया गया अध्ययन होता है। उसे किस कलात्मक रूप में पेश किया जाये, यही लेखक की सफलता है। जीवन में असंख्य घटनाएं होती हैं। उनमें डूबकर मोती चुनने पड़ते हैं। उन्हें तरीके से प्रस्तुत करना ही लेखक की कला है।

मैं नहीं कह सकता कि 'एक और कबीर' इस कसौटी पर कितना खरा उतरेगा। मैंने अपनी आस्था के अनुसार चौधरी साब के जीवन का सत्य खोजने का प्रयास किया है। उन्हें कबीर बनाना मेरा कार्य नहीं है। किन्तु जो अवधूत उन्हें गला फाड़कर नास्तिक बनाने पर तुले थे, वह भी ग्रहण करने योग्य नहीं है। मुझे तो उनका कबीर रूप ही महत्वपूर्ण लगा है।

प्राय: ही चौधरी साब के अनुयायियों को कहते सुना है कि वे कूटनीतिज्ञ नहीं थे, इसलिए राजनीति में बार बार परास्त होते रहे। कूटनीति कैसी? छल-कपट, प्रपंच, धोखा, झूठ, बेईमानी का सहारा लेकर जो व्यक्ति सता पर कब्जा कर ले, वही भारतीय राजनीति में कूटनीतिज्ञ माना गया है। जनता को लुभावने नारे सुनाकर पीढी-दर-पीढ़ी सत्ता का उपभोग करने वाला सफल राजनीतिज्ञ माना गया है। चौधरी साब में ऐसे गुण नहीं थे। क्यो? इसलिए कि उन्हें सत्ता से कुछ कमाना नहीं था। सता उनके लिए दरिद्रनारायण का मंगल करने का साधन मात्र थी। इस साधन को, गांधी का शिष्य, गलत तरीके से कैसे अपना सकता था?

राजनीति उनका पेशा कभी नहीं रही। ग्रामीण भारत को सारा जीवन समर्पित करने की धुन सवार थी। उन्हें स्वयं को तो दो जून की रोटी, तन ढकने को कपड़ा और रहने को आश्रय स्थल चाहिये थे। इन सबके बदले वे 18 घंटे काम में जुटे रहते। तब कूटनीति या प्रपंच की राजनीति वे क्यों करें? सच्चा संत वही जो स्वार्थ से परे, अपने लक्ष्य की ओर बढ़ता रहे। वह चालाकी करे तो किसके लिए? एक रास्ता दिखा रहा है। आपको अच्छा लगे तो चलो, अन्यथा आपकी मर्जी। यही चौधरी साब का कबीर रूप है। इसीलिए वे नेता कम, संत अधिक थे। यदि उनमें कबीर नहीं होता तो वे सत्ताधारी नेता तो बन सकते थे किन्तु भारत के महानायक नहीं।

इसीलिए उन्होंने सता के दलालों पर प्रहार किया। राजनेता तो कोई भी बन सकता है। जो कुछ नहीं बन सकता, वह नेता बन सकता है, यही भारतीय राजनीति का कुरूप चेहरा है। यही सता लोलुप, परजीवि उनसे भय खाते थे। उन पर भांति भांति के आरोप लगते थे। किन्तु यह कैसा तर्क है कि मक्कारों की इस जमात में चौधरी साब भी घुलमिल जाते।

जब सुचेता कृपलानी यू. पी. की मुख्यमंत्री बनी तो चौधरी साब के मुंह से निकला था, "राजनीति बहुत गन्दी हो गई है। यदि वह लड़का (अजित) प्रति माह मुझे कुछ रुपये दे दे तो मैं राजनीति से हट जाऊं।"

क्या आप इसे असफलता मानेंगे कि जो व्यक्ति 1946 से सत्ता में होते हुए भी 1963 में खाने भर के लिए चिंतित हो। हमें धंधे बाज नेता चाहिए या जन सेवक। यदि पहले किस्म के नेता चाहियें

तो चौधरी साब एक असफल नेता रहे। यही उनका अलबेला रूप था। अलबेला फकीरी का रूप, जिसे कायर और ठग नेता झेल नहीं सकते थे। यही रूप उनका असली रूप था।

प्रसिद्ध लेखक भगवती चरण वर्मा ने लिखा है, ''दूसरों से अपने लिए लेना उनकी प्रकृति में न था।.....इतना ईमानदार आदमी मैंने कभी न देखा था।''

कहा जा सकता है कि ईमानदार का राजनीति में क्या काम! यदि यह सही है तो वे निश्चित रूप से असफल नेता थे।

कितनी बातें है जो उन्हें अन्य नेताओं से अलग कर देती हैं। धन के प्रति निर्मोही बनकर भी गरीब छात्रों की सहायता करते थे। स्वयं के इकलौते बेटे की नौकरी की परवाह नहीं की। चुनाव क्षेत्र में कभी विशेष जोर नहीं दिया। धनाड्य वर्ग से कभी चन्दा नहीं लिया। कठोर अनुशासन में पहले स्वयं को बाँधा, तब दूसरों से भी ऐसा बनने की इच्छा रखी। अपने विश्वास पर अडिग। आश्चर्य होता है, किस किस्म के व्यक्ति थे। अभावों को झेलकर एक रास्ता दिखाने का साहस चरणसिंह ने ही किया। इसके लिए अपना सब कुछ न्यौछावर करने को तत्पर।

कैसे मस्त मौला थे? इस्तीफा देकर हंसी-खुशी घर आ रहे हैं। कबीर का कोई पद गाकर नाच रहे हैं। परिवार स्तब्ध। घर की आर्थिक कठिनाई का कोई अन्त नहीं था। चर्चा सुनते तो माया ठगिनी का बखान करने लग जाते। उनकी फक्कड़ाना लापरवाही की कोई मिसाल नहीं। अनुयायी घबराये हुए मिलने आते। देखते कि बच्चों के साथ ताश खेलने में व्यस्त हैं। यही उनका अखण्ड आत्म विश्वास था। अपने अनुभव, अपनी साधना पर कभी संदेह नहीं था। इसीलिए वे अडिग बने रहे। प्रतिष्ठित लेखक जैनेन्द्र कुमार ने लिखा है, ''मैंने उन्हें देर से देखा है। मुझे प्रतीत हुआ है कि देहाती रहते दीखने में उन्हें तनिक भी उद्यम नहीं करना पड़ता। ऐनक नेताओं में सादा दीखने में सचेष्टता की आवश्यकता होती है। सादगी चरणसिंह की प्रकृति में ही सिक्तहै। सादगी के साथ चौधरी साब के व्यक्तित्व में कुछ ऐसी ही अतर्क्य गरिमा होनी चाहिए। सरलता और यह अनुलंघनीय गरिमा का एक व्यक्तित्व में समावेश कैसे हो जाता है, यह मुझ जैसे कथा लेखक के लिए किंचित विस्मय और रहस्य का विषय है। इसीलिए मैं, जब कि राजनीति के लिए उन्हें मानवीय मान सकता हूँ, तब व्यक्तित्व की जटिलता और गहनता के लिए उन्हें लेखक के नाते मननीय मानने को अपने को विवश पाता हूं।''

मानव सेवा से बड़ा कोई धर्म नहीं और जन्म भूमि की रक्षा से बड़ी कोई भक्ति नहीं, यही उनके आदर्श रहे। इस शरीर का यही उपयोग है। कबीर साहब ने इसे चदरिया का रूप दिया है-

'दास कबीर जतन से ओढी, ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया'

चौधरी साब ने अपनी इस चादर पर मैल कभी नहीं चढ़ने दिया। इसीलिए वे अधिक कठोर, दबंग और फक्कड़ बन सके। विरोधियों ने इसे अहं या दंभ माना। किन्तु अभिमान तो उन्हें लेशमात्र भी नहीं था। उनकी अन्तरात्मा जो कहती, उसी के अनुसार चलते रहे। जनता के साथ फरेब करने वालों को खरी-खोटी सुनाते रहे। उनके पास आवरण नहीं था। सिद्धान्त, बौद्धिकता या गुरुता का लबादा नहीं ओढ़ा था। जो कुछ थे, स्पष्ट थे। दिल के साफ, मन के दुरूस्त। भीतर से कोमल, बाहर से कठोर। जन्म से देहाती, कर्म से वन्दनीय। जो कुछ कहा, अनुभव के आधार पर कहा। इसीलिए आमजन उनसे आशा लगाये रहा। आवरणधारी नेता उनकी चोट से तिलमिला उठते। यही चरण सिंह का आकर्षण था। कोई साथ चला तो ठीक, नहीं चला तो वे अकेले चले। कहा भी है-

'सिंहन के नहीं लेहड़े, हंसन के नहीं पांत।
लालन की नहीं बोरियां, साधु न चले जमात॥
लीक लीक गाड़ी चले, लीक ही चले कपूत।
लीक छोड़ तीनों चले, शायर, सिंह, सपूत॥

बहरहाल..........

कुछ चर्चा पुस्तक के नामकरण की भी। मैंने नाम रखा था-'असली भारत का महानायक' यह असली-नकली क्या? गांधीजी ने स्वतंत्रता की लड़ाई ठेठ भारतीय बन कर लड़ी। कभी कभी आश्चर्य होता है कि अंग्रेजों ने उस अध नंगे फकीर से बातचीत करने में अपनी तौहीन नहीं समझी। यह विचार इसलिए आता है कि आजाद भारत में, विशिष्ट सता लोलुप नेता, चौधरी साब को एक देहाती, रूढिवादी और जातिवादी नेता साबित करने में लगे रहे। रोटी हिन्दी की खाकर, अंग्रेजी में बातें करने वाले 'कलमकारों' ने चटखारे लेकर इसे फैलाया। यही भारतीय अंग्रेज इंदिरा गांधी की समस्त खामियों को भूलकर उनकी वेश-भूषा और भाव-भंगिमा का वर्णन कर गर्व महसूस करते थे। राजीव गांधी की बचकाना हरकतों को भुलाकर उन्हें 'हैंडसम', 'यंगमैन' आदि विशेषणों से उल्लेख करते थे। तभी 'हाय' कहने की संस्कृति भी प्रधानमंत्री पद से जुड़ गई थी। इस मायने में इन भारतीय अंग्रेजों से वे असली अंग्रेज निश्चय ही श्रेष्ठ होंगे।

स्वतंत्रता के पश्चात गांधीजी की हत्या हो गई। 1950 में सरदार पटेल चले गये। तब नेहरू युग की लहर चल पड़ी थी। पंडित नेहरू का खान-पान, रंग रूप, बातचीत, रहन-सहन, संस्कार सब यूरोपीय थे। उनकी नजर रूश, यूरोप और अमेरिका पर रहती। वहीं से कुछ ग्रहण करके स्वप्न दृष्टा नेहरू इस देश को उपकृत कर रहे थे। समस्त पक्ष-विपक्ष नेहरूमय हो गया था। तब पहली बार यू. पी. के राजस्व मंत्री चरण सिंह ने धरती पर खड़े होकर नेहरू को चुनौति दी थी। नागपुर अधिवेशन में उनके विचारों की खिल्ली उड़ाई थी। यह संघर्ष आसमान और धरती के बीच था। गुरूता औढे, पैगम्बर बने नेहरू और सीधे-सादे दिखने वाले चरणसिंह के बीच मुकाबला था। भारतीय संस्कृति में पले-बढे चरणसिंह एक ओर थे, दूसरी ओर उच्च वर्ग, यूरोपीय संस्कृति के पोषक पंडित नेहरू थे। भारत बनाम इंडिया, शहर बनाम गांव, उद्योग बनाम कृषि, पूंजीपति बनाम किसान, धनाड्य बनाम गरीब का जंग पहली बार शुरू हुआ था। इंडिया में विचरण करने वाले नेहरू, 'भारत' को कागजों में तलाश रहे थे। चरणसिंह 'भारत' में खड़े होकर 'इंडिया' को ललकार रहे थे। यही असली भारत का महानायक है। जब यह महानायक केन्द्र की राजनीति में पहुंचा, 23 दिसम्बर 1978 को वोट क्लब पर विशाल जन समूह असली भारत का प्रतीक बनकर एकत्रित हुआ। उसी के पश्चात तो गांव और किसान का सम्मान बढ़ा है। आज तो कोई भी राजनैतिक दल हो, गांव और किसान की चर्चा तो अवश्य करेगा। यह श्रेय चौधरी साब को है। इसीलिए तो वे असली भारत के महानायक हैं। किन्तु मेरे मित्र प्रोफेसर नरपतसिंह सोढा ने सुझाया, "इसका नामकरण 'एक और कबीर' होना चाहिए।" मुझे भी पसन्द आया। तब यही नाम रखा गया। विश्वास है, आप भी कबूल करेंगे।

'एक और कबीर' का यह प्रथम भाग है। मेरी योजना है कि इसके दो भाग और लिखे जायें। द्वितीय भाग 1968 से मार्च 1977 तक और बाकी तीसरे भाग में। मैं स्वीकार कर चुका हूँ कि पहले भाग में भी कुछ प्रसंग छूट गये हैं। उन्हें मैं यथास्थान दूसरे भाग में समेटने का प्रयत्न करूँगा।

इस पुस्तक की सामग्री के तीन प्रमुख स्रोत रहे हैं-एक तो उन व्यक्तियों के साक्षात्कार, जो चौधरी साब से किसी न किसी रूप में सम्बन्धित रहे। दूसरे उनके समकालीन नेताओं, मित्रों, पत्रकारों के लेख-संस्मरण और तीसरे उनकी स्वयं की हजारों फाइलें जो सुरक्षित रखी हुई हैं। उनमें से अपने उपयोग की सामग्री ढूंढना कोई कठिन काम नहीं था। परिशिष्ट में मैंने इन सबका उल्लेख किया है। पुस्तक में विवरण देते समय मैंने जानबूझकर इनका संदर्भ नहीं लिखा है। ये साक्ष्य तो ताजा हैं और पुस्तक की प्रामाणिकता में कोई अन्तर नहीं पड़ने वाला। कबीर के कुछ पद्यों का प्रयोग मैंने अपनी तरफ से भी किया है। कई ऐसे प्रसंग आये हैं, जब उनके अन्तर्द्वन्द को मैंने संवाद का रूप भी दिया है, किन्तु ऐसा मैंने प्रामाणिकता की सीमा से बाहर जाकर नहीं किया।

'एक और कबीर' क्यों लिखा गया, इस सम्बन्ध में मैं और कुछ लिखूं, इससे कहीं अधिक समर्थ और सशक्त शब्दों में स्वामी विवेकानन्द लिख गये हैं जिसे आप पुस्तक के प्रथम पृष्ठ से पूर्व पायेंगे। बहुत कुछ ऐसा कह गया हूं, जो शायद नहीं कहना चाहिए था। किन्तु रचना प्रक्रिया

को स्पष्ट करने के लिए शायद आवश्यक था।

चौधरी साब के परिवार का मैं अत्यंत आभारी हूँ, विशेषकर, माताजी, चौधरी अजित सिंह, बहिन वेदवती और ज्ञानवती तथा डा. जे. पी. सिंह (दामाद) का, जिन्होंने मुझे सहयोग दिया। दूसरे भाग के लिए और प्रामाणिक सामग्री जुटाना इनके सहयोग के बिना संभव नहीं होगा। अजित सिंह के निजी सचिव रामअजौर, चौधरी साब के छायां रहे कर्तारसिंह तथा राजस्थान में चौधरी साब का अलख जगाने वाले डा. चन्द्रभान के प्रति कृतज्ञ हूं जिन्होंने समय समय पर मुझे भरपूर सहयोग दिया। किसान ट्रस्ट नई दिल्ली का समस्त स्टाफ साधुवाद का पात्र है। इन्हीं की कृपा से चौधरी साब की लिखित पुस्तकें प्राप्त हुई और अन्य जानकारी भी मिली।

अन्त में, मैं अपने पाठक मित्रों और चौधरी साब के अनुयायियों से एक विनम्र निवेदन करना चाहूंगा। शायद यह मेरा ही स्वार्थ हो। वह यह, कि पुस्तक पढ़ने के बाद अपनी प्रतिक्रिया से अवश्य अवगत करायें। यदि उनके पास कोई प्रामाणिक सूचना, संस्मरण या प्रसंग हो जो पुस्तक में नहीं आ सका तो उसे भी लिख भेजें, ताकि अगले भाग में यथास्थान उनका उपयोग हो सके। ऐसा करके आप मेरा बहुत उपकार करेंगे और चौधरी साब के प्रति विनम्र श्रद्धांजलि भी होगी।

बात बहुत लम्बी हो गई है। चौधरी साब और आपके बीच, मैं अब एक क्षण भी नहीं रुकना चाहता। किन्तु जरा रुकिये तो, आज संयोगवश 29 मई है। उस महामानव, युगदृष्टा, किसान मसीहा, फक्कड़ कबीर, भारत के जन नायक, चौधरी साब को श्रद्धापूर्वक नमन तो कर लूं।

धन्यवाद!

29 मई, 1996 —राजेन्द्र सिंह

"आज हमें आवश्यकता है ऐसे राष्ट्रनायक के आदर्शों की जिसकी रगों में विशुद्ध भारतीयता का पवित्र रक्त प्रवाहित हो रहा हो और जो प्रत्येक परिस्थिति में सत्य की रक्षा के लिए निर्भयता पूर्वक मृत्यु का भी वरण करने के लिए तत्पर हो, ऐसा राष्ट्रनायक जिसका कवच स्वत्व त्याग हो और जिसकी बुद्धिमता ही उसका शस्त्र हो। जीवन के रणक्षेत्र में हमें किसी ऐसे ही उदात, वीरवृत्ति और साहसी योद्धा के आदर्शों का अनुकरण करने की आवश्यकता है, उस दुर्बल प्रेमी की नहीं, जो जीवन को मात्र विलासिता का उपवन मान बैठा हो।"

-स्वामी विवेकानन्द

प्रथम सोपान

... खेत से लखनऊ तक ...

कहते हैं, जब स्वामी विवेकानन्द की अमेरिका में वेदान्त के प्रचारक के रूप में ख्याति फैली और उसकी प्रतिध्वनि बंगाल की खाड़ी से टकरायी, तो बंगाली ब्राह्मण क्रुद्ध हो उठे थे। उन्होंने कहना शुरू कर दिया कि अमेरिका जिसको सम्मान दे रहा है, वह भारत में तो शूद्र समझा जाता है। विवेकानन्द सन्यासी हो गये थे। उन्हें जाति-पांति या जातिगत अभिमान के प्रति उदासीन रहना चाहिए था, पर रह न सके।

अमेरिका से लौटकर मद्रास में भाषण देते हुए स्वामी जी ने कहा था, "मैंने समाज-सुधारकों के मुख-पत्र में पढ़ा था कि मैं शूद्र हूं, और मुझसे पूछा गया था कि शूद्र को सन्यासी होने का क्या अधिकार है? तो उस पर मेरा उत्तर यह है कि मैं उन महापुरुषों का वंशधर हूं, जिनके चरण-कमलों पर प्रत्येक ब्राह्मण 'यमाय धर्मराजाय चित्र गुप्ताय वै नमः' उच्चारण करते हुए पुष्पांजलि प्रदान करता है और जिनके वंशज विशुद्ध क्षत्रिय हैं।....मेरी जाति की गणना छोड़ दी जाये, तो भारत की वर्तमान सभ्यता का क्या शेष रहेगा?..."

ऐसा ही कुछ चौधरी चरणसिंह के साथ हुआ। सन् 1958 में मेरठ जिले में कांग्रेस संगठन के चुनाव थे। सारी कार्यकारिणी चौधरी साब के समर्थकों की बन गई जिसमें जाट नहीं थे। तब पंडित नेहरू ने टिप्पणी की थी कि वे चरणसिंह के 'जाटपन' को पसन्द नहीं करते। चौधरी साब को यह अपमान जनक लगा। उन्होंने एक लम्बा पत्र लिखकर पंडितजी के सामने रोष प्रकट किया। उन्होंने स्वामी विवेकानन्द की भांति अपने जातीय-गौरव का वर्णन तो नहीं किया किन्तु पंडित नेहरू से यह अवश्य पूछा कि आखिर जाटों में कमी क्या है? क्या उन्हें राजनीति में आने का अधिकार नहीं? जबाब में पंडित नेहरू ने स्पष्टीकरण देते हुए लिखा था कि उनकी नियत कोई व्यंग्य करने की नहीं थी, बल्कि उन्होंने तो जाटों को हमेशा पसंद किया है।

बंबई के एक साप्ताहिक ने किसी प्रसंगवश लिखा था, "जाने-माने जाट नेता चौधरी चरणसिंह..." चौधरी साब संवाददाता से चिढ़ गये। उन्होंने संवाददाता को पत्र लिखकर विरोध जताया कि उन्हें ऐसा विशेषण पसंद नहीं है।

अस्सी के दशक में जालन्धर से प्रकाशित होने वाले अखबार 'प्रताप' ने चौधरी साब के राजनैतिक जीवन के बारे में विश्लेषण करते हुए टिप्पणी की थी, 'जाट मरा जब जाणिये, तेरहवीं हो जाये..." इस लेख में चौधरी साब की प्रशंसा की गई थी किन्तु उन्होंने खेद प्रकट करते हुए कहा था, "मुझे अब भी एक जाति-विशेष से जोड़ा जा रहा है।"

सन्यासी विवेकानन्द की भांति राजनीतिज्ञ चरणसिंह ने अपने जातीय गौरव का झंडा ऊंचा नहीं किया तो इसके कारण स्पष्ट हैं। चौधरी साब पर कबीर और आर्य समाज का व्यापक प्रभाव था। कबीर के सम्मख तो हिन्दू मुसलमान का प्रश्न ही नहीं था। तब चरणसिंह अपनी जाति की वकालत क्या करते? किन्तु विरोधियों ने, मीडिया के लोगों ने, उन्हें बारबार 'जाट नेता' साबित करने का अभियान जारी रखा।

'जाट' की बजाय 'चौधरी' कहलाना उन्हें पसन्द था। उन्होंने स्वयं ने निजी स्टाफ को सुझाया

था, ''मुझे 'चौधरी साहब' कह सकते हो।'' यह तब की बात है, जब वे सन् 1946 में ही संसदीय सचिव बन गये थे और स्टाफ के लोग उन्हें 'साहब' कहकर पुकारते थे। सामन्ती भावना का प्रतीक 'साहब' मात्र कहलाना उन्हें अनुचित लगा।

जहां तक 'चौधरी' शब्द का प्रश्न है, इससे भी सामन्ती व्यवस्था की झलक मिलती है। राजा, नबाबों, जागीरदारों के शासन में चौधरी की अहम भूमिका रही है। ऐय्यासी किस्म के इन राजाओं, सामन्तों का एक ही कार्य था, जनता से अधिकतम लगान एवं बेगार लेना। इस कार्य में सहयोग के लिए प्रत्येक गांव में एक किसान उनका प्रतिनिधि होता था जिसे 'चौधरी' कहा जाता था। वस्तुत: चौधरी का काम था, कुछ सुख-सुविधाओं के लिए अपने ही वर्ग के शोषण में सहायक बनना। उस समय 'चौधरी' एक सम्मानीय व्यक्ति समझा जाता था। कुछ उसी प्रकार जिस भांति अंग्रेजों के समय कोई 'राय साहब' या 'राय बहादुर' समझा जाता था। ऐसा सामन्ती नाम 'चौधरी', चरणसिंह ने क्यों पसन्द किया?

इसका कारण समझा जा सकता है। अपने नाम के साथ वे उपनाम या गौत्र नहीं लगाते थे। मात्र 'साहब' कहलाने में उन्हें झूठे अहंकार की बू आती थी। तब बोलचाल में उन्हें किस सम्मानीय सम्बोधन से पुकारा जाये? कुछ उसी तरह जैसे, पंडित जी, श्री वास्तवजी, वर्मा जी, शर्मा जी, पंतजी, आदि आदि...। उन्होंने बच्चों की एक पुस्तक जेल में लिखी थी 'शिष्टाचार'। इसमें वे बच्चों को सिखाते हैं कि बड़ों को नाम से न पुकार कर कैसे सम्बोधित किया जाये। उनमें एक सम्बोधन 'चौधरी साबह' का भी है। 'चौधरी' उपनाम अनेक जातियों में मिलता है। उनके मन में शायद यह भी रहा हो कि यह उपनाम अधिक व्यापक है और संकीर्णता से बाहर है। यों चौधरी का अर्थ 'नायक' या 'अगुआ' बनने में भी लिया जा सकता है। ग्रामीण भारत का अगुआ बनने का उनका संकल्प था। इसके लिए उन्होंने अपने जीवन को समर्पित कर दिया था। बाद में तो चरणसिंह का पर्यायवाची शब्द 'चौधरी साब' बन गया था। किन्तु 'जाट' नाम से उन्हें क्यों चिढ़ थी? क्या वे स्वामी विवेकानन्द की तरह पुराणों से 'जाट' का कोई गौरवमय सम्बन्ध नहीं खोज पाये? ऐसा नहीं है। बचपन में धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन करने वाले चरण सिंह के लिए यह मुश्किल नहीं था। किन्तु उनके रोम रोम में बसे कबीर ने इसे वाहियात समझा। जाति-पांति का उनके लिए कोई अर्थ नहीं रह गया था।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार हिन्दू-पुराणों और धर्म ग्रन्थों की यह प्रवृत्ति रही है कि किसी जाति की उत्पत्ति के लिए निम्न लिखित पांच कारणों में से किसी एक को मान लेना-

(1) वर्णों के अनु लोम विवाह से,
(2) वर्णों के प्रति लोम विवाह से,
(3) वर्णों की संस्कार-भृष्टता के कारण,
(4) वर्णों से बहिष्कृत समुदाय से, और
(5) भिन्न संस्कार जातियों के अंतर्विवाह से।

इन पांच कारणों के अतिरिक्त कोई छठा कारण हिन्दू-पुराणों और स्मृतियों में नहीं बताया गया। जब किसी नई जाति का आविर्भाव, भारतीय भूमि पर हुआ है, तभी कोई न कोई ऐसा ही मिश्रण सोच लिया गया है। यह धारणा केवल शस्त्रीय विवेचनाओं तक ही सीमित नहीं है, साधारण जनता में भी बद्ध-मूल हो गई है।

उपरोक्त पांच कारणों में कौन से के निकट जाट जाति आती है, यह अलग खोज का विषय है। प्राय: सभी जातियां अपनी उत्पत्ति और मर्यादा के विषय में कोई न कोई पौराणिक कथा बताया करती है। इससे उसका श्रेष्ठत्व प्रतिपादित होता है। इसी क्रम में जाट जाति की उत्पत्ति भगवान शंकर की जटाओं से मानी जाती है, इसलिए 'जाट' नाम पड़ा।

ईसा से लगभग 900 वर्ष पूर्व पाणिनी ने व्याकरण लिखा था। इसके धातु पाठ में 'जट' शब्द आता है, जिसका अर्थ संघ होता है। पंजाब में अब भी जाट को 'जट' कहा जाता है।

अरबी यात्री अलबरूनी ने तो यहां तक लिखा है कि श्री कृष्ण जाट थे। जाट इतिहास लिखने वाले विद्वानों की मान्यता है कि जाट शब्द संस्कृत के 'ज्ञात' शब्द से बना है। यह पहले जात और कालांतर में जाट हो गया। यों जात का अर्थ भी समूह या संघ से है। भगवान श्रीकृष्ण ने 'ज्ञाति' बनाया था। इससे तो यह ध्वनि निकलती है कि जाट कोई जाति नहीं, बल्कि एक संगठन या समूह का नाम था। इसके सदस्य जाट कहलाये। यही कारण है कि जाटों के गौत्र-हरिजन, राजपूत, गूजर, मुसलमान एवं जांगीड़ जाति में भी मिलते हैं। कालांतर में 'जाट' के सदस्य अलग होते गये और जातियां अलग अलग होती गई।

आर्यों के बारे में मतभेद है कि व कहां से आये? कोई इतिहासकार उन्हें बाहर से आया मानता है तो कोई उन्हें भारतीय मूल के मानता है। अधिकांश विद्वानों का मत है कि जाट भी आर्यों के वंशज हैं। किन्तु जाट यदि आर्य हैं तो कौन से वर्ण में आते हैं, ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य और शूद्र। प्रथम और तृतीय वर्ण के लिए तो जाटों का दावा कभी नहीं रहा। तो क्या क्षत्रिय थे? उच्च वर्ग से जोड़ने में आत्म-संतोष तो मिलता है, किन्तु जाटों का मुख्य पेशा तो कृषि रहा है। दिलचस्प जिज्ञाशा होती है कि आर्यों के चार वर्णों में खेती कौनसा वर्ण करता था? शूद्र ही तो करता होगा? यह अलग बात है कि आपातकाल में जाट को लड़ने के लिए भी पुकारा जाता था।

ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न ब्राह्मण सिर्फ वेद-पाठ करता था। यानि विद्या का एक मात्र ठेकेदार। भुजाओं से उत्पन्न क्षत्रिय शासन करने का अधिकार रखता था। पेट से उत्पन्न वैश्य व्यापार करता था। बाकी सभी ब्रम्हा के पैरों से पैदा हुए हैं। तब क्या जाट शूद्र नहीं माना जायेगा?

इसके विरुद्ध यह तर्क दिया जाता है कि जाट का रंग रूप, शक्ल और स्वभाव शूद्रों से भिन्न है। इस विचार के लोग जाटों को आर्य नहीं मानते। उनका कहना है कि राजस्थान में अब भी बोलचाल में कई बार बच्चों को डांटते हुए कहा जाता है, "अबे मानजा हुणी!" उनका अनुमान है कि जाट हुणों के वंशज हैं। आर्य वंशी मानने वालों का इस पर तर्क है कि यह वाक्य बदमाश बच्चे के लिए प्रयोग में लाया जाता है। एक तरह की गाली है। इसका अर्थ है कि जाटों का हुणों से कभी संघर्ष हुआ होगा। जाट तो आर्यों के वंशज ही हैं।

कुछ विद्वानों का कहना है कि यह धुमक्कड़ और कृषक जाति थी जो बाहर से आकर बस गई। आवश्यकता पड़ने पर यह जाति लड़ाई भी कर लेती।

यह भी कहा जाता है कि जाट कोई जाति नहीं, बल्कि वर्ग था। गाँवों में रहने वाला वर्ग। इसमें अहीर, गूजर, कुम्हार, माली, खाती आदि सभी थे। यह कृषि और पशुपालन करने वाली जाति-समूह था। यही बात बाद में जाट बन गई। यही कारण है कि उपरोक्त जातियों के गौत्र लगभग समान हैं। जहां तक चौधरी साब के जीवन-प्रसंग का सवाल है, यह वर्ग वाला सिद्धान्त उनके अधिक निकट बैठता है। उन्होंने स्वयं को कभी जाति से नहीं जोड़ा। इसलिए जाति सम्बन्धी इतनी चर्चा करना भी उनके साथ अन्याय होगा। किन्तु यह भी सही है कि उनके विरोधियों ने एक सूत्री कार्यक्रम बना रखा था, उन्हें जातिवादी करार देना। इसके पीछे उच्च वर्ग की जो मानसिकता कार्य कर रही थी वह स्पष्ट है। वे अप्रत्यक्ष रूप से 'जाट' का प्रयोग मूर्ख के लिए ही करते थे। उनके मन में यह आत्म संतोष था कि 'जाट' होना ही असभ्य और फूहड़ होना है।

जिस समय चरणसिंह सक्रिय राजनीति में आये, उस समय उत्तर भारत में जमींदारी प्रथा के विरुद्ध किसानों में गहरा असंतोष था। विशेषकर राजस्थान के किसान जमींदारों से टक्कर लेने लगे थे। क्योंकि वे लगान एवं बेगार से त्रस्त थे। इस आंदोलन का नेतृत्व जाटों ने ही किया था। तब यह लड़ाई जाट बनाम जागीरदार नाम से प्रचलित हो गई थी। उस समय पूछा जाता था, 'कौन? जाट? कूटो टाट।' और जाट को मारा जाता। अन्य जातियों ने भी जाट को आगे करके संघर्ष किया। यू. पी. के बहुत से जाट नेता राजस्थान के आंदोलन में भाग लेने आये थे। मेरठ के सबसे अधिक। चौधरी साब से जाटों की यह जागृति छुपी नहीं थी। अन्य लोगों की तरह वे भी 'जाट' होने पर गर्व कर सकते थे। किन्तु किसी जाति विशेष तक सीमित रहना उन्हें स्वीकार नहीं था। इसके पीछे

आर्यसमाजी संस्कार भी हो सकते हैं।

इसके बावजूद उच्च वर्ग के नेता, पत्रकार, लेखक उन्हें जानबूझकर 'जाट नेता' कहने से बाज नहीं आते थे। इसके दो प्रमुख कारण थे। एक, उन्हें सिर्फ एक जातिवादी नेता तक सीमित रखने की साजिश, दूसरा, बुद्धिहीन और रूढ़िवादी साबित करना। दूसरा कारण अधिक महत्वपूर्ण था। उनकी विश्व प्रसिद्ध पुस्तक 'भारत की भयावह आर्थिक स्थिति: कारण और निदान' अंग्रजी में प्रकाशित हुई तो कथित बुद्धिजीवियों ने प्रलाप किया कि उक्त पुस्तक चरणसिंह के नाम से किसी अन्य ने लिखी है। 'जाट' ऐसी पुस्तक लिख ही नहीं सकता।

'जाट रै जाट सौलह दूनी आठ' अथवा 'जाट को समझाना और ऊंट को जहाज पर चढ़ाना बड़ा मुश्किल है'। ये मुहावरे जाट की औकात बताने के लिए ही गढ़े गए हैं। इनका तात्पर्य था कि जाट निपट गंवार और यथास्थिति वादी होता है। पता नहीं इन लोगों ने महाराणा सूरजमल, महाराज रणजीत सिंह एवं सरदार भगत सिंह को क्या समझा होगा? *

यह भी अनुमान लगाया जाता है कि जाट में लड़ने का जन्मजात गुण होने के कारण ही किसी शासक ने इन्हें दिल्ली के आसपास बसाया होगा। एक विचार के अनुसार जाट पांडवों के वंशज हैं, जिन्होंने इन्द्रप्रस्थ बसाया था। कालांतर में यह लोग दिल्ली के चारों और फैलते चले गये।

शायद मजाक में ही हो, किन्तु एक यह भी तर्क दिया जाता है कि इस जाति को लड़ने के लिए कुछ चाहिये। खेत में लड़े या सीमा पर दुश्मनों के साथ। जब कहीं लड़ने का बहाना न मिले तो आपस में ही सिर फोड़ेंगे। इसलिए यह जाति राजधानी के आसपास बसी हुई है।

इतिहास में इस बात के संकेत बहुत मिलते हैं। मोहम्मद गजनवी जब धन लूटकर लेजा रहा था तो रेगिस्तान में बहुत दूर तक जाटों ने उसका पीछा किया और काफी धन उसकी फौज से छीन लिया था।

कुतुबद्यीन एबक और जाटों का घमासान युद्ध हुआ था। इसकी चर्चा हसन निजामी ने यों की है, ''लोहे के दो पहाड़ों की भांति सेनाओं ने एक दूसरे पर आक्रमण किया, युद्ध भूमि वीरों

---

* इसी क्रम में शेखावाटी के जन कवि तारासिंह मील ने कुछ रोचक लोक कहावतें सुनाई। जाट को अविश्वसनीय करार देने के लिए प्रचलित है-

'जाट, जंवाई, भाणजौ, रबारी, सुनार।
कदै न होसी आपको, कर देखो व्यवहार॥'

अथवा

'जाट न जाणै गुण कर्‌यो, चणै न मानी बाह'

जाट को खतरनाक मानते हुए कहा गया है-

'जाट जड़ले मारिये, काग मारिये आलै'

यानि जाट को बचपन में ही मार देना चाहिए तथा कौवे को उसके घौंसले में ही खत्म कर देना चाहिए।

जाट को रहस्यमय मानते हुए कहा गया है-

'नट विद्या आजावे, किन्तु जट विद्या नहीं आवे'

जाट को बहादुर मानते हुए कहा गया है-

'जाट मारै जाट ने, या मारे करतार' या
'लोहे को लोहा काटे, और जाट को जाट'

राजस्थानी के प्रसिद्ध कवि कृपाराम बारहठ ने जाट की शूरवीरता और राज्य के बारे में लिखा है-

'पटियालो, लाहौर, जिंद, भरतपुर जोयलो,
जाटां ही को जोर, रिजक प्रमाण राजिया।'

एक संस्कृत के पंडित ने भी बताया कि जाट और जांटी (खेजड़ी) का एक सा स्वभाव है। दोनों ही बहुत उपयोगी हैं। मानव मात्र के बहुत बड़े सहायक। लेकिन दोनों झुकते नहीं, टूट सकते हैं।

यह तो राजस्थान में प्रचलित लोक-कहावते हैं। हरियाणा और यू. पी. में भी अलग अलग ढंग से जाट की प्रशंसा या आलोचना की गई है। चौधरी साब के संदर्भ में इनका उल्लेख करना कोई मायने नहीं रखता। किन्तु उन पर थोपे गये जातिवादी लेबल के क्रम में इन्हें उद्धत किये बिना नहीं रहा गया। उनके विरोधियों ने तो उन्हें हमेशा इसी चश्में से देखा। ..बहरहाल...

की रक्तधारा और नरमूण्डों से बहुरंगी पुष्पों की भांति दमक उठी।" इसमें जाट सरदार मारा गया और जाट इधर-उधर बिखर गये।

मोहम्मद बिन तुगलक ने जब अपनी सनक में आ भूमि का लगान बढ़ा दिया तो जाटों ने विद्रोह कर दिया था। लगान देने से मना कर दिया। तब तुगलक की फौज ने विशाल सेना भेजकर विद्रोही जाटों को कुचला था। जाट अपनी उपजाऊ जमीन छोड़कर इधर-उधर बिखर गये थे।

जब तैमूर लंग ने भारत पर आक्रमण किया तो उसको सर्वप्रथम पंजाब के जाटों से टक्कर लेनी पड़ी। जाट इधर-उधर बिखर गये। तैमूर ने अपने संस्मरणों में लिखा है, "यह बात मुझे पुनः बतलाई गई कि जाट-कबीले धग्धर नदी के आस पास विशाल बज्र देहदारी दानवों की भांति स्वतंत्रता पूर्वक रहते हैं और टिड्डी दल की तरह चारों ओर बिखरे हैं। मार्ग चलते व्यापारी और राहीगरों के लिए महामारी हैं। इनके हाथ से बचकर कोई भी नहीं जा सकता। ये लोग इस समय अपनी रक्षा के लिए जंगल अथवा रेगिस्तानी इलाकों की ओर चले गये हैं।"

मुगल शासक बाबर को पंजाब में प्रवेश करते ही जाटों से लोहा लेना पड़ा था। इन जाट कबीलों के अनेक सरदार थे और नदियों के समीपवर्ती स्थान तथा खादर इनके सुरक्षित स्थान थे। ये काश्तकार भी थे और लूटपाट भी करते थे। बाबर ने अपने संस्मरणों में लिखा है, "यदि कोई हिन्दुस्तान जावे तो उसे असंख्य धुमक्कड़ जत्थों के रूप में जाट और गूजर पहाड़ी तथा मैदानी इलाकों में बैल और भैंस लूटने के लिए भीड़ मचाते मिलेंगे।"

कर्नल टाड ने लिखा है, "जिन जिट या जटवीरों के प्रचण्ड पराक्रम से एक समय सारा संसार कांप गया था, आज उनके वंशधर खेती करके अपना जीवन निर्वाह करते हैं। उनको देखने से अब यह ज्ञात नहीं होता कि यह प्रचण्ड वीर जिटों के वंशधर है।"

चौधरी साब के जीवन-प्रसंग में इन बातों का उल्लेख करना क्या महत्व रखता है? जातीय संकीर्णता के कारण इस देश को हुए नुक्शान बाबत उन्होंने बहुत कुछ लिखा है। किन्तु एक प्रश्न बार बार कचोटता है। इस देश के इतिहास में जाटों को प्राचीन काल से घुमन्तू और लुटेरे करार दिया है। सभ्रान्त किताबी समाज ने इसे पढ़कर ही तो चौधरी साब को पूर्वाग्रह में बांध के नहीं रखा? जब कि वास्तविकता तो यह है कि चौधरी साब में कबीर और आर्य समाज का मिश्रित संस्कार था जिसकी वजह से वे एक फक्कड़, दबंग मसीहा बनकर जीये। क्या कबीर की कोई जातिहै? बहरहाल....

अजब संयोग है कि राजधानी के बिल्कुल समीप ही चौधरी साब के पुरखे रहते थे। दिल्ली का शासक कभी इन जाटों को परेशान करता तो ये विद्रोही हो जाते। तब वे छापामार लड़ाई शुरू कर देते। मुगल शासकों के नाक में दम कर दिया था। दोनों ओर से हमेश युद्ध होते रहते। कभी दमन होता, कभी समझौता। सदियों तक यह चला।

औरंगजेब की मृत्यु के बाद दिल्ली के आसपास कई जाट शासकों ने अपने राज्य कायम कर लिये थे। अपनी रियासतों को फैलाने के उत्साह में कई बार जाट आपस में भी भिड़ जाते। मथुरा-आगरा क्षेत्र में चूड़ामणि और बदनसिंह (जो चूड़ामणि का भतीजा था) में मतभेद बहुत आगे बढ़ गये थे। बदनसिंह ने चूड़ामणि को परास्त कर दिया था। चूड़ामणि को इससे बहुत ग्लानि हुई और उसने आत्म-हत्या कर ली। बदनसिंह का लड़का ही महाराजा सूरमल हुआ जो बहादुरी और कूटनीति में अपना सानी नहीं रखता था। इतिहासकारों ने उसे भारत का बिस्मार्क कहा है। इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि मराठे महाराजा सूरजमल के साथ सही पेश आते और उन्हें सम्मान के साथ अपने संग रखते तो पानीपत की लड़ाई में अब्दाली हार सकता था। उस समय देश का इतिहास कुछ और ही होता। किन्तु इतिहास को यह स्वीकार्य नहीं था।

इन्हीं दिनों गोपालसिंह तेवथिया जो सूरजमल का रिश्तेदार था, फरीदाबाद के निकट सिंही गांव में आकर बस गया। कमजोर होते मुगलशासन में गोपालसिंह ने विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया और जनता को संगठित करके अपना राज्य स्थापित कर लिया। गोपालसिंह का पोता बलराम

के किस्से भी होते जो उन्होंने 1857 में किये थे। तभी तो यह बालक बाद में धार्मिक, दबंग किन्तु शिष्ट, देशभक्त, चरित्रवान और फक्कड़ बना।

परिवार के काफिले की खेती के लिए यात्रा अभी समाप्त नहीं हुई थी। भूप गढी में इस परिवार के पास लगभग साढे दस एकड़ जमीन थी। यह जमीन कम पड़ रही थी। तब गाजियाबाद तहसील के भदौला गांव में जमीन खरीदी गई। पारिवारिक बंटवारे में जानी खुर्द की जमीन मीरसिंह को मिली। लेकिन बाद में दूर के एक रिश्तेदार से उन्होंने जमीन का स्थानान्तरण कर लिया और 1923 में वे भी भदौला गांव में अन्य भाइयों के साथ आ मिले थे।

लेकिन यह तो बाद की बात है। चरणसिंह का बचपन तो जानी खुर्द गांव में ही बीता। तीन-चार साल की आयु में वह गलियों, रास्तों और खेतों की मेढों पर खेलने लगा। हरे-भरे खेतों के बीच, पसीना बहाते अपने परिवार के बुजुर्गों को देखता। पास-पड़ौस के सभी बच्चे एकत्रित हो जाते। खेतों, बागों और जलाशयों में खेलते, नाचते और तैरते। वर्षा के दिनों में ताल-तलैया में धमा चौकड़ी मचाते। बालक शरारती तो होते ही हैं लेकिन चरणसिंह इनसे भिन्न था। आयु से पहले ही वह बहुत गंभीर रहता था। कभी कभी खेलते वक्त वह किसी दरख्त के नीचे, सबसे अलग, अकेला खड़ा हो जाता। पक्षियों को देखता तो देखता ही रहता। हरे-भरे बागों को देखता। आते-जाते किसानों को देखता। न जाने क्या सोचता रहता।' यही चिंतन उसके भावि जीवन का संकेत देता है।

उस समय माता पिता के लिए भूपगढी एक स्थायी निवास बन गया था। अनपढ मातापिता की आकांक्षा थी कि उनका लड़का पढ़े। उस दिन जब बालक चरणसिंह अपने नन्हें हाथों से घास उखाड़ रहा था तो पिता को ध्यान आया, "अरे, यह तो स्कूल जाने लायक हो गया।"

25 दिसम्बर 1977 को महाराजा सूरजमल के शहीदी दिवस पर एक भाषण में तत्कालीन केन्द्रीय गृहमंत्री चौधरी चरणसिंह ने कहा था, "मेरे संस्कार उस गरीब किसान परिवार के संस्कार हैं जो धूल और किचड़ के बीच एक छप्परनुमा झौंपड़ी में रहता है। मैंने अपना बचपन उन किसानों के बीच बिताया है जो खेतों में नंगे बदन अपना पसीना बहाते हैं।"

माटी और किसान के रिश्ते को स्कूल जाने से पहले बालक चरणसिंह ने देखा था। खेत और माटी की गन्ध मन में इस कदर बचपन में ही बस गई थी कि नई दिल्ली की विशाल कोठियां भी इस गन्ध को मिटा न सकी। गांव और किसान की अस्मिता ही उनके लिए भारत की अस्मिता बन गई थी। और तब, गांधी के बाद वे पहले व्यक्ति थे जिनका दृढ़ विश्वास था कि ग्रामीण भारत ही असली भारत है, बाकी तो स्वार्थी लोगों का जमावड़ा है और इस असली भारत की माटी का स्पर्श, जितना इस बालक ने किया, माटी की गन्ध में अपने पसीने को बहाया, ऐसा उदाहरण भारतीय राजनीति में अन्य नहीं है। तभी तो वह बड़ा होकर इस असली भारत का महानायक बन सका।

उस दिन जब मीरसिंह को ध्यान आया तो खेत में ही पत्नी को आदेश दिया, "कल इसे स्कूल भेजो। सारे दिन यों ही खेत में घूमता रहता है।"

तब मां के भी समझ में आया। दूसरे ही दिन चरणसिंह को जानी गांव की प्राथमिक पाठशाला में भर्ती करा दिया गया। उस समय बालक चरणसिंह की आयु सात साल की थी।

गुरूजी ने देखा तो प्रभावित हुए। हाथ में तख्ती लिये वह गौर से गुरूजी को देख रहा था। कभी उनके कपड़ों को देखता तो कभी स्टूल की ओर। उसकी आंखों में जैसे कुछ प्राप्त करने की ललक थी। रजिस्टर में नाम लिखने हेतु गुरूजी ने पूछा, "तुम्हारा नाम?"

"चरणसिंह"

"पिता का नाम?"

"मीरसिंह"

"अच्छा?" गुरूजी के मुंह से निकल गया।

खड़ी करने भर को जमीन मिल जाये तो वे उसी पर फसल उगा लेंगे। मीरसिंह की शादी बुलन्दशहर के गांव चितसौना अलीपुर में हुई थी। पत्नी का नाम था नेत्रकौर, जिसे बाद में आदर सहित नेतो कहा जाने लगा।

पांचों भाई खूब मेहनत करते थे। अलग अलग अपनी झौंपड़ियां तैयार कर ली थी। परिवार अलग अलग रह कर भी एक था। खेतों में साथ काम करते जाते। एक दूसरे को जगाकर मुंह अंधेरे ही खेत में लग जाते। लखपतसिंह सबसे बड़े भी थे और समझदार भी अधिक। सब भाई उन्हें सम्मान देते। लखपतसिंह भी पूरे परिवार की देख-भाल करते रहते। सुख-सुविधा का ध्यान रखते। सुख-सुविधा भी कैसी? लगभग आसमान के नीचे, झौंपड़ी में सोना। हां, अब शरणार्थी जीवन से छुटकारा मिल गया था। आसपास के गांवों में इन पांचों भाइयों का सम्पर्क बढ़ने लगा था। अनेक जगह ठोकरें खाने के बाद अनुभव भी बढ़ा। गांवों के लोगों ने इन्हें हाथों-हाथ अपना लिया। सुख-दु:ख में इनसे सलाह ली जाती। जहां लखपतसिंह परिवार पर पूरी नजर रखते, वहीं मीरसिंह गांव में 'चौधर' करने लगे थे।

2.

दिन बीतने लगे। बीसवीं सदी प्रारम्भ हो गई। तब आया था, 23 दिसम्बर 1902 का दिन। सभी भाईयों की आदत थी कि सूर्य निकलने से पूर्व ही काम में लग जाते। आज भी जल्दी उठे। कड़ाके की सर्दी। मीरसिंह आग जलाकर हाथ सेकने लगे। आज उन्होंने काम नहीं शुरू किया क्योंकि पत्नी नेतो को प्रसव-पीड़ा शुरू हो चुकी थी। परिवार की सभी जेठानियां एकत्रित हो, नेतो को ढांढस बंधा रही थी। मीरसिंह के कान झौंपड़ी की ओर लगे थे। अंधेरा धीरे-धीरे छंटने लगा था। पूर्व दिशा में ज्यों ही सूर्य भगवान ने दर्शन दिये, मीरसिंह खड़े हो गये। जूती निकालकर सूर्य देवता को हाथ जोड़े। शायद परिवार के लिए मंगल कामना की। आने वाले मेहमान की मंगलकामना की। सूर्य देव ने जैसे मीरसिंह की प्रार्थना सुनी। उसी क्षण झौंपड़ी से नवजात शिशु के रोने की आवाज मीरसिंह के कानों में पड़ी। दूसरे भाई भी दौड़कर अलाव के पास बैठ गये। सभी की उत्सुकता थी कि क्या हुआ है? तभी सबसे बड़ी जेठानी ने थाली बजाना शुरू कर दिया। यह इस बात का सूचक थी कि चौ. मीरसिंह एक बेटे के बाप बन गये हैं। उनकी आंखों में खुशी के आंसु उमड़ आये। मन ही मन सूर्य भगवान को धन्यवाद दिया-हे सूर्य देव! आपके आशीर्वाद से मेरे पुत्र पैदा हुआ है। इसरी रक्षा करना भगवान! मीरसिंह ने जैसे शिशु को सूय-देवता के चरणों में डाल दिया और नाम रखा-चरणसिंह।

प्रकृति का अद्भुत संयोग। सूर्य उदय होने के साथ ही बालक चरणसिंह का जन्म हुआ। सूर्य आर्यों का देवता माना जाता है। यही बालक बड़ा होकर कट्टर आर्य-समाजी बना। जिन्दगी भर उसका घर एक आश्रम की तरह बना रहा। अंतिम समय तक उसके चेहरे पर सूर्य की भाँति तेज रहा। चौधरी साब के निजी स्टाफ के एक अधिकारी ने अपने संस्मरणों में लिखा है, "उनकी तीक्ष्ण नजरें आने वाले को बेंध जाती थी-जैसे सूर्य की किरणें। बिना कुछ बताये वे आने वाले की मंशा पहचान जाते थे।" और फिर 1982...जब यह सूर्य पुत्र अस्ताचल की ओर था। वयोवृद्ध चरणसिंह के निवास पर एक भटके हुए बिहारी युवक ने चाकू से वार करने का दु:साहस किया था। वह युवक बुदबुदा रहा था, "मैं इस उगते सूरज को समाप्त कर दूंगा।" वार करने से पहले ही उसे पकड़ लिया गया था। उगता सूरज कभी रूका है भला? किन्तु, चाहे अपराधी ने ही जोड़ा हो, उनका सम्बन्ध सूर्य के साथ जोड़ा तो सही। बहरहाल...

परिवार में खुशी का अंत नहीं था। नेतो और मीरसिंह की पहली संतान और वह भी लड़का। समाज में बेटे के प्रति मोह उस वक्त तो अधिक ही था। मीरसिंह में नई शक्ति का जैसे आगमन हुआ। वे पहले से अधिक मेहनत करने लगे। प्राय: यह देखा गया है कि विलक्षण प्रतिभाएं बालपन में ही भविष्य का आभास देने लगती हैं। तुलसी, कबीर, नानक इसके उदाहरण कहे जा सकते हैं। चरणसिंह नामक यह बालक शिशु जीवन से ही गंभीरता ओढ चुका था। मां नेतो की ओर टुकुर टुकुर ताकता रहता। मां को उसकी आंखों में विशेष चमक दिखाई देती। वे अपनी जेठानियों से कहती भी, "छोरे की आंखें देखो, कितना तेज है।" सबसे अधिक प्रभावित थे, बड़े बाबा लखपत सिंह। उनका इस बच्चे से विशेष लगाव था। जब जब भी वे बच्चे को दुलारते, घोषणा करते, "देखना बड़ा होकर यह नाम रोशन करेगा।" उस समय कौन जानता था कि यह अत्यधिक स्नेह युक्त भविष्यवाणी सच होगी। विधि की विडम्बना, कि इस बालक ने शिक्षा भी पूरी नहीं की थी कि बाबा लखपत सिंह इस दुनियां से चल बसे थे।

परिवार को हाड तोड़ मेहनत करनी पड़ती थी। यह बटाई की जमीन पर्याप्त नहीं थी। परिवार की संख्या बढ़ने पर जमीन कम पड़ने लगी। अन्य जगह खेती की तलाश होने लगी। तब इन्हें जमीन मिली मेरठ जिले के गांव जानी खुर्द में। यह जमीन चरणसिंह के पिता चौ. मीरसिंह के हिस्से में आई। जिस समय मीरसिंह जानी खुर्द गांव में आये, चरणसिंह की आयु छ: माह की थी।

यहां भी इस परिवार ने छप्पर डाले और घर बनाया। आसपास अन्य तेवथिया परिवारों ने छप्पर डाल रखे थे। छप्परों के इस समूह का नाम रखा गया भूप गढी। यही नाम आज भी प्रचलित है। दर दर भटकने वाले मीरसिंह पढाई-लिखाई क्या करते। लेकिन प्रखर बुद्धि के थे। उनकी स्मरण शक्ति बहुत तेज थी। अंगुलियों पर अथवा जमीन पर लकीरें खींचकर फटाफट हिसाब कर लेते। जमीन को नापने का कार्य वह इतनी सहजता से करते कि पटवारी भी दंग रह जाते।

इस जबानी गणित के कारण मीरसिंह आस पास के गांवों में बहुत लोकप्रिय हो गए। अन्य किसान अनाज बेचते वक्त या जमीन का बंटवारा करते समय उनसे हिसाब-किताब करवाते रहते। यहां तक कि लोगों के आपस के झगड़ों में भी बीच-बचाव करते थे। सही बात कहने में वे जरा भी नहीं हिचकते। जमीन का बंटवारा करते समय किसी भी व्यक्ति का पक्ष नहीं लेते। दूध का दूध, पानी का पानी। इससे आसपास के गांवों में वे चर्चित हो गये थे। गांवों के लोगों का उनके घर जमघट लगा ही रहता। विवाद के मामले कचहरी में जाने से रोकते। जिला प्रशासन भी उनसे प्रभावित हुआ और उन्हें 'नम्बरदार' की पदवी देदी। इस चौधराहट का बालक चरणसिंह के मन पर क्या प्रभाव पड़ा होगा, इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है।

तब चौधरी मीरसिंह का जीवन व्यस्त हो गया था। गांव वाले घेरे रहते। खेत में कड़ी मेहनत करनी पड़ती। इससे उनका स्वभाव चिड़चिड़ा हो गया था। बात बात पर परिवार के सदस्यों पर क्रोधित हो उठते। मां नेतो पर सबसे अधिक डांट पड़ती। लेकिन मां का स्वभाव अत्यंत संवेदनशील, सहिष्णु एवं धर्म के प्रति आस्था वाला था। मां के चेहरे पर बालक चरणसिंह ने कभी क्रोध नहीं देखा। उन्हें स्वच्छता बहुत पसन्द थी। घर में जो भी सामान था, तरकीब से रखा जाता। बालक चरणसिंह को स्मरण शक्ति, कुशाग्र बुद्धि, दृढ़ता, स्पष्टवादिता और चौधराहट के गुण पिता से विरासत में मिले तो मां से धार्मिक, स्वच्छता, सहिष्णुता का गुण मिला। मां अक्सर महाभारत के किस्से और कबीर के दोहे गा-गा कर बच्चे को सुनाया करती। ये लोरियां चरणसिंह के व्यक्तित्व में समा गई थी।

जानीखुर्द गांव के इसी भूपगढ़ी के छप्पर में बालक चरणसिंह धीरे धीरे बढ़ने लगा। वर्षा में किचड़, दुगन्ध, गर्मी में लू और सर्दी में कड़ाके का जाड़ा। कुछ ऐसा ही वातावरण था इस गांव का। लेकिन ज्यों ज्यों बालक बढ़ने लगा, खेतों की हरियाली का नजारा भी देखने लगा। खेतों से आने वाली ताजा हवा थी, तो साथ में मां की लौरियां भी। लौरियों में जाट सरदारों की वीरता

के किस्से भी होते जो उन्होंने 1857 में किये थे। तभी तो यह बालक बाद में धार्मिक, दबंग किन्तु शिष्ट, देशभक्त, चरित्रवान और फक्कड़ बना।

परिवार के काफिले की खेती के लिए यात्रा अभी समाप्त नहीं हुई थी। भूप गढी में इस परिवार के पास लगभग साढे दस एकड़ जमीन थी। यह जमीन कम पड़ रही थी। तब गाजियाबाद तहसील के भदौला गांव में जमीन खरीदी गई। पारिवारिक बंटवारे में जानी खुर्द की जमीन मीरसिंह को मिली। लेकिन बाद में दूर के एक रिश्तेदार से उन्होंने जमीन का स्थानान्तरण कर लिया और 1923 में वे भी भदौला गांव में अन्य भाइयों के साथ आ मिले थे।

लेकिन यह तो बाद की बात है। चरणसिंह का बचपन तो जानी खुर्द गांव में ही बीता। तीन-चार साल की आयु में वह गलियों, रास्तों और खेतों की मेढों पर खेलने लगा। हरे-भरे खेतों के बीच, पसीना बहाते अपने परिवार के बुजुर्गों को देखता। पास-पड़ौस के सभी बच्चे एकत्रित हो जाते। खेतों, बागों और जलाशयों में खेलते, नाचते और तैरते। वर्षा के दिनों में ताल-तलैया में धमा चौकड़ी मचाते। बालक शरारती तो होते ही हैं लेकिन चरणसिंह इनसे भिन्न था। आयु से पहले ही वह बहुत गंभीर रहता था। कभी कभी खेलते वक्त वह किसी दरख्त के नीचे, सबसे अलग, अकेला खड़ा हो जाता। पक्षियों को देखता तो देखता ही रहता। हरे-भरे बागों को देखता। आते-जाते किसानों को देखता। न जाने क्या सोचता रहता।' यही चिंतन उसके भावि जीवन का संकेत देता है।

उस समय माता पिता के लिए भूपगढी एक स्थायी निवास बन गया था। अनपढ मातापिता की आकांक्षा थी कि उ न लड़का पढ़े। उस दिन जब बालक चरणसिंह अपने नन्हें हाथों से घास उखाड़ रहा था तो पिता को ध्यान आया, "अरे, यह तो स्कूल जाने लायक हो गया।"

25 दिसम्बर 1977 को महाराजा सूरजमल के शहीदी दिवस पर एक भाषण में तत्कालीन केन्द्रीय गृहमंत्री चौधरी चरणसिंह ने कहा था, "मेरे संस्कार उस गरीब किसान परिवार के संस्कार हैं जो धूल और किचड़ के बीच एक छप्परनुमा झौंपड़ी में रहता है। मैंने अपना बचपन उन किसानों के बीच बिताया है जो खेतों में नंगे बदन अपना पसीना बहाते हैं।"

माटी और किसान के रिश्ते को स्कूल जाने से पहले बालक चरणसिंह ने देखा था। खेत और माटी की गन्ध मन में इस कदर बचपन में ही बस गई थी कि नई दिल्ली की विशाल कोठियां भी इस गन्ध को मिटा न सकी। गांव और किसान की अस्मिता ही उनके लिए भारत की अस्मिता बन गई थी। और तब, गांधी के बाद वे पहले व्यक्ति थे जिनका दृढ़ विश्वास था कि ग्रामीण भारत ही असली भारत है, बाकी तो स्वार्थी लोगों का जमावड़ा है और इस असली भारत की माटी का स्पर्श, जितना इस बालक ने किया, माटी की गन्ध में अपने पसीने को बहाया, ऐसा उदाहरण भारतीय राजनीति में अन्य नहीं है। तभी तो वह बड़ा होकर इस असली भारत का महानायक बन सका।

उस दिन जब मीरसिंह को ध्यान आया तो खेत में ही पत्नी को आदेश दिया, "कल इसे स्कूल भेजो। सारे दिन यों ही खेत में घूमता रहता है।"

तब मां के भी समझ में आया। दूसरे ही दिन चरणसिंह को जानी गांव की प्राथमिक पाठशाला में भर्ती करा दिया गया। उस समय बालक चरणसिंह की आयु सात साल की थी।

गुरूजी ने देखा तो प्रभावित हुए। हाथ में तख्ती लिये वह गौर से गुरूजी को देख रहा था। कभी उनके कपड़ों को देखता तो कभी स्टूल की ओर। उसकी आंखों में जैसे कुछ प्राप्त करने की ललक थी। रजिस्टर में नाम लिखने हेतु गुरूजी ने पूछा, "तुम्हारा नाम?"

"चरणसिंह"

"पिता का नाम?"

"मीरसिंह"

"अच्छा?" गुरूजी के मुंह से निकल गया।

3.

स्कूल का जीवन, खेत खलिहान, ताल तलैया से भिन्न था। स्कूल में आने से उसकी खुशी का कोई अन्त नहीं था। नहा-धोकर, हाथ में तख्ती ले, वह सबसे पहले स्कूल पहुंचता। अपनी जगह निश्चित की हुई थी। वहीं रोज बैठता। उसके नये-नये मित्र बन गये। खेल-कूद में ज्यादा रुचि नहीं थी। गांवों के छोटे छोटे बच्चों को शुरू में स्कूल जेल जैसी लगती थी। खेत और गांव के चौक में खेलने वाले बच्चे एक जगह बंध से जाते तो उदास हो जाते। किन्तु बालक चरणसिंह को तो स्कूल जैसे रास आ गयी थी। स्कूल की प्रत्येक वस्तु को बड़े ध्यान से देखता। गुरूजी जो कुछ बतलाते, उसे कंठस्थ कर लेता। जैसा गुरूजी कहते, वैसा ही करता।

उस दिन चरणसिंह ने देखा, कि उसकी जगह दूसरा सहपाठी बैठा है। उसने कहा, "यह तो मेरी जगह है।"

"क्यों, तुम उधर बैठो। मैं तो अब नहीं उठता।" बालक शरारती और चरणसिंह से बड़ा था।

"अपनी अपनी जगह बैठना चाहिए तो।" चरणसिंह ने समझाया।

"नहीं उठता, क्या कर लोगे?" चरणसिंह को चुनौति मिल गई।

वह वहीं चुपचाप खड़ा रहा। प्रार्थना के बाद भी दूसरा बच्चा जिद्द में पहले आकर बैठ गया। चरणसिंह चुपचाप खड़ा रहा। गुरूजी ने देखा तो पूछा, "क्यों, बैठ क्यों नही जाते?"

"मेरी जगह यहबैठ गया।" उसने बच्चे की ओर संकेत किया।

क्षण भर गुरूजी चुप रहे। दूसरे ही क्षण उन्होंने दूसरे बच्चे को डांटकर उठा दिया। फिर चरणसिंह से कहा, "तुम अच्छे लड़के हो। आज से अपनी कक्षा के मॉनीटर बनोगे। उसकी कुछ समझ में नहीं आया। पूंछा, "वह क्या होता है?"

गुरूजी हंस पड़े। बोले, "कक्षा में मैं जब नहीं रहता तो सबका ध्यान रखना होगा। सब अपनी-अपनी जगह पर ही रोज बैठें।" उस दिन से वह मॉनीटर हो गया।

कुछ ही महिनों में पता चला कि चरणसिंह नामक बालक पढ़ने में असाधारण है। बहुत तेज है। कभी भी गुरुजी की डांट नहीं सुनी। जो पहले दिन सिखाया जाता, उसे दूसरे दिन सुना देता। अगले वर्षों में गुरुजनों को पता लगा कि यह बालक गणित में विशेष होंशियार है। गुरूजी का सवाल पूरा नहीं होता कि उसके मुंह से उतर निकल जाता। वह गुरूजी के चेहरे पर नजर गड़ाये रखता। ऐसा दतचित होकर पढ़ने वाला छात्र अन्य कोई नहीं था।

प्राथमिक शाला के प्रधानाध्यापक थे पंडित हरबंशलाल। वे बच्चे की सौम्यता और कुशाग्र बुद्धि से बहुत प्रभावित हुए। उन्हें इस बात से भी आश्चर्य था कि इसे कभी शरारत करते नहीं देखा। किन्तु एक दिन ऐसा घटित हुआ। कक्षा के बच्चों के साथ वह स्कूल आ रहा था। रास्ते में जामुन का एक बाग था। जामुन खूब लगे थे। बच्चों के मुंह में पानी आ गया। तैय हुआ कि जामुन खाकर ही चला जाये। आधे ऊपर चढ़ गये, आधे नीचे खड़े रहे। जामुन खाने में ऐसे खोये कि स्कूल जाना ही भूल गये। मास्टर हरबंशलाल को चिंता हुई। ऐसा तो कभी नहीं हुआ। पूछताछ करने पर बच्चों ने बतला दिया, "वे सब बाग में जामुन खा रहे हैं।" बस फिर क्या था? पंडित जी हाथ में बेंत लेकर बाग की ओर चल पड़े।

चरणसिंह नीचे ही खड़ा था। गुरूजी को आते सबसे पहले उसी ने देखा। सभी को कानों कान खबर हो गई। बच्चे फटाफट नीचे कूद पड़े। पंडित जी ने आदेश दिया, "स्कूल चलो।" आगे आगे बच्चे और पीछे बेंत लहराते गुरुजी। पाठशाला में सब एक लाईन में खड़े किये गये। सभी की जमकर पिटाई हुई। जब चरण सिंह की बारी आयी, पंडित जी ठिठके, "तुम भी इनमें शामिल हो गये?"

दूसरे ही क्षण पंडितजी के बेंत नन्हें हाथ पर आकर चिपट गई। वह चोट खाकर दोहरा हो गया। आंखों में आंसु छलक आये। भोला चेहरा देख, पंडित जी पसीज गये। तब उन्होंने हाथ से बेंत फेंक दी। उन्हें गहरा पश्चाताप हुआ। वह दिन था, उसके बाद अनुशासन में कभी चूक नहीं हुई। पंडित जी की एक बेंत ने उसे जीवन भर के लिए अनुशासन एवं शिष्टाचार में बाँध दिया।

दूसरी कक्षा पास करने के बाद जब स्कूल खुला तो निरीक्षण करने निरीक्षक महोदय आये। बच्चों से भी सवाल पूछे गये। चरणसिंह ने सभी प्रश्नों के उत्तर नि:संकोच दे दिये। निरीक्षक उसकी बौद्धिकता देखकर विस्मित रह गये। पंडित जी से भी बच्चे के बारे में जानकारी ली। पंडितजी ने उसकी प्रखरता और आदतों का पूरा विवरण सुन दिया। निरीक्षक महोदय बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने पंडितजी को आदेश दिया, "तीन महीने के बाद इसे अगली कक्षा में कर दिया जाये।" अपने शिष्य के सम्मान से गुरू का सम्मान भी जुड़ा हुआ होता है। पंडित जी गद्‌गद् हो उठे। उन्होंने चरणसिंह से कहा, "कल तुम अपने पिताजी को साथ लाना।"

जब चौधरी मीरसिंह को गुरूजी का आदेश सुनाया, तो वे क्रोधित हो उठे, "तुमने जरूर कोई बदमाशी की है।"

"मैंने तो कुछ नहीं किया। आप चलकर पूछ लेना।"

"हां, हां, पूछ लूंगा। कल ही लूंगा तुम्हारी खबर।" पिताजी ने उसे फटकारा।

माँ नेतो को चिंता हुई। उसने अकेले से पूछा, "क्यों रे, क्या किया है तूनें?"

उसकी आंखों में आंसु आ गये, "मां, मैं कभी झुठ नहीं बोलता।"

मां का दिल दहल गया। उसे गले लगा लिया। क्यों बुलाया, यह उसे भी पता नहीं था क्या उतर दे?

दूसरे दिन चौधरी मीरसिंह स्कूल पहुंचे। पंडित जी ने कहा, "चौधरी, तुम्हारा छोरा बहुत हॊंशियार है। तीन महीने बाद ही इसे अगली कक्षा में कर दिया जायेगा।" मीरसिंह को बहुत प्रसन्नता हुई। उन्होंने खुश हो अपने बेटे की ओर देखा। चरणसिंह की नजरें झुक गई।

तब उसे सिवाल गांव की प्रायमरी स्कूल में भर्ती कराया गया। सिवाल भूप गढी से दो अढाई मील दूर था। बीच में नहर पड़ती थी। उसे अकेले जाना था। मां को कुछ चिंता तो हुई। किन्तु वे बेटे की प्रतिभा से अभीभूत थी। उसे एक घोड़ा लाकर दिया गया। टेढे-मेढे रास्ते और कहीं ऊबड़-खाबड़ जमीन। वह घोड़े पर सवार हो अकेला ही जाता। नौ-दस वर्ष के इस बालक को अकेला घोड़े पर जाते सभी किसान देखते। सबका प्यार उसे मिलता, "भैया, यह छोरा बहुत नीडर है।" गांव में उसकी प्रतिभा की चर्चा होने लगी, "मीरसिंह, भैया तेरा छोरा तो तेज निकला। गांव में ऐसा हॊंशियार छोरा नहीं है।" तब मीरसिंह जैसे खुसी से पागल हो उठते। उसे कभी रास्ते में भय नहीं लगा। कभी घर आकर इस सम्बन्ध में शिकायत नहीं की। उन दिनों प्राय: ही चर्चा चलने पर मीरसिंह कहते, "जानते नहीं, वंशज किसका है? भैया, इसके पुरखों ने गोरे राज से लड़ाई लड़ी थी।" तब सब उसे गर्व से निहारते थे।

महाभारत, कबीर के पद्य सुनसुन कर वह पक्का धार्मिक प्रवृत्ति वाला बन गया था। जब भी गांव में कोई भजन मंडली आती, वह देर रात तक बैठकर भजन सुनता। उस समय तक कोई भी बच्चा बैठा हुआ नहीं मिलता। कबीर के कई भजन उसे कंठस्थ याद हो गये थे। ऐसे भजन जब वह सुनता तो बहुत आनन्द आता। तब वह स्वयं भी मंडली के साथ गाने लगता। यह देख गांव के लोग मुस्कराते थे। मां तो बहुत ही प्रसन्न होती।

परीक्षा के दिन आ गये थे। एक कक्षा लांघकर आने पर भी मन में कोई झिझक नहीं थी। चेहरे पर वही भोलेपन का आत्म विश्वास। चरणसिंह के पीछे बैठने वाला बच्चा एक मुस्लिम परिवार का था। वह पढाई में कमजोर था। उसने अपने साथी चरणसिंह से कहा, "भाई, मुझे भी पास कराना। लिखते समय स्लेट या कॉपी थोड़ी टेढ़ी कर लेना, ताकि मैं नकल कर सकूँ।"

"ठीक है, देख लेना।" उसे क्या एतराज था? इस ढंग से बैठकर लिखने लगा कि पीछे

वाले को पूरा दिखाई दे जाये। वह बच्चा नकल करके पास हो गया। इसी खुशी में अपने मित्र चरणसिंह को एक कुतुबनुमा भेंट की। पिता मीरसिंह परिणाम सुनने को अधीर थे। चरणसिंह को आते देखा तो दूर से ही परीक्षा का परिणाम पूछा। उसने उत्तर दिया, "मैं तो प्रथम श्रेणी में पास हो गया।" सुनकर बाप ने बेटे को चूम लिया। इसी बीच पिता का ध्यान कुतुबनुमा की ओर चला गया।

"यह क्या है?" कुतुबनुमा हाथ में लेकर चौधरी मीरसिंह ने पूछा। चरणसिंह ने नकल वाली पूरी कहानी सुना दी। पिता को यह बात अच्छी नहीं लगी। उन्होंने कहा, "यह तो बहुत गलत हुआ। एक तो तुमने गलत काम कराया और दूसरे उसके बदले उपहार भी ले लिया। एक साथ दो गलतियां। किसका छोरा था?"

"मुसलमानों का।" चरणसिंह का उत्तर था।

"खैर हुआ सो हुआ, आगे ऐसा कभी मत करना।" उस दिन गाँठ बांध ली। जीवन भर किसी गलत काम को नहीं किया। न कभी किसी की गलत सिफारिश मानी। और उपहार? चुनावों के समय भी किसी धनाड्य व्यक्ति से आर्थिक सहायता नहीं मांगी। किसी ने दे दी तो वापिस लौटा दी। किसी में कमी देखी, तो कहे बिना नहीं रुके,

"कहँ कबीर सुनो हो साधो, अमृत-वचन हमार।
जो भला चाहो आपनो, परखो करो विचार॥"

परीक्षा परिणाम से न केवल सिवाल स्कूल के अध्यापक और छात्र ही प्रभावित हुए, बल्कि भूपगढी और जानी खुर्द गांव में घर घर में चर्चा फैल गई। लोग एक दूसरे से कहते, "सुना भैया, चौधरी मीरसिंह का बेटा एक ही साल में दो दो इम्तहान पास कर चुका है।" सुनने वाला आश्चर्य प्रकट करता। शाम को बड़े बूढ़ों ने घेर लिया। उसे अनेक प्रकार से आशीर्वाद मिलने लगे। सभी उसे बहुत चाहने लगे। लेकिन उसमें तो कोई परिवर्तन नहीं आया। वह अपनी भाव-प्रवण अधखुली आंखों में पता नहीं क्या सोचता रहता। वह स्वयं ही कभी बुजुर्गों के चेहरों को ध्यान से देखता। जैसे चेहरे पर लिखी कोई टिप्पणी पढ़ रहा हो। धूल की, मेहनत की, पसीने की कहानी। न बातूनी न शरारती। शायद बुजुर्ग उस होनहार बालक के भविष्य को पढ़ रहे थे और वह उनकी आर्थिक दशा को। शायद वह अपनी पहचान को खोज रहा हो। यहीं तो उसने जो सरल वेश-भूषा, सादगी-पूर्ण जीवन और सरल व्यवहार अपनाया, उसे जीवन भर निभाया। आगे चलकर ग्रामीण भारत के इस महानायक ने लिखा, "खेती एक ऐसा व्यवसाय है जहाँ प्रकृति के साथ संघर्ष में एक किसान को धैर्य एवं अध्यवसाय के पाठ रोजाना पढ़ने पड़ते हैं। फलत: उसमें दृढ़ता और सहनशीलता उत्पन्न हो जाती है। इससे एक ऐसे चरित्र का निर्माण होता है जो अन्य किसी व्यवसाय में नहीं हो सकता।"

कहा जाता है कि अमर शहीद भगत सिंह ने बचपन में ही, खेत में बुवाई करते अपने पिता से कहा था, "खेत में पिस्तौल क्यों नहीं बोते?" प्रकृति भावी जीवन के बीज बचपन में ही बो देती है। चरणसिंह जानी खुर्द गांव की स्कूल में जाता या सिवाल गांव की स्कूल में, वह हमेशा कुछ खोया खोया सा, खेत, फसल और दरख्तों को निहारता हुआ चलता। साथ चलने वाले मित्रों के गप्प-शप्प पर ध्यान नहीं देता। वह मौन रहकर जैसे प्रकृति की प्रत्येक भेंट को समझने का प्रयास करता। हां, रास्ते में कोई किसान मिल जाता तो उसके चेहरे और कपड़ों को अवश्य देखता। इन्हीं दिनों तो किसान, खेत और गांव की अमिट छायां उसके रोम रोम पर पड़ रही थी। ग्रामीण भारत की असलियत से वह जुड़ चुका था। इसलिए तो बहुत बाद में, ग्रामीण भारत के इस महानायक के बारे में प्रसिद्ध कथाकार जैनेन्द्र कुमार ने लिखा, "मैंने उन्हें देर से देखा है। मुझे प्रतीत हुआ है कि देहाती रहते-दीखने में उन्हें तनिक भी उद्यम नहीं करना पड़ता। अनेक नेताओं को सादा दीखे में सचेष्टता की आवश्यकता होती है। सादगी चरणसिंह जी की प्रकृति में ही सिक्त है। सरल और यह अनुलंघनीय गरिमा का एक व्यक्तित्व में समावेश कैसे हो जाता है, यह मुझ

जैसे कथा लेखक के लिए किंचित विस्मय और रहस्य का विषय है।''

एक बुजुर्ग का कहना है, ''जब जब भी चौधरी साब को मैंने देखा है, वृद्धावस्थआ में भी, जब वे हाथ पर ठुड्डी रखे कहीं खो जाते हैं तो मुझे उनमें वही बचपना नजर आता है, जैसे वह खेत की मेढ़ पर खड़े होकर काम करते किसानों को देखकर रहे हों।''

बालक चरणसिंह ने प्रायमरी स्कूल परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की थी। गांव भर में उसकी खूब प्रशंसा हुई। परिवार के सदस्यों ने उसे बधाई दी। बाबा लखपत सिंह की प्रसन्नता का कोई अन्त नहीं था। अब छुट्टियों में वह भी खेत में जाने लगा। मीरसिंह तो व्यस्त रहने वाले किसान थे। परिवार, गांव के झगड़े तो निपटा देते लेकिन घर आते ही संतुलन खो बैठते। थोड़ी सी गलती पर ही पत्नी नेतो को डांटते-फटकारते। घर में कलह का वातावरण हो जाता। बालक चरणसिंह को यह बहुत बुरा लगता। वह कहीं अकेले कोने में छुप जाता और जी भरकर रोता। वह समझ नहीं पाता कि पिताजी को आखिर क्या दु:ख है? उसकी मां इतनी समझदार और सलीके वाली महिला थी, फिर भी पिता की डांट सुनती। मां का यह दु:ख उससे देखा नहीं जाता था। उसका चेहरा मुरझा जाता। वह इस कलह को रोके कैसे? ग्रामीण महिलाओं की यह दुर्दशा यह बालक बाद में भी नहीं भूल पाया। जीवन भर वह महिलाओं के प्रति चिंतित रहा। अपने भाषणों में यदा-कदा गांव की महिलाओं की चर्चा अवश्य करते।

घर के इस कलह का यह परिणाम हुआ कि वह धीरे धीरे अधिक गंभीर और रूखा बनता गया। लेकिन मां की शिष्टता और सहनशीलता का प्रभाव तो अमिट रहा। अंतिम वर्षों में उन्होंने एक पत्रकार को बताया भी, ''मुझे जीवन भर अन्याय के खिलाफ लड़ना पड़ा है। अपने परिजनों से भी। मेरा शरीर एवं मस्तिष्क बचपन से ही इतने सख्त हो गये कि मैं बड़े से बड़े कष्ट भी आसानी से झेल सका।'' ऐसे भी अवसर आये थे जब उनके निकट साथियों ने ही उनके प्रति घटिया टिप्पणी की थी। जी भरकर उनको कोसा, किन्तु चौधरी साब ने कभी भी किसी के प्रति क्रोध से असभ्य टिप्पणी नहीं की। विरोध जताया भी तो शालीन भाषा में। क्या वे अपने बचपन में देखे कलह और झगड़े का प्रायश्चित कर रहे थे?

किसान परिवार में अक्सर हुक्का पीया जाता है। चौ. मीरसिंह तो हुक्का छूते तक नहीं थे। उनके बारे में कहा जाता है कि एक बार सबसे छोटा पुत्र होने के कारण चौ. बादामसिंह ने उन्हें हुक्का भर लाने का आदेश दिया। गांवों में अब भी जाट हुक्का बच्चों से भरवाते हैं। हुक्के की चिलम कंडे की आग से सुलगती है। चौ. मीरसिंह को यह ज्ञात नहीं था। वे लकड़ी के कोयले से हुक्का भर लाये। चौ. बादामसिंह ने हुक्का सुलगाया तो उन्हें बुरी तरह खांसी का दौर पड़ा। उन्होंने चिलम में कुरेद कर देखा। हुक्का कायदे से भरा भी नहीं गया था। तेवथिया सरदार का क्रोध भड़क उठा। उन्होंने आव देखा न ताव, मीरसिंह को एक चपत जड़ दी। नसीहत देते हुए कहा, ''अभी तक यह भी पता नहीं कि चिलम कंडे की आग से सुलगती है।'' मीरसिंह को बड़ी ग्लानि हुई। उन्होंने उसी दिन से शपथ ले ली कि जीवन भर हुक्का नहीं छूयेंगे।

प्राय: ही किसानों के परिवार में वे ही बच्चे धूम्रपान सीखते हैं जिनके पिता धूम्रपान करते हैं। मीरसिंह ने धूम्रपान न करने की कसम लेली थी। बालक चरणसिंह को ऐसा वातावरण नहीं मिला कि वह पीना सीखता। वैसे यह अजीब लगता है कि जो चौधरी मीरसिंह गांव में पूरी चौधराहट करते थे, हुक्का पिये बिना उनका काम कैसे चला? क्योंकि गांव में जब भी दो किसान मिलते हैं, हुक्का शुरू हो जाता है। जबकि मीरसिंह के घर तो जमघट लगा ही रहता। शायद आने वाले उनके भय से हुक्के की फरमायस करते ही नहीं थे।

उस दिन बालक चरणसिंह अपने सहपाठियों के साथ खेल रहा था। एक लड़के ने उससे पूछा, ''सिगरेट पियोगे?''

''कैसी लगती है पीने में?'' चरण सिंह ने उत्सुकता से पूछा।

''पीकर देख लेना।'' दूसरे ने कहा।

उस समय मेरठ क्षेत्र में 'लालटेन' सिगरेट का बहुत प्रचलन था। आज चरणसिंह को तीव्र इच्छा हुई कि जायका लिया जाये। उसी ने पैसे देकर कहा, "जा, एक सिगरेट ला तो जरा।"

सिगरेट आ गई। माचिस की तिली और रोगन भी उठा लाया था। चरणसिंह ने सिगरेट को हाथ में लेकर बड़े प्यार से देखा। आंखों ही आंखों में सहपाठी से पूछा, "कैसी तो लगेगी?" दूसरे ही क्षण मित्र ने, सिगरेट जला डाली। उसने स्वयं कश लेकर चरणसिंह को दे दी। चरणसिंह गौर से उसे जलाते हुए और पीते हुए देख रहा था। जब उसे कुछ नहीं हुआ तो चरणसिंह ने भी मंद मंद मुस्कराते मुंह के लगाली।

"कश खींच तो जरा।" सहपाठी की सलाह थी।

उसने धीरे से कश खींचा और जल्दी से धुँआ उगल दिया। तीसरे लड़के ने अपनी बारी समझ जब सिगरेट लेनी चाही तो चरणसिंह ने कहा, "जरा रुको तो।" फिर दूसरा कश जोर से खींचा। मुंह से धुंआ पूरा निकल भी नहीं पाया था कि जोर से खांशी आ गई। सिगरेट हाथ से छूटकर दूर जा पड़ी। आंखों में पानी आ गया। काफी देर बाद उसकी खांसी रुकी तो देखा कि सभी सहपाठी उस पर हंस रहे हैं। वह जमीन पर बैठ गया। तब सबके सामने कसम ले ली, "कभी भी बीड़ी-सिगरेट नहीं पीऊँगा। खराब चीज है भाई।" पूरी दृढ़ता के साथ इस कसम को निभाया भी। जीवनभर कभी धूम्रपान नहीं किया।

मांसाहार के बारे में भी कुछ ऐसा ही था। पूरा परिवार निरामिष था। दूर के एक रिश्ते के चाचा मांस खाते थे। एक दिन किसी कार्यवश पिता ने उसे चाचा के घर भेजा। शाम का वक्त था। चाचा माटी की हांडी में कुछ पका रहे थे। यह रसोई से अलग ही जगह पर हो रहा था। चरणसिंह को विस्मय हुआ, चाचा अलग से स्वयं ही क्या पका रहे हैं?

घर में चाची-दादी भी तो मौजूद हैं। उसे कुछ विशेष प्रकार की गन्ध भी महसूस हुई। अपनी जिज्ञासा को शांत करने के लिए उसने चाचा से पूछा, "चाचा, आज यह खुद क्या पका रहे हो?" चाचा अर्थ पूर्ण हंसी हंसे। वह गौर से एक बार हांडी की तरफ, एक बार चाचा के चेहरे को देखने लगा। चाचा ने संकेत से कहा-बैठ जाओ, फिर "बोले, जो बन रहा है, चखकर जाओ, याद रखोगे।"

बालक चरणसिंह को तसल्ली नहीं हुई। गणित का विद्यार्थी जो था। पूछा, "बताओ तो चाचा, क्या पका रहे हो?" चाचा ने लकड़ी की चमच से निकाल कर उसे दिखाया, "यह देख, मांस बन रहा है, बड़ा स्वादिष्ट है।" "अच्छा?" उसके मुंह से निकल गया। वह बैठ गया। कुछ देर बाद रोटी पर डालकर चाचा ने उसे दिया। वह एक बार थाली की ओर देखे तो दूसरी बार चाचा की ओर। चाचा समझ गये। स्वयं एक कौर खाते हुए चाचा ने हौसला बढ़ाया, "खाकर तो देख, ऐसी सब्जी कभी खाई नहीं होगी।"

चाचा को खाते देख वह भी खाने लगा। उसे निःसंदेह रुचिकर लगा। तब उसने झटपट अपने हिस्से का खाकर कुल्ले कर लिये। वह वहां अब और नहीं रुका। घर आकर किसी को भी नहीं बताया। रात को उसे पेट में गड़बड़ाहट अवश्य महसूस हुई. कुछ ही दिन बाद, जानी खुर्द गांव में भजन हो रहे थे। एक आर्य-समाजी भजनोपदेश दे रहे थे। ऐसा अवसर चरणसिंह कभी नहीं चूकता। उसने भजन में सुना-"जो मांस खाते हैं वे अपने पेट को कब्रिस्तान बना लेते हैं। एक जानवर को खाना कितना बड़ा पाप है। भगवान ने संसार में खाने के लिए बहुत कुछ दिया है। यह तो राक्षशों का खाना है।" सुनकर उसे बहुत ग्लानि हुई। महसूस हुआ, जैसे पेट में कुछ बोल रहा है।

संयोग से, कुछ दिन बाद ही, एक नाथजी महाराज का कार्यक्रम था। भगवांवेश धारी, कान फड़ाये, नाथजी से चरणसिंह बहुत प्रभावित हुआ। वह एकटक नाथजी को देख रह था और भजन सुन रहा था....

"बाहर से इक मुर्दा लाये, धोय-धाय चढ़वाई।
सब सखियां मिलि जेंवन बैठी, घर भर करैं बड़ाई॥
हिंदुन की हिंदुवाई देखी, तुरकन की तुरकाई।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, कौन राह हवै जाई॥"

एक दूसरे भजन में उसने सुना-

"हिन्दु की दया मेहर तुरुकन की, दोनों घट सो त्यागी।
वे हलाल वे झटका मारैं, आगि दुना घर लागी॥
हिन्दु-तुरुक की एक राह है, सतगुरू इहै बताई।
कहेहि कबीर सुनहु हो सन्तो, राम न कहेउ खुदाई॥"

उस रात घर आने के बाद भी बालक चरणसिंह को नींद नहीं आई। उसे लगा, उसने कितना बड़ा पाप किया है। नाथ बाबा ने अर्थ समझाते हुए हिन्दु-मुस्लिम दोनों को फटकारा था। दोनों अपने अपने धर्म की बड़ाई करते हैं लेकिन बुरा काम दोनों एकसा करते हैं। जबकि खुदा या भगवान तो एक ही हैं। उनके नाम दो तो हमने रख दिये हैं। रास्ते अलग अलग बता दिये हैं लेकिन मंजिल तो एक ही है।

आर्य समाज के बाबा ने भी तो यही कहा था, "मूर्ति पूजा, छूआ छूत, छोटा-बड़ा यह ढकोसला तो समाज के दुश्मनों ने बनाया। ईश्वर तो एक है, उसे खुदा कहो या भगवान। सबसे बड़ा धर्म तो मानव धर्म है। सब धर्मों का मूल दया-भावना है। जिसमें दया नहीं, वह अधर्मी है।"

उसने यह क्या कर लिया? एक जानवर को खा लिया? गौतम बुद्ध अचानक रात को सोते हुए पत्नी और बच्चे को छोड़कर चले गये। बालक चरणसिंह उस रात अपनी चारपाई पर उठ बैठा। उसकी आंखों की नींद न जाने कहां गायब हो गई। वह देर तक चारपाई पर बैठा सोचता रहा। तब उसके कोमल मन ने जैसे दो निर्णय लिये थे। एक, जीवन में कभी मांस नहीं खाना है, दूसरा, भगवान तो एक ही है, फिर यह हिन्दु-मुसलमान का झगड़ा कैसा? यह मूर्ति पूजा, यह नमाज, यह क्या है? क्योंकि आदमी की नियत तो खराब ही रहती है। भगवान को मानकर भी वह ओछा काम क्यों करता है? इस दूसरे विचार ने रातों रात बालक चरणसिंह को बदल दिया। सुबह वह उठा तो चौ. मीरसिंह के घर में जैसे एक और कबीर ने जन्म ले लिया था। ये दोनों घटनाएं बालक चरणसिंह के दृढ़ निश्चय की वे आधार शिलाएं थी, जिन पर आगे चलकर वे चौधरी चरणसिंह बन सके और अन्तत: ग्रामीण भारत के महानायक।

जीवन के अंतिम वर्षों में वे और अधिक चिंतक, दार्शनिक तथा आध्यात्मिक हो गये थे। अपने निकटस्थ आदमियों के सामने प्राय: ही बचपन की चर्चा करते रहते। बैठे रहते 12 तुगलक रोड़ के बंगले में और पहुंच जाते भूपगढी की अपनी मंडैया में। सता से बाहर रहने पर भी मिलने जुलने वालों का तांता लगा रहता था। कहने लगते, "पिताजी को गांव में लोगों से घिरा देखता तो मेरे मन में भी इच्छा जागती कि मैं भी ऐसे ही लोगों से घिरा रहूँ।" हुआ भी यही। चाहे सता के बाहर या भीतर, उनके निवास पर जैसी भीड़ रहती, वह अपने आप में एक रिकार्ड है। आखिरी सालों में तो मिलते मिलते थक भी जाते थे। तब वही चौ. मीरसिंह का चिड़चिड़ापन उन पर भी हावी हो जाता। लेकिन मिलना-जुलना कभी छोड़ा नहीं। मानव प्रेम से बड़ा क्या धर्म होगा? और यदि कहीं उस रात, जाट के घर जन्मा यह कबीर घर छोड़ के निकल जाता तो नि:संदेह एक धर्म प्रचारक, समाज सुधारक ही बनता। किन्तु बदलती परिस्थिति में उसने जो किया, वह नेता का काम कम, संत का अधिक था। राजनीति में सदा बैचेनी ही रही।...बहरहाल...।

4

न जाने क्यों, चौधरी मीरसिंह का मान न गया था कि चरणसिंह को प्रायमरी स्कूल से आगे न पढाया जाये। बहुत हो गया। अक्षर ज्ञान तो हो ही गया। आखिर खेती ही तो करनी है। अव्वल दर्जे में पास होने के कारण मां चाहती थी कि बेटा आगे पढे। मीरसिंह कहते, "कहां से पढ़ाऊंगा? आगे का खर्चा कौन देगा? नहीं, नहीं, बस बहुत हो गया।" तब ताऊ लखपतसिंह को पता लगा। उन्होंने भाई को समझाया, "छोरे की पढाई मत रोको। हम कैसे भी व्यवस्था करेंगे।"

आस पास के गांवों में प्रायमरी से आगे स्कूल नहीं थे। तब शहर में जाना आवश्यक हो गया। मेरठ में रहने का खर्चा कहाँ से आयेगा? तब राजकीय स्कूलों की पढाई और अनुशासन प्रसिद्ध थे। लेकिन बोर्डिंग का खर्चा वहन करना मीरसिंह के वश की बात नहीं थी। वे इसी उधेड़बुन में लगे रहे।

बाबा लखपतसिंह ने तब एक रास्ता निकाला। किसी ने उन्हें सलाह दी कि मेरठ शहर की मॉरल ट्रेनिंग स्कूल में भर्ती करा दो। यह संस्था पढाई के साथ साथ नैतिक शिक्षा भी देती थी। छात्रों को सादगी से रखा जाता था। खर्चा भी कम ही आता था। उन्होंने छोटे भाई मीरसिंह को कह दिया, "भाई, छोरे को वहीं भेज दो। रूपये पैसे की आवश्यकता पड़ी तो मैं मदद करूंगा।"

इस संस्था को गुड़गांव जिले के रहने वाले मास्टर शादीराम चलाते थे। अनुभवी तथा प्रतिभाशाली अध्यापक। यह विधि का संयोग था। बालक चरणसिंह मेरठ में ऐसा आया कि फिर मेरठ का ही होकर रह गया। मास्टर शादीराम को जब पता लगा कि बालक चरणसिंह के पूर्वज गुड़गांव जिले से आये थे तो वे बहुत प्रसन्न हुए। यह संस्था गुरूकुल की तरह चलती थी। शिक्षा के साथ साथ नैतिकता, उच्च चरित्र, सादा जीवन और भारतीय संस्कृति के पाठ पढाये जाते। सभी छात्रों से श्रम की अपेक्षा की जाती थी। बालक चरणसिंह में तो ये गुण विद्यमान थे। यह संस्था उसे बहुत पसन्द आई। शीघ्र ही वह यहां लोकप्रिय हो गया। पहले के उसके विचार एवं संस्कार और भी दृढ़ हो गये। आर्य समाज और कबीर के समिश्रण ने उसके चरित्र को इतना दृढ़ बना दिया कि आयु भर यह फक्कड़, अक्खड़ बना रहा।

मास्टर शादीराम की खुशी का तो कोई अन्त न था। उन्हें लगा, जैसे चरणसिंह तो पहले से तैयार होकर आया हो। यह आश्रम का जीवन चरणसिंह को बहुत रास आया। उसकी प्रतिभा में और निखार आया। सहपाठी उसे अपना आदर्श मानने लगे। छात्रों को वह सलाह देता रहता। वह जैसे आयु से आगे चल रहा था। कभी किसी छात्र से झगड़ा नहीं किया। दो छात्रों में आपस में तकरार होने पर वही बीच में पड़कर समझौता कराता। सुबह-शाम प्रार्थना बोलने में सबसे आगे रहता। जब तब मित्रों को कबीर के भजन भी सुनाया करता। कई बार मित्र पूछते, "इसमें कबीर जी ने क्या कहा है?"

तब वह सबको उसका अर्थ भी समझाता। यह देखकर बड़ी आयु के लड़के भी उसे सम्मान देने लगे।

उन्हीं दिनों की बात है। एक थे पंडित हरमानसिंह, मुरादाबाद के रहने वाले। वे ज्योतिष और हस्तरेखा के ज्ञाता थे। वे प्राय: ही मेरठ आते तो पंडित शादीराम के पास ही रुकते। उस दिन जब वे आये तो बातों ही बातों में पंडित शादीराम ने चरणसिंह की चर्चा कर दी, "ऐसा लड़का मैंने नहीं देखा।"

पंडित हरनाम बोले, "उससे मैं मिलना चाहता हूँ।"

शादीराम ने तुरन्त चरणसिंह को बुला लिया। पंडित हरनाम उसका हाथ देखने लगे।

फिर गद्गद् हो शादीराम से बोले, "यह तो एक दिन राजा बनेगा।"

पंडित शादीराम बहुत प्रसन्न हुए। चरणसिंह पर उनकी कृपा पहले से थी। पता नहीं, उसी दिन से प्रभावित हुए हो, किंतु चरणसिंह की रुचि भी ज्योतिष में थी। बाद में जब वे जेल गये, तो दूसरे बंदियों का हाथ देखकर बताया करते थे। स्वयं के लिए भविष्यवाणी की थी कि वे 105 वर्ष जीयेंगे। लेकिन यह सच नहीं हुई।

मानव सेवा ही सबसे बड़ा धर्म है, यह उसके मन में कूट कूट कर भरा था। यहां उसे वह अवसर भी मिला। पंडित शादीराम के वयोवृद्ध पिता भी यहां रहते थे। वह तन-मन से इनकी सेवा करता। नियम से समय समय पर चिलम भर दिया करता। वृद्ध की आंखों की ज्योति कमजोर थी। बालक चरणसिंह कभी कभी अपने हाथ से खाना भी खिलाता। तब उसे अत्यंत संतोष मिलता।

ऐसा लगता है कि इस संस्था की पढाई से बाबा लखपतसिंह को अधिक अपेक्षा नहीं थी। या सरकारी स्कूल का मोह रहा होगा। एक साल बाद ही 1914 में चरणसिंह को राजकीय स्कूल की छठी कक्षा में प्रवेश दिलाया। रहने की व्यवस्था पंडित शादीराम के पास ही रही। राजकीय हाई-स्कूल में भी चरणसिंह की प्रतिभा छुप नहीं सकी। अपनी कक्षा में हमेशा प्रथम श्रेणी में पास होता रहा। यहां व्यापक संपर्क सूत्र बनने लगे। अपनी प्रतिभा से सभी को प्रभावित किया। सहपाठी उसे सम्मान देते तो गुरुजन स्नेह। कभी कभी भीड़भाड़ से अलग हटकर वह बैठ जाता और न जाने क्या सोचता रहता। अध्यापक उसे चिंतक-छात्र कहने लगे। आठवीं कक्षा जब प्रथम श्रेणी में पास की तो स्कूल में उसकी धाक जम गई। प्राय: ही छात्र उसे देख आपस में चर्चा करते, "देखो, वह चरणसिंह जा रहा है। यह एक दिन कुछ करेगा भैया।"

नवीं कक्षा में उसने एच्छिक विषय विज्ञान लिया। उन दिनों प्रतिभाशाली छात्रों को ही विज्ञान में प्रवेश मिलता था। विज्ञान की पढाई में एकाग्रता की आवश्यकता हुई। तब उसने पंडित शादीराम की संस्था को छोड़ने का निश्चय किया। ऐसा लगता है कि पंडितजी ने इस सेवा-भावी के कंधों पर बहुत सारा भार डाल दिया था। संस्था के अतिरिक्त घर-गृहस्थी के कार्य भी उसे निपटाने पड़ते। तब उसे अध्ययन का अवसर बहुत कम मिलता। किशोर चरणसिंह को यह लादा गया भार आत्म सम्मान के विरुद्ध लगा। भविष्य का धुंधला सपना अब स्पष्ट होने लगा था। वह कड़ी मेहनत करके अव्वल नम्बर लाना चाहता था। तब प्रयत्न करके राजकीय स्कूल के हॉस्टल में प्रवेश ले लिया।

इसमें भी उसे बाबा लखपत सिंह का सहयोग मिला। चौ. मीरसिंह का हाथ तंग रहता था। बोर्डिंग के नाम से वे पीछे हट गये थे। चरणसिंह ने अपनी मजबूरी बताई। बाबा ने ही उसे स्वीकृति दी। बोर्डिंग की जिन्दगी एक नियमित ढर्रे पर चलती थी। यह चरणसिंह को पसन्द थी। समय पर सोना, खाना, उठना, पढना सब घड़ी की सुई के साथ चलने लगे। शाम के समय खेल होते। पहली बार छात्र चरणसिंह ने खेलों में भाग लेना शुरू कर दिया। सलाह देने में अगुआ था। जो छात्र खेलना पसन्द नहीं करते, उन्हें समझाता भी, "भैया, पढने के लिए खेलना भी आवश्यक है। दिमाग हल्का रहता है।" कुछ दिनों बाद ही वह हॉकी में स्कूलों की जिला टीम में चुन लिया गया। तब से खेल में बराबर रुचि बनी रही।

महत्वपूर्ण था-स्कूल में एक बड़े पुस्तकालय का होना। विज्ञान का छात्र होने पर भी चरणसिंह साहित्य व आर्थिक विषयों में बहुत रुचि रखता था। पुस्तकालय में तुलसी, कबीर, नानक और दादूदयाल के साहित्य को खोज खोज कर पढ डाला। अंग्रेजी राज में अंग्रेजी के महत्व को समझता था। प्रतिदिन अंग्रेजी पर वह कुछ समय अवश्य देता। इसका परिणाम हुआ कि अंग्रेजी पर आश्चर्य जनक रूप से उसका अधिकार हो गया। उन्हीं दिनों स्कूल की पत्रिका के लिए लेख, कहानी छात्रों से मांगी गई थी। उसने आर्थिक एवं साहित्यिक विषयों पर अंग्रेजी में लेख लिखे। उसकी भाषा-शैली और विचार पढ़कर गुरूजन दंग रह गये।

उसके बाद तो सीनियर छात्र भी उससे मित्रता करने को उत्सुक थे। किन्तु उसकी दिनचर्या पर कोई अन्तर नहीं पड़ा। वह अत्यंत सादी वेश भूषा में, गंभीर विचारों में खोया रहता था। देखने

में बिल्कुल देहाती छात्र, जो दूर से ही पहचाना जा सकता था। किन्तु उसकी आंखों में एक अलौकिक चमक, आत्म विश्वास का आभास और चिंतनमुद्रा, उसे सबसे अलग करती थी। निकटता बढाने के लिए छात्रों को खूब प्रयास करने पड़ते, तब ही घनिष्ठता बनती। लेकिन उसे कभी अभिमानी नहीं माना गया। हाँ अध्यापक उसे, 'समय से पूर्व बुजुर्ग' अवश्य कह देते। उसकी गंभीरता, सोच और एकान्तता गुरुजनों के लिए रहस्यमय थी।

वह प्रथम विश्व-युद्ध का काल था। सब जगह युद्ध की ही चर्चा थी। स्वार्थ से अन्धी दुनियां का कुचक्र था। और वह किसी कोने में बैठा गा उठता,

"यह जग अंधा मैं केहि समझावों।
इक-दुई हों उन्हें समुझावों, सब ही भुलाना पेट के धंधा।
पानी के घोड़ा पवन असवरता ढरकि परै जस ओस के बुंदा।
गहरी नदिया अगम बहै धरवा खेवनहारा पड़िगा फंदा।
घर की वस्तु निकट नहिं आवत दियना बारि के ढूंढत अंधा।
लागी आग सकल बन जरिगा बिन गुरू ग्यान भटकिया बंदा।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, इक दिन जाय लंगोटी झार बंद्रा।"

कबीरजी तो बहुत पहले समझा गये हैं, फिर यह दुनियां क्यों अंधी बनी हुई है। ऐसे क्षणों में सोचते सोचते वह स्वयं खो जाता। उस दिन स्कूल के हैडमास्टर की नजर उस पर पड़ गयी। वे धीरे-धीरे चलकर चरणसिंह के पीछे खड़े हो गये। देखा, चरणसिंह तो न जाने कहां खोया हुआ है। हाथ में कबीर की वाणी की कोई पुस्तक थी। क्षण भर सोचने के बाद पूछा, "चरणसिंह क्या सोच रहे हो?"

सहसा वह चौंक कर खड़ा हो गया।" "यही, इस युद्ध के बारे में सर!"

"भाई, तुम्हारे सोचने से क्या युद्ध बन्द हो जायेगा?"

"अकेले से तो नहीं, लेकिन सब ऐसा सोचने लगें तो अवश्य बंद हो सकता है सर! निर्दोष मानवता के खून के गवाह तो सभी हैं।" चरणसिंह के इस कथन से हैडमास्टर साहब विस्मित रह गये। उन्होंने अपने इस प्रतिभाशाली शिष्य की पीठ थपथपाई। तभी कक्षा की घंटी बज उठी।

और जब हाई स्कूल परीक्षा पास की, तभी युद्ध समाप्त हुआ। ये पांच साल दुनियां की राजनीति के महत्वपूर्ण वर्ष थे। रूस की क्रांति हो चुकी थी। दक्षिण अफ्रिका से गांधीजी का भारतीय राजनीति में पदार्पण हो चुका था। जलियां वाला बाग का विभत्स कांड हो चुका था। उसके भावुक और किशोर मन को विचलित करने के लिए ये घटनाएं तूफानी थी। वह गहरे अन्दर तक हिल उठा।

हाई स्कूल परीक्षा में विशेष योग्यता के साथ उतीर्ण हुआ। परीक्षा देने के बाद वह गांव नहीं गया था। तब आर्य समाज की गतिविधियों का जोर था। वह शहर के बड़े पुस्तकालय में अध्ययन करने लगा। मेरठ के इतिहास की जानकारी मिली। पौराणिक काल से इस नगर के महत्व का पता लगा। महाभारत के हस्तिनापुर की जानकारी मिली। राजा परीक्षित का गढ भी यहीं है। जैन तीर्थकरों के प्राचीन मंदिरों का अपना इतिहास था। गढ मुक्तेश्वर का तीर्थ स्थान। वही गढ मुक्तेश्वर, जिसके कार्तिक मेले में सन् 1856 में राजा नाहरसिंह ने क्रांतिकारियों की बैठक बुलाई थी। और तब वह मेरठ को अपना घर समझने लगा था।

अध्ययन के अतिरिक्त आर्य समाज के जलशों में भाग लेने लगा था। नाथ सम्प्रदाय के साधुओं द्वारा गाये जाने वाले भजनों को सुनता; तब हिन्दू कट्टरवाद और जातिवाद से उसे सख्त घृणा हो गई। हिन्दू-मुसलमानों की तकरार, इन धर्मों के ठेकेदारों की साजिश जान पड़ती। अक्सर वह गुनगुनाता-

'अरे इन दोउन राह न पाई।
हिन्दू अपनी करै बड़ाई गागर छुअन न देई।
वेश्या के पायन पर सोवै, यह देखो हिन्दु आई॥

मुसलमान के पीर औलिया, मुर्गा-मुर्गी खाई।
खाला केरी बेटी ब्याहै, घर में करे सगाई॥'

मेरठ का तो इतिहास ही ऐसा था। सन् 1857 की क्रांति की चिंगारी यहीं से प्रज्वलित हुई थी। हिन्दू-मुसलमानों ने बादशाह बहादुरशाह जफर को देश का शासक माना था। हिण्डन के पुल के पास का वह मैदान अब भी सुरक्षित है, जहां मेरठ के फौजियों की अंग्रेज सेना से प्रथम भिडन्त हुई थी।

मेरठ जन आन्दोलनों का केन्द्र बिन्दु बना गया था। बंग-भंग के आंदोलन की चेतना मेरठ पहुंची थी। हिन्दू-मुसलमानों को अंग्रेज पृथक करना चाहते थे और इसका विपरीत प्रभाव मेरठ में हुआ था। सन् 1919 की हड़ताल का व्यापक प्रभाव पड़ा था। रोलेट-एक्ट के खिलाफ जगह जगह जन आंदोलन और आम हड़ताल हो रही थी। चांदनी चौक का गोलीकांड और जलियां वाला बाग के विभत्स नरसंहार से मेरठ कांप उठा था। और तब, किशोर चरणसिंह जैसे रातों रात, यह सब सुनकर, पढ़कर और भी बुजुर्ग बन गया था।

यह कम आश्चर्यजनक नहीं कि इन भयानक झटकों को झेलता हुआ उसका चिंतातुर मन प्रथम श्रेणी में मैट्रिक पास करने लायक शेष रहा था। परीक्षा परिणाम को उसने जितना सहज लिया, घरवालों के लिए उतना ही असाधारण था। बाबा लखपतसिंह की खुशी का कोई अन्त न था। उसे गाँव बुलाने का समाचार आया। उन्हीं दिनों राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती' हाथ लगी। एक ही बैठक में पढ गया। इसका उसके मन पर अमिट प्रभाव पड़ा। लोकमान्य तिलक और गांधीजी के समाचार वह रोज अखबारों में पढता। तिलक का नारा, 'स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है', से वह बहुत प्रभावित हुआ। वह मन ही मन दोहराता, "स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है और हम इसे लेकर रहेंगे।" एकान्त में भी वह मुट्ठी हवा में लहराता। इसीलिए तो उसका गांव जाना टल रहा था।

उन्हीं दिनों तो वह समझ सका कि ये अंग्रेज व्यापारी बनकर आये थे और देश के शासक बन बैठे। उसका सोचना था कि यह सब भारतीयों की फूट का परिणाम है। यह देश कभी एक राष्ट्र के रूप में नहीं रहा। अलग अलग कबीलों और जातियों के रूप में अपनी पहचान बनाये रखी। इसीलिए तो मुट्ठी भर विदेशी भारत को गुलाम बनाते रहे। इस बात को वे बारबार, बाद में, अपने लेखों एवं पुस्तकों में लिखते रहे।

और यहीं से चरणसिंह में एक और परिवर्तन हुआ। आर्य समाज का समाज-सुधारक, पाखण्ड और कट्टरता का विरोधी कबीर चरणसिंह, अब राजनैतिक रूप से भी समझदार हो गया। बदलती परिस्थिति में ये सब एक ही पहलू के अंग थे। बल्कि आर्य समाज और कबीर ने चरणसिंह को भारतीय नेताओं, गांधीजी को छोड़ कर, सबसे अलग कर दिया। गांधीजी में भी कबीर नहीं बोलता था, बल्कि तुलसीदास का राम था। तभी तो चरणसिंह राजनीति में बहुत-कुछ को अस्वीकर करने का अपार साहस लेकर अवतीर्ण हुए थे। उन्होंने राजनीति के मठाधीशों पर प्रत्यक्ष प्रहार किया था। कबीर की वह घर-फूंक मस्ती, फक्कड़ाना लापरवाही और निमर्म अक्खड़ता ही चौधरी साब के अखंड आत्म विश्वास का परिणाम थी। उन्होंने कभी भी अपने विश्वास, अपने सिद्धान्त को संदेह से नहीं देखा और न वे अपने पथ से विचलित हुए। अपनी साधना की कमी उन्हें कभी नहीं नजर आई। यह सब उनके भीतर बैठे कबीर की करामात थी। और यदि ऐसा नहीं होता तो चरणसिंह भले ही सत्ता के पाये से किसी ऊंची कुर्सी पर बैठ जाते, 'जी हाँ,' करके सुख सुविधा उठा लेते, लेकिन तब वे 'चौधरी' भी नहीं बन पाते, किसान-मसीहा या महानायक बनने की बात तो दूर रही। यह सब संभव हुआ तो उनके आर्य समाज के संस्कार और, सबसे अधिक अन्दर बैठे कबीर की वजह से हुआ। किन्तु, अभी तो चर्चा किशोर चरणसिंह की ही चल रही है।

घरवालों के बार-बार कहने पर, आखिर वह एक दिन गांव पहुंच ही गया। मां की खुशी का अन्त नहीं था। चौधरी मीरसिंह जैसे अब बदले नजर आये। उन्हें आभास हुआ था-बेटा अब

बड़ा हो गया है। जानी खुर्द गांव के हम उम्र उससे मिलने तो आये, लेकिन उन्हें चरणसिंह का कद बहुत बड़ा दिखाई दे रहा था। चरणसिंह के साथ उनके मजाक, ताल-तलैया में खेलना अब समाप्त हो चुका था। गांव में जिधर से निकलता, उस पर सबकी नजर पड़ती। सुबह शाम वह नहर के किनारे घूमता। उस भयानक गर्मी में भी किसान नंगे बदन खेतों में लगे रहते। चोटी से ऐड़ी तक पसीने में लथपथ। कई बार वह बैठा बैठा सोचता, भगवान का रूप हैं ये किसान। गर्मी सर्दी की परवाह किये बिना, धरती मां की कोख से अन्न उत्पन्न करके देश का पेट भरते हैं। और बदले में? बदले में दो जून की रोटी मुश्किल से जुटा पाते हैं। लोग मंदिर-मस्जिद जाते हैं-भगवान को देखने। ईश्वर तो इन खेतों में, पगडंडियों पर, नहर के आसपास ही तो रहता है। तब वह एक किनारे बैठ, गा उठता-

"मो कों कहां ढूंढे बंदे, मैं तो तेरे पास में।
ना मैं देवल ना मैं मस्जिद, ना काबे कैलास में।
ना तो कौने किया-कर्म में, नहीं योग बैराग में।
खोजी होय तो तुरतै मिलिहौं, पल भर की तालास में।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, सब स्वांसों की स्वांस में॥"

इस खोजी ने तो भगवान को ढूंढ लिया। गांधी का भगवान भी तो दरिद्रनारायण था। चरणसिंह का भगवान गांव में बसता है। जिसकी आत्मा निर्मल है। जो ईश्वर की प्रकृति के बीच पलता है। धरती मां की गोद में रहता है। जो दाता है। फरेबों और पाखण्डों से दूर। गरीब की तुम सुनोगे तो वह तुम्हारी सुनेगा। ईशा मसीहा ने कहा था, "सूई की नोक से ऊंट का निकलना संभव है लेकिन अमीर का स्वर्ग में जाना असंभव है।" उस दिन उसे नहर के किनारे, सचमुच 'ज्ञान प्राप्ति' हुई।

वह अब किस्से-कहानी भी सुनाने लगा। उस दिन गांव के काफी किसान बैठे थे। तब उसने एक किस्सा सुनाया। "नारद जी, नारायण...नारायण कहते भगवान के पास गये। भगवान बहुत प्रसन्न हुए। तब नारदजी ने पुलकित हो पूछा, "भगवान, क्या संसार में मेरे से भी बड़ा आपका कोई भक्त है?"

"हाँ, है।" भगवान ने मुस्कराकर उत्तर दिया।

नारदजी को आश्चर्य हुआ। यह कैसे हो सकता है? उन्होंने उस भक्त का नाम पूछा। भगवान ने उत्तर दिया, "अमुक गांव का रामु किसान।"

नारदजी तुरन्त उसे देखने चल पड़े। सुबह से शाम तक रामु अपने खेत में काम करता रहा। रात को घर आया। खाना खाकर, थका-हारा जब चारपाई पर सोया, तो उसके मुंह से अनायास ही निकल गया-"हे मेरे भगवान!" नारदजी आग-बबुला हो भगवान के पास आये। आते ही बोले, "भगवान कैसा है आपका न्याय! मैं 24 घंटे आपका नाम लेता रहता हूँ। रामु किसान ने सिर्फ एकबार आपका नाम लिया। फिर भी आप कहते हैं कि रामु मेरे से बड़ा भक्त है?"

भगवान मुस्कराये! बोले, "नारदजी, रामु किसान को सिर्फ रात को ही समय मिलता है, तब वह मेरा नाम लेता है। बेचारा अपने कर्म में जुटा रहता है। तुम तो आठों पहर निठल्ले रहते हो। अपना कर्म किये बिना सिर्फ मेरा नाम लेने से क्या होगा? और तुम्हारा कर्म तो है आपस में भिड़ाना।"

किस्सा सुनकर किसान बहुत खुश हुए। उस दिन मां ने पूछा, "यह सब तूं कहां से सीख गया है रे?"

"मां, तुझसे, पिताजी से, सब किसानों से।" उसका उत्तर था।

"चल झूठा।" मां कुछ समझ नहीं पाई। उसे अपनी दिशा का रास्ता मिल गया। इस राह पर अबाध गति से चलने का उसने संकल्प कर लिया। किसान के प्रति प्रतिबद्धता ही उसकी भक्ति होगी। और जब तक किसान की दुःखों से मुक्ति नहीं हो जाती, उसकी भक्ति अधुरी रहेगी। इसके

लिए आवश्यक है, पढ़ना, और आगे बढ़ना। विद्रोह के लिए विकल्प की आवश्यकता होती है। बिना लक्ष्य के विद्रोह विनाशक होता है। उस दिन पिता श्री मीरसिंह ने पूछा, "अब क्या करोगे?"

"मैं तो आगे पढ़ना चाहता हूँ।"

मीरसिंह चुप रह गए। कैसे कहें कि अब भैया, नौकरी ही कर लो। छोटे भाई भी हैं। खर्चा कहाँ से आयेगा? बेटे ने बाप की मनोभावना ताड़ ली। वह धीरे से बोला, "पिताजी पढ़ना आवश्यक है। पैसे की व्यवस्था भी होगी ही।"

"भैया, हमेशा बाबा से पैसे मांगना भी तो ठीक नही है।" मीरसिंह ने असमर्थता प्रकट की। चरणसिंह ने साधिकार कहा, "बाबा कोई दूसरे तो हैं नहीं। आप चिंता न करें।" तब चौ. मीरसिंह क्या उतर दें।

5.

कालेज तो मेरठ में भी था। लेकिन चरणसिंह का विश्वास था कि यहां पढ़ाई अच्छी नहीं होती। चौ. मीरसिंह को तो आगे पढ़ने से ही ऐतराज था। दो पैसे कहीं से कमाने की व्यवस्था हो तो सहारा मिले। जब बाबा लखपतसिंह को खबर लगी तो पूछा, "तुम कहाँ पढ़ना चाहते हो?" उन दिनों उत्तर प्रदेश में आगरा और इलाहाबाद शिक्षा के अच्छे केन्द्र थे। दोनों जगह अंग्रेज प्रिन्सिपल और प्रोफेसर थे। आगरा घर के समीप था। इसलिए युवक चरणसिंह ने आगरा जाने का मानस बनाया। अपने मन की बात बाबा को बतला दी। ताऊजी से पैसे लेकर वह मुगलों की प्रथम राजधानी आगरा चल पड़ा।

यह सन् 1919 की बात है। इंटर के प्रथम वर्ष में प्रवेश लिया। विषय विज्ञान ही था। छात्रावास में रहने लगा। यह आर्थिक स्थिति के अनुसार मंहगा था। फिर भी पिता और ताऊ ने साहस किया। मेरठ में रहते एक स्मृद्ध सज्जन से चरणसिंह का परिचय हुआ था। नाम था-डॉ. भूपाल सिंह। डा. साहब चरणसिंह की प्रतिभा के कायल थे। चरणसिंह की आर्थिक स्थिति को अच्छी तरह जानते थे। आगरा जाने से पहले चरणसिंह ने इनसे घर-सम्बन्धि चर्चा की थी। जब डा. साहब को पता लगा कि घरवालों ने आगरा पढ़ने की स्वीकृति किसी तरह दे दी; तो डा. साहब का मन भी पसीज गया। उन्होंने दस रुपये महिना छात्रवृत्ति देना स्वीकार कर लिया। छात्रवृत्ति की साल भर की रकम अग्रिम रूप में एक साथ दे दी। इससे चरणसिंह का हौसला बढ़ा। इन डाक्टर साहब के चरणसिंह आजन्म आभारी रहे।

होस्टल और कॉलेज का खर्चा बहुत था। किन्तु चरणसिंह की मुट्ठी बन्द रहती। वह बहुत सादगी से रहता। उसे अपनी गरीबी से कभी शर्म नहीं आई। वह सोचता रहता, इस देश में बहुत गरीबी है। बहुत से प्रतिभाशाली छात्र बिना पढ़े-लिखे रह जाते हैं। हां, किसी तड़क-भड़क वाले विद्यार्थी की ओर वह विरक्ति से देखता। उसे धनवानों से उसी समय घृणा हो गई थी।

प्रथम विश्व युद्ध समाप्त हो चुका था। लेकिन भारत सुलग रहा था। मेरठ से आगरा आने तक वह और अधिक परिपक्व हो चुका था। विज्ञान के विद्यार्थियों के लिए सामान्य अंग्रेजी ही कोर्स में थी। किन्तु चरण सिंह को अंग्रेजी साहित्य से भी अनुराग था। अंग्रेजी कविताओं का विशेष शौकीन था। गोल्ड स्मिथ उसके प्रिय कवियों में से था। वह उसकी कविताओं की याद करके गुनगुनाया करता। यह क्रम बाद में भी वर्षों तक रहा। यहीं उसने इटली के जौसेफ मैजिनी और दूसरे विश्व विख्यात क्रांतिकारियों की जीवनियां पढ़ी। रूसी साहित्य का अनुवाद अंग्रेजी मे अनुदित हो चुका था। इसीसे उसने रुसी साहित्य, क्रांति और महान् लेनिन के बारे में पढा/आर्थिक-

राजनैतिक किताबों का गहन अध्यन किया। गजब की अध्ययन प्रवृत्ति थी। प्रत्येक विषय की तह में जाने का संकल्प था। तभी उसका आर्थिक और राजनैतिक चिंतन गहन रूप से शुरू हो गया था। कालेज के पुस्तकालय में बैठा, वह इनमें खोया रहता। न किसी से गप्प मारता न उसे कोई बतलाता। गंभीर अध्ययन की परम्परा यहीं से शुरू हुई जो जीवन भर आश्चर्यजनक रूप से जुड़ी रही।

सन् 1921 में इंटर की परीक्षा उतीर्ण की। उसी वर्ष महात्मा गांधी ने असहयोग आंदोलन का आह्वान किया। सरकारी कर्मचारियों, वकीलों और विद्यार्थियों से विशेष अपील की गई। अनेक छात्रों ने स्कूल-कॉलेजों का बहिष्कार किया। छात्रावास खाली होने लगे। ऐसे में भला युवक चरणसिंह पर इसका प्रभाव कैसे न पड़ता? वह तो जैसे इस अवसर की प्रतिक्षा में था। सहपाठियों ने पूछा, ''तुम्हारा क्या विचार है चरणसिंह?''

उसने तपाक से उत्तर दिया, ''अब सोचने का नहीं, करने का वक्त आ गया है। मैं तो कल मेरठ जा रहा हूँ।''

दूसरे ही दिन उसने अपना बिस्तर बाँध लिया। दूसरे छात्रों को रास्ता दिखा दिया। मेरठ पहुंच सबसे पहले डा. भूपालसिंह से मिला। शायद उन्हें ही सबसे पहले अपने निश्चय की खबर देनी थी। उनसे भावी कार्यक्रम की भी सलाह लेनी थी। देखते ही डा. भूपालसिंह विस्मित रह गये। वे उस नवयुवक के चेहरे की ओर ताकते रहे। उसके मुंह से पुरी बात सुन लेने के बाद कहा, ''यह तुमने अच्छा नहीं किया। आजादी की लड़ाई तो लम्बी चलेगी। भावुकता में उठाया गया तुम्हारा यह कदम हानिकारक रहेगा।''

वह डाक्टर साहब को देखता रहा। ''यह क्या कह रहें हैं?''

डॉ. साहब ने समझाया, ''अपनी पढ़ाई पूरी करने में कितने वर्ष लगेंगे। गांधीजी ने भी तो पूरी पढाई समाप्त करके ही आंदोलन प्रारम्भ किया है। अपने पैरों पर खड़े होकर लड़ाई लड़नी चाहिए। बिना मजबूत पैरों के युद्ध नहीं जीता जा सकता।'' ऐसी ही कुछ अन्य बातें। चरणसिंह चुपचाप सुनता रहा। फिर धीरे से बोला, ''लेकिन गांधीजी ने ही तो आह्वान किया है।''

''हाँ किया तो है।'' डाक्टर को अनुभव हुआ कि उनकी दलीलों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। तब वे बोले, ''ठीक है, आज तो तुम घर जाओ। वहां मेरी बात पर विचार करो। घरवालों से भी सलाह-मशविरा करो। एक दो दिन बाद आओ। तब हम फिर बात करेंगे।'' वह घर जा पहुंचा।

''अरे, अचानक ही कैसे आना हुआ?'' चरणसिंह को सामने खड़े देख मां ने पूछा। मां को उसने कुछ बताया नहीं। संयोग से उस दिन बाबा लखपतसिंह भी आये हुए थे। शाम को सबको पता लग गया। डा. भूपालसिंह से हुई बातचीत का भी ब्यौरा दिया। लखपत सिंह बोले,'' डा. साहब ने ठीक ही तो कहा है। किसी काम को बीच में छोड़ दूसरे की ओर भागना ठीक नहीं है।'' चौ. मीरसिंह को तो यह बात बिल्कुल ही नापसंद थी। अकेले होते तो शायद क्रोध में न जाने क्या उगल देते। बड़े भाई के सामने उन्होंने सब्र से काम लिया। तब ताऊ ने बड़े स्नेह से कहा, ''बेटा, अब तुम हमारे से अधिक समझदार हो। पढ़े-लिखे हो। हमने तुम्हारी हर बात मानी है। कैसे पढा रहे हैं, यह भी तुमसे छुपा हुआ नहीं है। अब तो कुछ ही वर्षों की पढाई बाकी है। बाद में चाहे जो करो, हम कुछ नहीं कहेंगे।''

घर की आर्थिक स्थिति तो उससे छुपी हुई नहीं थी। परिवार एक एक पैसे के लिए संघर्षरत था। माता-पिता के सूखे चेहरे देख वह पहले भी कई बार दहल गया था। वह इतना ही कह पाया, ''आपकी बात तो ठीक है।''

एक दिन वह घर रुका। खेतों में, गांव में घूमा। तब उसे महसूस हुआ कि इस अवस्था में पढना भी उसके लिए एक तपस्या है। गांव के लोगों ने पता लगने पर टोका, ''भैया, तुम तो बहुत समझदार हो, यह क्या कर रहे हो!'' परिवार, गांव की आशा को, विश्वास को वह कैसे तोड़

दे।

घरवालों को पढ़ने की बात कहकर वह डा. भूपालसिंह के पास पहुंचा। उस समय मेरठ के प्रभावशाली कांग्रेसी नेता थे-पंडित प्यारेलाल शर्मा। यही शर्माजी बाद में उत्तर प्रदेश सरकार में शिक्षा मंत्री बने। शर्मा डा. भूपालसिंह के घनिष्ठ मित्र थे। जिस समय चरण सिंह डा. साहब के पास पहुंचा, प्यारेलाल शर्मा भी वहीं बैठे थे। चरणसिंह को देखते ही डाक्टर बोले, "आओ भाई। इनसे मिलो, पंडित प्यारे लाल शर्मा।" पांडितजी का नाम चरणसिंह ने सुन रखा था। आज सामने देखकर वह गद्‌गद् हो उठा। उसने श्रद्धा से पंडित जी के पांव छुए।

पंडितजी बोले, "डॉ. साहब ने तुम्हारे बारे में मुझे सब कुछ बता दिया है। एक बात याद रखो, पढ़-लिखकर और योग्य बनकर ही देश की सेवा की जा सकती है। यह तो लम्बा संघर्ष है। तुम विज्ञान की पढाई कर रहे हो। यह भी देश-सेवा है। अपनी इस सीढी को पार करके ही तुम अगला रास्ता तैय करो। गांधीजी का विद्यार्थियों के लिए आह्मान आश्चर्यजनक है।"

वह कुछ बोला नहीं। डा. साहब को संदेह था। आंखों ही आंखों में पूछा, "कहो क्या सोचा?" चरणसिंह ने उत्तर दिया, "आप और पंडित जी की राय की अवहेलना कैसे कर सकता हूँ? मां-बाप की भी यही इच्छा है।" दोनों सुनकर खुश हुए। डाक्टर ने तो शाबासी दी, "तुम एक बहादुर नौजवान हो।"

दो कदम आगे, एक कदम पीछे। आगरा कॉलेज में लौटते हुए चरणसिंह को अपमान सा लग रहा था। सहपाठी और प्रोफेसर क्या कहेंगे! पढाई बीच में छोड़ने की हिम्मत नहीं हुई। लेकिन यह चरणसिंह के स्वभाव का आवश्यक अंग था। अपने निकटस्थ लोगों की सलाह मानने का ऐसा स्वभाव बना कि बाद में जब वह युवक चौधरी चरणसिंह बना, शीर्ष राजनीति का केन्द्र बिन्दु; तब भी निकटस्थ लोगों की सलाह स्वीकार की, चाहे इसके लिए उन्हें अपमान सहना पड़ा हो। यहां यह कहना अप्रासांगिक नहीं होगा कि कुछ ही दिनों बाद गांधीजी ने असहयोग आंदोलन वापिस ले लिया था। कॉलेज छोड़ने वाले विद्यार्थी ठगे से रह गए थे। यहीं से भगतसिंह का विश्वास गाँधी जी से उठ गया था। अलबत्ता, चरणसिंह को इस दौरान यह फायदा हुआ कि डा. भूपालसिंह ने खुश होकर छात्रवृत्ति की रकम दस रुपये से बढाकर बीस रुपये प्रतिमाह कर दी। यह चरणसिंह के लिए बहुत बड़ा सहारा था।

बी. एस. सी. के दूसरे साल में चरणसिंह ने रुड़की के इंजीनियरिंग कॉलेज में प्रवेश पाने की परीक्षा दी थी। तीस लड़के चुने जाने थे। वह परीक्षा में 29 वें नम्बर पर आया। ड्राइंग में पचास प्रतिशत अंक पाने आवश्यक थे। जाट के छोरे का ड्राइंग से क्या वास्ता? न तो कोई तैयारी थी, न ही रुचि। वह ड्राइंग में फैल हो गया। चुना नहीं जा सका। जीवन में पहली प्रतियोगिता में असफलता मिली। इसे उसने चुनौति के रूप में स्वीकार किया। इसके बाद तो वह प्रत्येक विषय की तह में बैठने के प्रयत्न में लग गया। बिना पूरी तैयारी के किसी विषय पर बोलता नहीं था। जिस विषय पर बोलना होता, उसकी गहराई तक, अध्ययन करता और कोई भी पहलू बाकी नहीं बचता। बाद में तो वे आंकड़े इस तरह अंगुलियों पर गिनाते कि सुनने वाले दंग रह जाते। बौद्धिक विशेषज्ञ भी उनकी बातों का लोहा मानते थे। ड्राइंग की असफलता ने उन्हें इस कदर मर्माहत किया था कि बाद में अपने बच्चों को अक्सर कहा करते थे, "विषय की पढाई के अतिरिक्तसभी कलाओं का भी ज्ञान होना चाहिए। इसीलिए तो वे बच्चों को संगीत, पेंटिंग, चित्रकला आदि सीखने को प्रेरित करते रहते थे। यहां तक कि अपनी बेटियों को नृत्य सीखने की सलाह भी देते थे। उनके विरोधियों ने, विशेषकर मीडिया ने उनके विरुद्ध एक यह भी आरोप लगाया था कि वे महिलाओं के प्रति संकुचित दृष्टिकोण रखते हैं। उपरोक्त उदाहरण विपक्ष के तर्क को निराधार साबित करता है।

असहयोग आंदोलन की असफलता के बाद उस समय भारत में शांति थी। उस दिन होस्टल के कमरे में बैठे सहपाठियों ने ऐतिहासिक स्थलों को देखने का कार्यक्रम तैय किया। छुट्टी का

दिन था। सबसे पहले वे ताजमहल देखने गये। संगमरमर के ताज को देखकर वह जैसे इतिहास में खो गया। ताज को अन्दर घूमकर देखा। बाहर आकर फिर वह इसे निहारता रहा। साथी ने टोका, "क्यों भाई, मुमताज याद आ रही है?" वह झेंप गया। मजाक करने की प्रवृत्ति उसकी कभी नहीं रही। फिर भी उसने उत्तर दिया, "मुमताज को नहीं, अन्याय को देख रहा हूँ।"

"क्या मतलब?" सभी मित्रों ने एक साथ पूछा।

"मतलब यही है कि एक बादशाह ने किस तरह अपनी सनक का बेजा इस्तेमाल किया है, यही देख रहा हूं। जनता की गाढे पसीने की कमाई का निर्ममता से स्वयं के लिए खर्च करना कोई सुन्दरता नहीं।" वह गंभीर हो गया।

"तूं यार साइंस का विद्यार्थी, कला और सौंदर्य को क्या जाने?" एक ने हंसते हुए उसे पकड़ा और चल पड़े।

इसके बाद सब फतेहपुर-सीकरी देखने गए। वहां हिन्दू-मुस्लिम एकता का कीर्ति स्तम्भ, महारानी जोधाबाई का महल, पूजा-गृह आदि देखे। चरणसिंह की आंखों में चमक आ गई। उसने कहा, "यह सब हिन्दू-मुस्लिम एकता का मौन साक्षी है।"

"वाह रे कबीर।" एक मित्र ने उसकी पीठ थपथपाई।

भरतपुर में महाराजा सूरजमल और अन्य सरदारों, राजाओं के महलों को देखकर उसका स्वाभिमान जैसे जाग उठा। एक मित्र ने टोका, "देखा, जाट राजाओं के महलों को देखकर हमारा कबीर कितना खुश हुआ है। फिर कहता है कि मैं जाति पांति नहीं मानता।" ठहाके लगाकर सब एक साथ हंस पड़े।

चरणसिंह गंभीर हो गया। "किसी अच्छी वस्तु को इसलिए न माना जाये कि वह जाट ने बनाई है, कहां का न्याय है। जात-पांत से परे, राजा सूरजमल स्वाभिमान और गौरव का प्रतीक है। इसके अतिरिक्त हमारे वंशज भी इनके निकट रहे हैं. राजा नाहरसिंह ने 1857 में अपने क्षेत्र में नेतृत्व दिया था। उनके बलिदान को कौन भुला सकता है। यही मैं सोच रहा था।"

"भाई, तेरे तर्क काटे नहीं जा सकते। तूं तो यार सचमुच का विचारक है।" तब हल्की सी चपत चरणसिंह ने अपने एक साथी के जड़ दी।

आगरा उसके लिए यों भी महत्वपूर्ण था। यहां के शिल्पकारी व घरेलू उद्योग धंधे अपनी मिसाल थे। वह इनसे प्रभावित हुआ था। उसी समय उसका दृढ़ निश्चय बन गया था कि देश की बेरोजगारी और गरीबी कुटीर उद्योगों से ही दूर होगी। शायद उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'भारत की भयावह आर्थिक स्थिति-उसके कारण और निदान' की पृष्ठभूमि उसी समय आगरा में तैयार हुई थी। इसके अतिरिक्त आगरे में भी मेरठ की तरह हिन्दू-मुस्लिम आबादी थी। उसकी हिन्दू मुस्लिम एकता की कोशिशों की आधार शिला, शिक्षा प्राप्त करते समय ही मेरठ और आगरा में पड़ चुकी थी; जिसे जीवनभर निभाया।

और अंत में 1923 में उसने आगरा से विज्ञान की स्नातक परीक्षा पास कर ली। लगता है, उस समय उसके विचार तेजी से परिवर्तित हुए। वह आर्थिक विषयों का अध्ययन करना चाहता था। तब उसने निश्चय किया कि अर्थशास्त्र में एम. एम. किया जाये। इसके लिए लखनऊ युनिवर्सिटी में पढ़ना चाहता था। उस समय अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विद्वान डा. राधाकमल मुखर्जी लखनऊ में अर्थशास्त्र विभाग के अध्यक्ष थे। वह उनसे प्रभावित था। किन्तु लखनऊ में प्रवेश नहीं मिला। युनिवर्सिटी के नियमों के अनुसार वहां लखनऊ के स्नातकों को प्राथमिकता देनी आवश्यक थी। जब देखा कि वहां के स्नातक ही प्रतिक्षा सूचि में हैं तो चरणसिंह वापस आगरा लौट आया।

आगरा में इतिहास विषय लेने का निश्चय किया। सब कुछ सीखने की इस प्रवृत्ति ने इतिहास के साथ साथ कानून की पढाई भी शुरू कर दी। युनिवर्सिटी में उस समय ऐसी सुविधा थी। दोनों की परीक्षाएं अलग अलग समय पर होनी थी। यह एक अजीब मिश्रण था। लेकिन चरणसिंह के व्यक्तित्व में इनका अलग अलग विकास स्पष्टत: नजर आता है। विज्ञान के अध्ययन से उसकी

तार्किक शक्ति परिणाम तक पहुंचने में कामयाब रही तो इतिहास से उसने भारत को खंडित-मंडित होते, सजते-संवरते देखा और भविष्य के खतरे को पहचाना। कानून को पढकर शायद वह नौकरी के झंझट से दूर रहकर स्वतंत्र पेशा अपनाना चाहता था। जिससे वह गांव और किसान की अधिक सहायता कर सके। क्योंकि किसान कचहरियों में बुरी तरह लुट जाता था। आज़ भी इस स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। लेकिन आश्चर्य तो यह है कि जिस अर्थ शास्त्र को लेने में सफल नहीं हुआ, उस चरणसिंह का सारा चिंतन तो अर्थशास्त्र पर ही टिका हुआ है। यह उनके स्वाध्याय की पराकाष्ठा है। यह तो अर्थ शास्त्र का मामूली छात्र ही जानता है कि अर्थ शास्त्र के पूर्ण ज्ञान और विकास के लिए, विज्ञान, इतिहास और कानून का ज्ञान आवश्यक है। तभी तो आगे चलकर, ग्रामीण भारत का यह महानायक घंटों देश की आर्थिक स्थिति पर अकाट्य तर्कों के साथ व्याख्या करता रहा। आर्थिक विशेषज्ञों से लेकर गांव के किसान तक बात रखने का उनका अपना तरीका था। विज्ञान, इतिहास, अर्थशास्त्र के गंभीर और निरस अध्ययन में चरणसिंह इतना तल्लीन हो गया कि बाद में उनके चेहरे पर जैसे यह सब स्पष्टत: नजर आते थे। इनकी बुनियाद तो इसी समय आगरा युनिवर्सिटी में ही तो पड़ी थी।

और तभी एक घटना घट गई। चरणसिंह एम. ए. प्रथम वर्ष की परीक्षा देकर कानून की परीक्षा की तैयारी में जुटा था कि तार मिला, "लखपत सिंह चल बसे"। बज्र प्रहार हुआ था। वह एकदम सुन्न रह गया। अब तक प्रकृति ने उसके साथ सहयोग किया था। जब मंजिल के निकट पहुंचने वाला है तो प्रकृति की यह कैसी सजा! मित्रों ने उसे इतना उदास कभी नहीं देखा था। उसकी आंखों से अविरल झरना बहने लगा। मित्र घबरा गये। वे उसे एक बहादुर और दबंग दोस्त मानते थे। ऐसी कमजोरी तो उन्होंने कभी नहीं देखी। बड़ी मुश्किल से उसे सांत्वना देकर चुप कराया। वह लगभग भर्राते हुए बोला, "मेरा सब कुछ लुट गया। सत्यानाश!" और तब मित्रों ने उसी का हथियार उसी पर चलाकर उसे चुप कराया।

"तुम तो कहते थे, सुख-दुख तो जीवन के गहने हैं। आदमी तो आना जाना है। यह तो कबीर की सराय है। कुदरत का फैसला बिना विचलित हो सहन करो। आज कहां गया तुम्हारा कबीर! तुम तो मोह माया में फंसे हो। बहादुर बनो चरणसिंह!" जैसे सबने उसके सामने चुनौती उछाल दी। और तब जैसे वह संभला। उसने दृढ़ता का सहारा लेकर कहा, "ऐसी बात नहीं। लेकिन आज जो कुछ मैं हूँ, उनकी ही बदौलत। नहीं तो मैं आज किसी जमींदार के खेत में मजदूरी करता"

और तब वह ताऊ के शोक में सम्मिलित होने गांव चल पड़ा।

6.

ताऊ लखपत सिंह। परिवार के स्तम्भ। पांचो भाइयों को एक रखने का श्रेय उन्हें ही था। जैसे पांडवों में युधिष्ठर। ताऊ के घर जब चरणसिंह पहुंचा तो जैसे उसे विश्वास नहीं था। लग रहा था, बाबा अन्दर से आयेंगे, पूछेंगे, कहो बेटा, क्या चाहिए तुम्हें? उसे देख, महिलाओं का करुण क्रन्दन और चार भाइयों की उपस्थिति, स्थिति को स्पष्ट कर रही थी। वह एक कोने में बैठ गया। अनायास ही जैसे किसी ने कहा, चरणसिंह, तुम तो सब कुछ समझते हो।

"बाड़ी के बिच भंवरा था, कलियां लेता बास।
सो तो भंवरा उड़ि गया, तजिबाड़ी की आस॥
चलती चक्की देखिके, दिया कबीरा रोय।
दुइ पट भीतर आय के, साबित गया न कोय॥

भाई बीर बटाउआ, भरि-भरि नैनन रोय।
जाका था सो ले लिया, दीन्हा था दिन दोय॥"

और तब, वह जी कड़ा करके खड़ा हो गया। अपने पिता, ताऊओं, भाइयों की ओर देखा। सभी की आंखे झुकी हुई। वह आंगन की ओर चल पड़ा। बड़ी माताओं, मां, बहिनों, सभी को चुप कराया। महिलाओं को लगा, जैसे परिवार में किसी ने लखपत सिंह की जगह ले ली है। उसके चेहरेकी दृढ़ता, आत्मविश्वास, जिम्मेदारी ओढने का एहसास, सभी कुछ तो झलक रहा था। और तब एक नाथ बाबा को बुलाया गया था। वे रोज आकर कुछ देर अपने प्रवचनों, साखियों से संसार की नि:सारता और जड़देह के बारे में बतलाते। तब जैसे चरणसिंह भी इकतारा लेकर गा उठे:

"रहना नहीं देश बिराना है।
यह संसार कागद की पुड़िया, बूंद पड़े धुल जाना है।
यह संसार कांटे की बाड़ी, उलझ उलझ मर जाना है।
यह संसार झाड़ और झांखड़ आग लगे बल जाना है।
कह कबीर सुनो भाई साधो, सत गुरु नाम ठिकाना है।"

उस वक्त घर, गांव, आने वाले रिश्तेदार, उसके चेहरे की चमक में एक अलौकिक शक्ति का आभास देखते। नाथ बाबा भी प्रभावित हुए। सफेद कुर्ते-पायजामें में एक बैरागी, किन्तु कर्मयोगी का चेहरा। शोक के उन बारह दिनों में अक्सर महिलाएं नित्य उसके मुंह से कुछ न कुछ सुनना चाहती थी। उन्हें बहुत सहारा मिलता। इस संसार की असलियत को जैसे वे चरणसिंह से जानना चाहती थी। कहती, "बेटा, दो बात सुनाओं तो जरा।" तब उसका कबीर मुखर हो उठता,

"कबीर निर्भय राम जपि तब लगी दिये बाती।
तेल घटा बाती बुझी, सोवेगा दिन राती॥
कबीर सूता क्या करे, जागन जपै मुरारी।
एक दिन भी तो सोवणा, लम्बे पांव पसारि॥
भगति भजन हरिनाम है, बाकी दुख अपार।
मनसा वाचा कर्मणा, कबीर सुमरित सार।
तूं तूं करता तुझ गया, मुझ में रही न हूँ।
वारी फेरी बलि गई, जित देखौं तित तूं॥
लंबा मारग दूरि घर, विकट पंथ बहु भार।
कहो संतो क्यूं पाइये, दुरलभ हरि-दीदार॥"

और इनका अन्त नहीं था। पूरे परिवार ने, गांव वालों ने एक और चरणसिंह का दर्शन पहली बार किया। पहले कभी वह इतना खुलकर नहीं बोला था। तब चौ. मीरसिंह को एहसास हुआ, बेटे पर किया गया खर्चा, व्यर्थ नहीं गया है। उन्होंने पेट काटकर उसे पढाया था। अब जैसे उनके पसीने की बू एक खुशबू में परिवर्तित हो गई हो। उस दिन उन्होंने तैय कर लिया, अब चरणसिंह को कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। कुदरत भी जैसे उसका सहयोग कर रही थी। अब वह घर पर निर्भर कम था। उसे आर्थिक सहायता मिल रही थी।

शोक के दिन बीतने पर वह आगरा लौट आया। शिक्षा के पथ पर बढ़ते चलना था। दूसरे वर्ष एम. ए. फाईनल के साथ कानून की प्रथम वर्ष परीक्षा भी पास की। इससे उसकी अध्ययनशील प्रवृत्ति का पता चलता है। इतिहास और कानून की पढाई से जैसे सारे भारत का नक्शा उसके सामने स्पष्ट हो गया था। आदिकाल से वर्तमान तक। इसी से उसका राजनीति की ओर झुकाव व्यापक तौर पर हुआ। छात्रावास का जीवन था। सभी बौद्धिक स्तर से सम्पन्न थे। तब राजनीति की लंबी लंबी बहस छिड़ जाया करती थी। उन्हीं दिनों 'यंग इंडिया' में गांधीजी के लेख नियमित रूप से आ रहे थे। वह इन लेखों के ध्यान से पढ़ता। तब वे उस पर जोर-शोर से बहस किया करते थे।

तभी उस दिन 'यंग इंडिया' में छूआछूत पर गांधीजी का एक लेख प्रकाशित हुआ। गांधीजी ने छूआछूत को कलंक बताकर इसे मिटाने का आह्वान किया था। होस्टल में इस बारे में एक जबरदस्त बहस छिड़ गई थी। खूब वाद-विवाद चला। चरणसिंह ने लेख के पक्ष में तर्क दिये।

तब एक छात्र ने चुनौति दी, "तुम इतने ही गांधीजी के भक्त हो और छुआछूत को समाप्त करना चाहते हो तो भंगी के हाथ से छुआ खाना खाकर दिखाओ।"

यह गांधी के भक्त चरणसिंह को ही नहीं, भीतर के कबीर को भी चुनौति थी। वह तो अक्सर गाया करता था, जांत-पांत पूछै नहीं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई।" उसने तुरन्त चुनौति स्वीकार कर ली।

"हद मैं रहै सो मानवी, बेहद रहै सो साधु।
हद-बेहद दोनों तजै, तिनका मता अगाधु।
हद-बेहद दोनों तजी, अवरन किया मिलान।
कहैं कबीर ता दास पर, बारौं सकल जहान॥"

और तब भंगी के हाथ से छुआ हुआ ही नहीं, उससे बनवा कर खाना खाया। बस फिर क्या था? पूरे कॉलेज और छात्रावास में तूफान आ गया। "जाट के छोरे ने भंगी से खाना बनवा कर खा लिया।" यह सब मजाक और कटाक्ष तक ही सीमित नहीं रहा। घोषणा हो गई, "इस अछूत जाट को होस्टल के बर्तनों में खाना न दिया जाये।" तब वह बाजार से स्वयं के बर्तन खरीद लाया। बर्तन क्या, एक थाली, एक कटौरी। खाना खाने जाता तो अपनी थाली ले जाता। रसोइये इस सावधानी से, ऊपर से खाना-दाल-सब्जी डालते कि उसकी थाली से कोई वस्तु छून जाये। इस दृश्य को देखकर छात्र ताली पीटते, सीटियां बजाते। एक कोहराम मच जाता। लेकिन इन सबसे बेखबर वह जाट का अछूत छोरा; एक कोने में बैठ मस्ती से खाना खाता। उसकी बेपरवाही बढ़ती ही गई। कुछ दिनों बाद तो नजारा और भी बदल गया। हरफन मौला चरणसिंह में फक्कड़ कबीर की अक्खड़पन ने जैसे प्रवेश ले लिया। हिन्दू धर्म की रूढ़िवादिता, संकीर्णता पर वह जमकर प्रहार करने लगा। खाने के बाद, अपनी थाली धोकर वह बजाता हुआ सचमुच अक्खड़पन से चलता। वह अपने साथियों को सुना सुना कर गाता-

"साधो, पांडे निपुन कसाई।
बकरी मारि भेड़ि को धाए, दिल में दरद न आई।
करि अस्नान तिलक दै बैठे, विधि सों देवि पुजाई।
आतम मारि पलक में बिन से, रुधिर की नदी बहाई।
अति पुनीत ऊंचे कुल कहिये, सभा मांहि अधिकाई।
इनसे दिच्छा सब कोई मांगे, हंसी आवै मोहि भाई।
पाप-कटन की कथा सुनावैं, करम करावें नीचा।
बूड़त दोउ परस्पर दीखे, गहे बांहि जम खींचा।
गाय बधै तो तुरक कहावै, यह क्या इनसे छोटे।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, कलि में ब्राह्मन खोटे।"

तब अभिजात वर्ग के छात्र लहुलूहान हो गये। क्या कहें! इस जाट के छोरे के साथ साथ उस जुलाहे कबीर को भी गालियां पड़ी। चरणसिंह के इस जबाबी आक्रमण की खबर सब जगह फैल गई। प्रोफेसर और विभागाध्यक्षों तक। लेकिन क्या कबीर को कोर्स से निकाल दें। तब एक ही रास्ता बचा था, इस जाट को ही मना लिया जाये। उसे वार्डन ने कहा, "तुम होस्टल के बर्तनों मेंही खा सकते हो।" यह उसके दृढ़ संकल्प की विजय थी। गांधी, कबीर, आर्य समाज की विजय थी। तब अनेक प्रगतिशील छात्रों ने खुलकर उसका समर्थन करना शुरू कर दिया। पहले वे सामने आने से कतराते थे। अब उन्होंने चरणसिंह को हीरो बना दिया।

उस दिन छुट्टी थी। सब उसके कमरे में एकत्रित हो गये। प्रस्ताव था, कबीर का कोई और

भजन सुनाया जाये। उसने आनाकानी की। वह तो अपने लक्ष्य को प्राप्त कर चुका था। उसे प्रचार का माध्यम क्यों बनाया जाये। किन्तु छात्र मानें ही नहीं। उसने जैसे वचन लिया, "मैं तो बस एक भजन सुना सकता हूं। यह शर्त स्वीकार है तो बोलो।"

सभी ने एक मत से इसे स्वीकार किया। तब वह अपनी थाली की ताल पर गा उठा,

"संतो, राह दूनी हम डीठा।
हिन्दु-तुरुक हटा नहिं मानैं, स्वाद सबन्हि को मीठा।
हिन्दू बरत-एकादसि साधैं, दूध-सिंघारा सेती।
अन को त्यागैं मन को न हटकें, बार न करें सगोती॥
तुरुक रोजा-नीमाज गुजारैं, बिसमिल बांग पुकारैं।
इनकी भिस्त कहां तें होई है, सांझैं मुरगी मारैं॥
हिन्दू की दया मेहर तुरुकन की, दोनों घट सो त्यागी।
वे हलाल वे झटके मारैं, आगि दुना घर लागी॥
हिन्दू-तुरुक की एक राह है, सतुगरू इहै बताई।
कहं हि कबीर सुन हुहो संतो, राम न कहेउ खुदाई॥"

और तब तालियों से होस्टल गूंज उठा था। उसने मुस्कराकर संतुष्ट हो सभी साथियों पर नजर डाली।

इसके बाद तो कोई उसे मजाक में गांधीजी, कोई कबीर तो कोई स्वामी दयानन्द कहता। वह हंसकर डाल देता, """भाई मैं तो चरणसिंह ही हूं। इतना बड़ा मत बनाओ।" किन्तु ये मात्र फिकरे तो न थे। उसके भावी जीवन की बुनियाद तो यहीं आगरा में पड़ चुकी थी। छात्रावास की लड़ाई जीतने के बाद, उसमें जीवन भर के लिए आत्म-विश्वास कूट-कूट कर भर गया था। कबीर का निराकार, निगुर्ण ब्रह्म उसका अपना भगवान बन गया था। धर्म, जाति का भेद-भाव स्वत: ही समाप्त हो गया था। दयानन्द सरस्वती के आर्य समाज के संस्कार तो कबीर के दर्शन को ही तो पुख्ता कर रहे थे। तब समाज में व्याप्त छूआछूत, आडम्बर, मूर्तिपूजा, संकीर्णता का उसने डटकर विरोध करना शुरू कर दिया था।

और ऐसे वातावरण में जब वह तप कर खरा उतर रहा था तो गांधीजी सामने आ चुके थे। बदलती परिस्थितियों में यह नया चमत्कार था। आर्थिक और राजनैतिक परिवर्तन का दौर शुरू हो गया था। यह एक नई बात थी। कबीर और स्वामी दयानन्द ने सिर्फ समाज-सुधार का बीड़ा उठाया था। राजनैतिक बदलाव की उस समय परिस्थितियां ही नहीं बनी थी। राजशाही का विकल्प नहीं था। कबीर के समय तो बिल्कुल नहीं। हाँ, दयानन्द सरस्वती का यह श्लोक 'जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी बड़ी हैं' का उपयोग कालान्तर में देशभक्तों ने अंग्रेजों के विरुद्ध किया था। लेकिन उस समय भी आर्य समाज के ठेकेदार अंग्रेजों की दासता को दोनों हाथों से पकड़े रहे। अब गांधीजी का सीधा आह्वान था। तब सामाजिक, आर्थिक और राजनैति, तीनों मोर्चों पर लड़ाई शुरू हो चुकी थी। इन तीनों को चरणसिंह ने स्वयं में आत्मसात कर लिया था। तभी वह युद्ध के मैदान में उतरा था।

7.

उधर पारिवारिक परिवर्तन भी हुआ। चौ. मीरसिंह के हिस्से में भूपगढी की जमीन आई थी। बाकी चारों भाई भदौला में रहते थे। चौ. लखपतसिंह चाहते थे कि पाचों भाई एक साथ ही रहें।

लेकिन भूपगढी की जमीन छोड़ी कैसे जाये? भदौला में अधिक जमीन नहीं थी। अंत में इसका उपाय निकाल ही लिया गया। भूपगढी के एक रिश्तेदार की जमीन भदौला में थी। उसे भी परेशानी थी। पता लगने पर दोनों ने आपस में जमीन की अदला-बदली कर ली। तब चौं. मीरसिंह भी भाइयों के पास भदौला आकर बस गये।

उन्हीं दिनों आर्य समाज की ओर से मथुरा में स्वामी दयानन्द सरस्वती की जन्म शताब्दी मनाई गई थी। उतर भरत का बहुत बड़ा समारोह आयोजित किया गया था। दूर दूर के प्रतिनिधि आये थे। आर्य समाज उस समय प्रगति के शिखर पर था। इसलिए भारी संख्या में युवक-युवतियां भी सम्मिलित हुए। ऐसे वक्त पर चरणसिंह कैसे न जाता। छात्रावास के चार-पांच घनिष्ठ मित्रों को लेकर वह जा पहुंचा। इस विशाल समागम के लिए भारी संख्या में टेंट लगाये गये थे। प्रत्येक प्रान्त के अलग और उनमें भी जिलेवार बांट दिये गये थे। निकट परिचित अपने अपने टेंट में ठहरे हुए थे।

चरणसिंह ने अपने मित्रों के साथ स्वयं सेवक की ड्यूटि ले ली थी। उस दिन करीब ग्यारह बजे वे यात्रियों का जायजा लेने घूमने निकले। कोई भी अव्यवस्था नोट कराता, उसे दूर किया जाता।

एक टैंट बहुत बहुत साफ-सुथरा था। प्रत्येक चीज सलीके से रखी हुई। आस पास की खाली जगह को भी गोबर से लीपा-पोता गया था, बिल्कुल जैसे आश्रम की कोई कुटिया। चरणसिंह को सलीका, सफाई बहुत पसन्द थी। एक ओर चूल्हा बनाकर एक नवयुवति खाना बना रही थी। चरणसिंह टेंट की प्रशंसा करता हुआ गुजर रहा था कि सहसा वह ठिठक गया। एक खीझ भरी डांट सुनाई दी, "अरे, जूते पहनकर रसोई में आ गये!"

"रसोई?" चरणसिंह ने आश्चर्य से देखा।

"और क्या, देखते नहीं चूल्हा जल रहा है। यह जगह मैंने लीप-पोत कर शुद्ध बनाई है।" खाना बनाने वाली लड़की ने जगह की ओर संकेत कर पूछा। अब उनकी समझ में आया। चरणसिंह खड़ा खड़ा एक बार अपने जूतों की ओर देखे, एक बार उस लड़की की ओर। उसे सचमुच झेंप महसूस हुई। अपनी लापरवाही से इस लड़की की भावना को चोट पहुंचाई। तब बिना देरी किये उसने कहा, "मैं अपने साथियों की ओर से आप से क्षमा मांगता हूं। हम लोग आपके टेंट की प्रशंसा कर रहे थे। इधर आपको देखा नहीं।"

तब लड़की का गुस्सा शांत हो गया। क्षण भर के लिए चरणसिंह से नजरें चार हुई और वह नीचे देखते हुए वापिस मुड़ गया।

यह प्रकृति का एक चमत्कार था। यही लड़की, बाद में श्रीमती गायत्री देवी बनकर, चरणसिंह की सहयात्री बनी। इस पहली नजर में किसको भावी दाम्पत्य जीवन की खबर थी। गायत्री देवी का परिवार भी कट्टर आर्य समाजी था। एक सम्पन्न किसान परिवार। वह अपनी सहेलियों के साथ, अपने दादा को लेकर हरियाणा से इस समारोह में आई थी। पिता का देहांत पहले हो चुका था।

रोहतक जिले की गढी कुंडल वाली गांव की गायत्री देवी ने जालन्धर कन्या महाविद्यालय से मैट्रिक की परीक्षा पास की थी। उसके बाद पढाई छोड़ दी। सम्पन्न परिवार ने न आगे पढाना उचित समझा, न किसी नौकरी की आवश्यकता समझी। तब उसके दादा को उसके विवाह की चिंता सताने लगी। उनके परिवार का एक लड़का आगरा पढ़ता था। उसे भी दादा ने कोई लड़का देखने हेतु कह रखा था। जब दादा और गायत्री मथुरा समारोह में आये तो वह लड़का भी इनसे मिला। तब दादा ने पूछा, "अरे तुझे कहा था, देखा कोई अच्छा लड़का?"

उस समय आगरे के छात्रों का आदर्श बन गया था चरणसिंह। उससे अच्छा कौन लड़का हो सकता था। लड़के ने तुरन्त चरण सिंह का नाम बता दिया।

"परिवार कैसा है? जमीन का साधन!" दादा ने जांच शुरू कर दी।

लड़के ने उत्तर दिया, "परिवार तो साधारण ही लगता है। लेकिन ऐसा लड़का नहीं मिलेगा। आगरे में वह सबका चहेता है।"

दादा ने लड़के की प्रशंसा सुनकर देखने की इच्छा प्रकट की। तब पता लगा कि चरण सिंह गांव चला गया है। दादा ने उसका पूरा पता ले लिया।

गांव लौटकर दादा भदौला पहुंचे। चरणसिंह को देखने के बाद जैसे उन्होंने और कुछ देखने की आवश्यकता नहीं समझी। घर पहुंचकर दादा ने कहा, "लड़का तो खरा सोना है। उच्च शिक्षा प्राप्त, सीधा-सादा एवं सुन्दर। किन्तु घर से गरीब है।" घर में एक तरह से बहस शुरू हो गई। रहने के लिए एक भी कमरा नहीं। तो क्या गायत्री छप्पर में रहेगी! धनाढ्य परिवारों में शिक्षित लड़का नहीं मिल रहा था। दादा तो बार बार कहते, "देखलो भाई! ऐसा छोरा मैंने तो नहीं देखा। गायत्री के लिए लिखा हुआ होगा, तो धन भी हो जायेगा।" अंत में दादा का प्रस्ताव ही मान लिया गया। भदौला समाचार पहुंचा दिया, "लड़का हमें पसन्द है, तुम लड़की देखने आ जाओ।"

चौधरी मीरसिंह, अपने भाई के साथ गढी कुंडलवाली आये। घर देखा, तो चकित रह गये। एक धनाढ्य परिवार का रिश्ता मिल रहा था। लेकिन लड़की देखनी भी तो आवश्यक थी। उस समय लड़की को आमने-सामने बैठाकर दिखाने का प्रचलन नहीं था। यह तैय किया गया कि चौ. मीरसिंह कुए के पास वाले घर में बैठ जायें। गायत्री इस समय कुए से पानी लायेगी। उसे देखा जा सकता है। ऐसा ही किया गया। मीरसिंह ने एक बार, दो बार, तीन बार देखी। कहीं कोई चूक नहीं। लड़की सुन्दर और हस्टपुष्ट! दादा के पास दोनों भाई आये और स्वीकृति दे दी। लड़की देख भी ली और गायत्री को पता भी नहीं लगा। जब रिश्तेदारों को चावल भात खिलाया गया, घर में खुशी का वातावरण बना, उसे कुछ संदेह हुआ।

उसने मां से पूछा, "कौन हैं ये लोग?"

मां क्यों छुपाती? उसने कहा, "तूं छोरी जानती ही नहीं। यही तो तेरे ससुर हैं।" उस समय गायत्री की लज्जा का कोई अंत नहीं था। जिस घर में चौधरी मीरसिंह ने भाई के साथ बैठकर देखी, वहां की लड़की भी हंसती हुई आई। अलग लेकर कहा, "क्यों री गायत्री, चुपके चुपके सगाई पक्की करवाली?"

"मैंने तो पता भी नहीं लग्या! तूने भी नहीं बताया। मैं तो योंही बात करती रही। पता नहीं क्या सोचते होंगे।" वह शरमा गई थी।

"अब सोचना क्या बाकी रह गया?" सहेली ने हल्की सी चपत जड़ दी।

दोनों का विवाह बहुत सादगी से हुआ। गायत्री के घरवालों से कोई दहेज नहीं लिया गया। गायत्री के दादा ने एक घोड़ी देनी चाही, उसे भी चौ. मीरसिंह लेकर नहीं आये। घोड़ी देना अत्यंत सम्मान सूचक था। यहां यह कल्पना ही की जा सकती है कि जब विवाह की वेदी पर चरणसिंह ने गायत्री को देखा और गायत्री ने चरणसिंह को देखा तो मथुरा वाली घटना को याद कर वे क्या सोचते होंगे। लेकिन बाद में प्रायः ही मजाक में चौधरी साब कहते, "भाई तुम्हारा पहला प्रभाव तो एक सुसंस्कार गृहणी का ऐसा पड़ा कि जीवन भर मुझे घर के बारे में सोचना नहीं पड़ेगा।" और कभी घर के बारे में उन्होंने सोचा भी नहीं। यह संयोग कुछ कम अजब नहीं कि एक आर्य समाजी दम्पत्ति की पहली भेंट अनजाने में ही सही, आर्य समाज के ही एक विशाल समारोह में हुई थी। कुदरत के चमत्कार ऐसे ही तो होते हैं।

एम. ए. करने के बाद चरणसिंह आगरा से मेरठ आ गया। कानून की द्वितीय वर्ष की पढाई मेरठ से ही करने का विचार बना लिया। विवाह होने के बाद भी श्रेणी का क्रम टूटा नहीं। मेरठ से कानून की परीक्षा प्रथम श्रेणी में ही उत्तीर्ण की। इस बार मेरठ में वह "स्काउट-आश्रम' नामक संस्था में रहा। पंडित तेजराम शर्मा आश्रम के अधीक्षक थे। वे विद्यार्थियों को मित्र भाव से प्यार करते। देश-सेवा की प्रेरणा देते रहते। आश्रम से अंग्रेजी में एक पत्रिका निकलती थी। उसमें चरणसिंह ने देश की तत्कालीन समस्याओं तथा स्वास्थ्य पर कई लेख लिखे।

इससे पूर्व 1920 में प्रथम बार गांधीजी मेरठ आ चुके थे। उसके उपरान्त तो मेरठ में राजनैतिक गतिविधियों ने जोर पकड़ लिया था। यहां का "कुमार आश्रम" राजनैतिक गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र बन चुका था। चरणसिंह ने इस आश्रम से सम्पर्क स्थापित कर लिया था। वह प्रचार-प्रसार में भाग लेने लगा। आर्य समाज के जलशों में अग्रिम पंक्ति में रहने लगा। आर्य समाज एक क्रांतिकारी और प्रगतिशील संस्था मानी जाती थी। आर्य समाज पर लिखी गई अनेक पुस्तकें और स्वामी दयानन्द की जीवनी उसने पढ डाली थी।

अब वह सचमुच चौराहे पर था। वैदिक सभ्यता के अनुसार गृहस्थआश्रम में प्रवेश हो चुका था। बी. एस. सी., एम. ए., एल. एल. बी. चरणसिंह कौन सा कार्य शुरू करे? मन देश की आजादी की लड़ाई में शरीक होना चाहता था तो गृहस्थ की जिम्मेदारियों से भाग भी नहीं सकता था। घर की आर्थिक स्थिति से भली भांति परिचित था। क्या हमेशा ही घर पर बोझ बना रहे? और अब तो एक नहीं, दो-दो हो गये थे। सम्पन्न परिवार से आई पत्नी का भी ख्याल था। बारबार व्यक्तिगत जिम्मेदारियां सामने आकर खड़ी हो जाती। और तब वह 'इधर जाऊं' या 'उधर जाऊं' की स्थिति में आ जाता। मुंह बाये घर की आर्थिक स्थिति का मुकाबला करे तो कैसे करे?

इससे पूर्व वह आई. सी. एस. की परीक्षा दे चुका था। लिखित परीक्षा में पास भी हो गया था। साक्षात्कार की मौखिक परीक्षा में उसे असफल घोषित कर दिया था। इसका भी एक कारण था। उस समय तक 1919 और 1921 के देशव्यापी जन आंदोलन हो चुके थे। गांधीजी के आह्वान पर हजारों छात्र इन आंदोलनों में कूद पड़े थे। अब उनमें से वापिस आ परीक्षाओं में बैठ रहे थे। अंग्रेज सरकार सतर्क हो गई थी। ऐसी परीक्षाओं में बहुत ठोंक-बजाकर छात्रों को चुना जाता था। तब राय बहादुर, या सामन्ती परिवार के लड़कों को प्राथमिकता दी जाती थी। चरणसिंह को कभी इस बात का मलाल नहीं रहा। वास्तविकता तो यह थी कि घरवालों तथा शुभ चिंतकों के द्वारा बारबार कहे जाने पर ही वह इस परीक्षा में बे मन से शरीक हुआ था। मन ने कभी नहीं चाहा कि गोराशाही की किसी भी तरह से चाकरी की जाये। एक तरह से उसके मन को संतोष ही मिला कि सरकारी नौकरी नहीं मिली।

और बेरोजगारी के इन कठिन दिनों में, उसके पास नौकरी के दो प्रस्ताव भी आये। बड़ौत के जाट हाई स्कूल के व्यवस्थापकों ने उन्हें द्वितीय प्रधानाध्यापक का पद स्वीकार करने का आग्रह किया। तब उसने व्यस्थापकों को लिखा, "यदि आप अपने स्कूल के नाम से पूर्व जाट शब्द हटा दें तो मैं आ सकता हूँ।" न तो व्यवस्थापकों को ऐसा करना था और न चरणसिंह को जाना था

उसके बाद लखावटी के जाट डिग्री कॉलेज ने भी उन्हें अपना प्राचार्य का पद संभालने का प्रस्ताव रखा। यह पद बहुत प्रतिष्ठा का था। वेतनमान भी ऊंचा था। लेकिन चरणसिंह का कबीर फिर आड़े आ गया। वही जाट शब्द अखर गया। इसे भी स्वीकार कैसे किया जाता? और यह उस समय की आर्थिक स्थिति को देखते हुए कोई साधारण कार्य नहीं था। ये ऐसे पद थे, जहां रहते हुए चरणसिंह न केवल अध्ययनरत रह सकता था बल्कि राजनीति में भी भाग ले सकता था। सामाजिक प्रतिष्ठा में भी यह सम्मानजनक था। किन्तु युवक चरणसिंह तो फौलादी रंग में रंग चुका था। जो सिद्धान्त अपना लिये थे, उन्हें तिलांजलि देना उसके वश में नहीं था। ये दोनों उदाहरण चरणसिंह के व्यक्तित्व को समझने में काफी महत्वपूर्ण हैं। जिन लोगों ने बाद में चरणसिंह पर मात्र जातिवादी होने का आरोप लगाया, उनकी आत्मा ने इस झूठ के लिए उन्हें धिक्कारा तो होगा।

लेकिन सिर्फ सिद्धान्तों पर पेट तो नहीं पाला जा सकता। उसके लिए कोई न कोई उद्यम तो करना ही था। परिवार का सामना करने की हिम्मत चूकती जा रही थी। इतने पढ़े-लिखे बेटे को मां-बाप क्या कहें! पत्नी गायत्री मौन रहकर भी आंखों ही आंखों में जैसे पूछती, "कितने दिन चलेगा ऐसे?" सरकारी नौकरी करने को बिल्कुल जी नहीं करता। तब एक ही रास्ता बचा था, उसकी कानून की डिग्री किस काम आयेगी? तभी एक दिन लोगों ने देखा कि चरणसिंह के घर के सामने एक बोर्ड टंग गया है-चरणसिंह, बी. एस. सी. एम. ए. एल. एल. बी. एडवोकेट।

और तब, युवक चरणसिंह, एक जिम्मेदार वकील के रूप में गाजियाबाद के कोर्ट जाने लगे।

8.

फौजदारी मामलों में छल-प्रपंच था। झूठ का सहारा लेना होता। सच को झूठ बनादे और झूठ को सच, यही तो वकील की बौद्धिकता है। लेकिन यह तो चरणसिंह को पसंद नहीं था। वे दीवानी मुकदमें ही लेने लगे। प्रतिभा थी ही। परिश्रम करने की आदत थी। ऐसे ऐसे अकाट्य तर्क प्रस्तुत करते कि सुनने वाले दंग रह जाते। स्वयं आत्मविश्वास से लबालब भरे थे। शीघ्र ही चर्चित हो गये।

जिस मुकदमें को हाथ में लेते, उसे पूरा समय देते। पूरी तैयारी के साथ अदालत में जाते। तब प्रसिद्धि होने से अच्छी फीस भी मिलने लगी। यों फीस की कभी परवाह नहीं की। कोई गरीब पीड़ित व्यक्ति फीस देने में असमर्थ होता या पैसे कम भी देता तो भी कोई बात नहीं। देहात से आने वाले मुवक्किलों को आवश्यकता पड़ने पर घर में रहने को जगह देते, उसे खाना भी खिलाते। पैसे के कारण किसी के केस को कमजोर नहीं होने दिया। जहां यह लगता कि दोनों पक्षकार समझौता कर सकते हैं तो वे आगे बढ़कर उनमें समझौता करवाते। लोक अदालतें तो अब शुरू हुई हैं,चरणसिंह तो पहले ही इस सिद्धान्त को अपना चुके थे। कई बार उन्हें यह देखकर दु:ख भी होता कि अदालतें सही निर्णय नहीं कर रही हैं। फिर भी, अपनी तरफ से उन्होंने कभी कोई कमी नहीं रखी। और तब वकील चरणसिंह अदालतों में चर्चित हो गए। ऐसे भी क्षण आये जब वरिष्ठ वकीलों ने उनसे सलाह की।

एक बार किसी के कहने से उन्होंने फौजदारी केस भी ले लिया। कुछ दिनों बाद ही उन्हें पता लगा कि अभियुक्त सचमुच एक बलात्कारी है। यह बात पहले उनसे छुपाई गई थी। उन्हें बहुत क्रोध आया। उन्होंने केस लाने वाले परिचित व्यक्ति को बुलाकर कहा, "बलात्कारी को सजा मिलनी ही चाहिए। मैं उसका कानूनी बचाव नहीं कर सकता।" अपने मुन्शी से कहकर उसकी फीस वापिस कर दी। साथी वकीलों और मुन्शी ने समझाने का प्रयास किया, "हमें इससे क्या कि मुवक्किल गलत है या सही। अपना तो पेशा है।"

चरणसिंह ने तपाक से उत्तर दिया, "मैं ऐसे पेशेवाला वकील नहीं बनूंगा।" बाद में भी, जब वे जेल जाने लगे थे और वकालत कम चलने के कारण आर्थिक कठिनाई बढ गई थी, एक अवसर पर उनके पास एक धनाड्य व्यक्ति का मुकदमा आया। उन्हें पता लग गया कि केस झूठा है। उन्होंने तुरन्त लेने से इन्कार कर दिया। मुवक्किल इस मुकदमें में मनचाही फीस देने को तैयार था। मुन्शी और गायत्री देवी ने भी कहा। आर्थिक स्थिति का तकाजा दिया गया। किन्तु वे टस से मस नहीं हुए। उस दिन गायत्री देवी कुछ नाराज हो गई। तब उन्होंने कहा, "क्या मैं झूठे केस की पैरवी करके रोटी खाऊंगा? इससे तो बेहतर हो कि एक समय ही खाना खा लूं।"

किन्तु इस समय वकालत से अच्छी आमदनी हो रही थी। लेकिन रुपये जोड़ने का कभी मोह नहीं रहा। न कोई आडम्बर। गायत्री देवी तो धनाड्य परिवार से आई थी। ससुराल आकर उन्होंने भी सादगी से रहना सीख लिया। बाद में तो ऐसे भी क्षण आये, जब जेल जाने की स्थिति में वे बच्चों का सहारा बनी। उन्होंने भी कभी कमजोरी नहीं दिखाई। महात्मा गांधी को कस्तूरबा का सहयोग मिला, कुछ वैसा ही चरणसिंह को गायत्री देवी का जीवन भर सहयोग मिला। कैसा अजीब लगता है कि जब वे अच्छे मूड में भी होते और खाश कर होली के दिनों में, तो भी वे मस्ती में आकर यही गाते-

"माया नाय रही रे काही के,
यहां न अमर रह्यो कोई,
रावण बढ गयो, गढ लंका में,
सोने की लंका छनक खोयी।
अरे, तेरे महल बने माटी के,
बाकी सोने की रे गढ लंका,
सर बजै रे काल का डंका।"

गायत्री देवी टोकती-"सब पैसे के लिए भागते हैं। एक तुम्हीं हो ऐसे..." तब वे चुहलबाजी करते, पत्नी के मुंह पर हाथ रख यह गा उठते-

"कबीर माया पापणी, फंद ले बैठी हाटि।
सब जग तौ फंदै पड्या, गया कबीरा काटि॥"

यही तो था कबीर का अक्खड़पन, और फक्कड़पन। इस देश का शायद पहला और अंतिम राजनीतिज्ञ, जो जब इस दुनिया से गया तो न एक इंच जमीन छोड़ गया, न कोई कच्चा-पक्का कमरा और न कोई बैंक बैलेंस। और न्याय की बात कहने में जरा भी हिचक नहीं हुई। लेकिन यह तो बहुत बाद की बात है। बहरहाल, तो गाजियाबाद ही ठहरें।

चरणसिंह ने वकालत 1926 में ही पास कर ली थी। किन्तु वकालत शुरू की 1928 में। ये दो साल उनके जीवन में निष्क्रिय थे। और ऐसा ही हाल देश की राजनैतिक स्थिति का था। तब, गांधीजी से निराश युवकों ने क्रांतिकारी संगठन बनाने शुरू कर दिये। तभी 1928 में, जब चरणसिंह ने वकालत शुरू की तो भारत में साइमन कमीशन का आगमन हुआ था। इससे देश भर में तूफान उठ खड़ा हुआ था। कमीशन को भारत के प्रमुख नगरों में जाना था। जहां जाते, वहीं जनता के मुखर विरोध का सामना करना पड़ा। चरणसिंह इन घटनाओं पर पैनी नजर रखे हुए थे। तब लाहौर में साइमन कमीशन पहुंचा तो उग्र विरोध का सामना करना पड़ा। लाठी-चार्ज से लाला लाजपत राय घायल हो चुके थे और अन्ततः यह पंजाब केसरी चल बसा था।

लालाजी की अर्थी के जुलूश में लगभग डेढ लाख आदमी सम्मिलित हुए थे. जनता में विदेशी-शासन विरोधी भावना और लालाजी के प्रति आदर का प्रवाह उमड़ पड़ा था। अखबारों के जरिये यह समाचार पूरे देश में फैल गया था। उस दिन चरणसिंह की आंखों में आंसु आ गये थे। देश के साथ साथ मेरठ-गाजियाबाद में जगह जगह लोगों की भीड़ एकत्रित हो जाती और यही चर्चा करती। चरणसिंह कोर्ट में जाते लेकिन गंभीर बने रहते। सभी के चेहरों पर क्रोध स्पष्ट दिखाई देता था। और एक दिन समाचार आया, "लालाजी की हत्या का जिम्मेदार पुलिस अधिकारी का क्रान्तिकारियों ने वध कर दिया।"

पढकर चरणसिंह के चेहरे पर मुस्कराहट फैल गई। यह देश के अपमान का बदला था। इसमें हिंसा जायज थी। उस दिन चरणसिंह की खुशी का कोई अंत नहीं था। तभी कांग्रेस का अधिवेशन भी कलकत्ता में हो रहा था। देश भर में कुछ करने की का लहर चल पड़ी थी। चरणसिंह ने इसी समय गाजियाबाद में कांग्रेस कमेटी की स्थापना की। तिरंगा झंडा फहराया। यह राजनीति में सीधा कदम था। उसी साल वे गाजियाबाद में आर्य समाज के सभापति चुने गये। एक साथ दो मोर्चों पर काम जारी था। कांग्रेस में रहकर आजादी के लिए संघर्ष तो आर्य समाज द्वारा समाज की कुरीतियों पर प्रहार।

इन्हीं दिनों, नगपालिका के एक अधिकारी ने एक विधवा से अवैध सम्बन्ध स्थापित कर रखे थे। बाद में वह उस विधवा की किशोर बेटी को फुसलाकर दिल्ली भगा ले गया। पूरे गाजियाबाद में इस घृणित कांड की चर्चा फैल गई। लोगों में भय व्याप्त हो गया। उस दिन कुछ जागरुक लोगों ने चरणसिंह से अनुरोध किया, "आप ही कुछ करिये। समाज को पतन में जाने से आप ही रोक सकते हैं।" सुनकर उन्हें सचमुच क्रोध आया। उन्होंने भ्रष्ट अधिकारी का पीछा किया। वह डरकर

कहीं छुप गया। उन्होंने लड़की को ढूंढ निकाला। गाजियाबाद लाकर उसकी मां की सहमति से उसी की जाति के एक लड़के के साथ उसका विवाह करवा दिया। विधवा मां की आर्थिक सहायता तो वे कई वर्षों तक करते रहे। चरणसिंह, इस कार्य से रातों रात लोक प्रियता की शिखर पर पहुंच गये। गरीब, बेसहारा लोगों के तो बहुत बड़ा सहारा बन गये। तब भ्रष्ट अधिकारी के गुण्डोंने उन्हें जान से मारने की धमकी भी दी। लोगों ने चिंता प्रकट की, "आप अपना ध्यान रखना।"

उन्होंने मुस्कराते हुए कहा, "इतना आसान नहीं है भाई। गुण्डे के कभी पैर नहीं होते। गाजियाबाद में उनकी सेवा-भावना की चर्चा चारों ओर होने लगी। पीड़ित जनता उनके घर मुवक्किलों से ज्यादा आने लगी। एक वकील चरणसिंह के साथ साथ आर्य समाजी चरणसिंह अधिक आकर्षण के केन्द्र बन गये।

कुछ दिनों बाद ही एक घटना और हो गई। निकट के ही एक गांव में एक गरीब बाप ने पैसे लेकर अपनी नाबालिग बेटी की सगाई एक धनाड्य बूढे के साथ तैय कर दी। इस बार भी लोगों ने चरणसिंह से सम्पर्क कर अनुरोध किया, "आप इस विवाह को रुकवाइये।"

बस फिर क्या था। वे निश्चित दिन गांव में पहुंचे। गांव वाले साथ थे। बाप को समझाया। किन्तु वह तो पैसे लेकर खर्च कर चुका था। अब रुपये वापिस कहां से चुकाये! रुपयों का तुरन्त प्रबन्ध चरणसिंह के पास भी नहीं था। मजबूरन उन्हें लौटना पड़ा। इस घटना को वे कभी नहीं भूल सके। वे स्वयं को अपराधी समझने लगे। बाद में प्रायः ही वे कई दिनों तक चर्चा करते रहे, "मैं उस बेमेल विवाह को नहीं रुकवा सका। गरीबी कितना बड़ा अभिशाप है।" यह कहते कहते तो उनका आंखों में आंसु आ जाते। इन दोनों घटनाओं ने महिलाओं के प्रति उनकी सहानुभूति को और भी उजागर कर दिया। महिलाओं के यौन-शोषण से वे चिंतित रहते थे। उन्हें यह ज्ञान था कि राजनीति में इस तरह के भेड़िये अधिक हैं। वे महिलाओं का उत्पीड़न कर सकते हैं। इसीलिए तो उन्होंने हमेशा कहा, "महिलाओं को राजनीति में युवा आयु में नहीं आना चाहिए। पचास वर्ष के बाद ही राजनीति में कदम रखना चाहिए।" आश्रम-व्यवस्था के प्रति उनका दृढ़ लगाव भी था। उनका मानना था कि लड़कियों को भी विद्या-अध्ययन करके गृहस्थ आश्रम में पूरा समय परिवार को देना चाहिए। इससे बच्चों में वह अच्छे संस्कार भर सकेगी। बाद में वह चाहे तो राजनीति में आ सकती है। उनके इस विचार को तथाकथित बुद्धिजीवियों ने रूढिवादी बताकर महिलाओं के प्रति पूर्वाग्रह करार दिया था।

अभी, जुलाई 95 में राजनीतिज्ञों की नगरी नई दिल्ली में नयना साहनी हत्याकांड हो चुका है। नेता बनने की महत्वाकांक्षा पाले इस युवति को नेताओं और मंत्रियों ने अपनी हवश का शिकार बनाया। बाद में उसके कथित पति ने उसके टुकड़े-टुकड़े कर तंदूर में जलाने का प्रयास किया। यह कांड इतना विभत्स था कि देश हिल उठा। यह ऐय्यास प्रेतों का एक उदाहरण है। इसीलिए चरणसिंह इसके लिए सावधान रहते थे। आज से साठ-पैंसठ वर्ष पूर्व ही उस युग-दृष्टा ने जैसे नेताओं के भविष्य को पढ लिया था। बहरहाल....

वकालत शुरू करने के बाद, उन्हें आभास हुआ कि फैसले और बहस हिन्दी में ही होनी चाहिए। हिन्दी ही इस देश की जनजन की भाषा हो सकती है। उस समय तो कचहरियों में अंग्रेजी का वर्चस्व था। पेशकारों, अहलकारों की भाषा उर्दू थी। चरणसिंह ने एक मुन्सिफ की अदालत में हिन्दी में अर्जी दावा पेश किया। मुन्सिफ ने दावे को वापस लेने को कहा। चरणसिंह ने प्रश्न किया, "क्यों?"

मुन्सिफ ने आदेश दिया, "इसे अंग्रेजी में पेश करो।"

चरणसिंह ने तर्क दिया, "आप भी भारतीय हैं। आपकी भाषा भी हिन्दी है। आप हिन्दी को प्रोत्साहन दीजिए न!"

मुन्सिफ चिढ़ गया। वह हीन-ग्रन्थी का शिकार हो गया। हिन्दी से जैसे उसे अपमान-बोध हुआ। उसने कहा, "अदालती कामकाज की भाषा अंग्रेजी है। अतः आपका दावा खारिज किया

जाता है।"

चरणसिंह भी अड़ गये। महामना मालवीय के मेमोरंडम पर पारित शासन के आदेशों को उन्होंने ढूँढ निकाला। उसका हवाला दिया। मुन्सिफ तब भी नहीं माना। उसने चरणसिंह के दावों को निरस्त करना शुरू कर दिया। उन्हें इससे ठेस लगी। तब इस अदालत के केस लेने बन्द कर दिये। शेष दो अदालतों में हिन्दी में ही काम करते रहे।

हिन्दी के प्रति उनमें इतना लगाव था कि बाद में अपने मंत्रीत्व और मुख्यमंत्री काल में उन्होंने सरकारी काम काज में हिन्दी का उपयोग शत प्रतिशत कर दिया। इस सम्बन्ध में कड़े आदेश पारित करके अनुपालना करवायी। 9 दिसम्बर 1948 को अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन मेरठ में हुआ था। चरणसिंह इस सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष थे। उन्होंने उस समय अपने विचार प्रकट करते हुए कहा था, "राष्ट्रभाषा पद पर केवल हिन्दी को ही आसीन किया जा सकता है।" चरणसिंह का बाद में यह दृढ़ मत रहा कि अगर पंडित नेहरू ने आजादी के प्रारम्भ से ही संविधान में पारित राष्ट्रभाषा का प्रस्ताव लागू कर दिया होता तो आज भाषा को लेकर कतिपय राजनैतिक क्षेत्रों में जो अलगाव पैदा हो गया है, वह नहीं होता। इस देश के जन जन की भाषा तो हिन्दी ही हो सकती है।" अस्तु...

गाजियाबाद कांग्रेस के वे संयोजक थे। इस नाते वे देहाती क्षेत्रों में आते जाते रहते। विदेशी वस्त्रों का बहिस्कार और खद्दर पहनने का प्रचलन हो गया था। उन्होंने गांवों में कहना शुरू किया, "मोटा खाओ, मोटा पहनो, मोटा रहो।" ग्रामीण जनता पर इसका प्रभाव पड़ा। चरणसिंह को देखकर लोग उन्हें घेर लेते। उनके मुंह से अधिक से अधिक बातें सुनना चाहते थे। तब वे कहते, "भाई, मुझे अगले गांव भी तो जाना है।"

अपने गांव भदौला में उन्होंने एक विशाल जलशे का आयोजन करवाया। इसमें मेरठ के कुमार आश्रम से अलगूराय शास्त्री और उनके सहयोगियों ने भी भाग लिया। घरवालों ने पहली बार उसे भाषण करते सुना। आसपास के गांव वालों ने चौधरी मीरसिंह को बधाई देते हुए कहा, "भैया तेरा छोरा तो नेता बन गया है। हम पहले ही कहते थे।"

अपने बचपन की याद ताजा करने के लिए नूरपूर और जानी खुर्द गांव भी गये। गांवों का वातावरण ज्यों का त्यों था। वही गरीबी मुंह बाये खड़ी थी। गांव अपने मीरसिंह के छोरे को देखने उमड़ पड़ा जो अब एक 'वकील नेता' हो गया था। दरख्त के नीते खाट बिछा दी गई थी। उस पर बैठे चरणसिंह के सिर पर हाथ फेरने की बुजुर्गों में हौड़ लग गई। यही दुआ उनका सम्बल थी। इसी के बल पर तो अक्खड़ बनकर वे सुप्रीम नेताओं से टक्कर ले सके थे। वहीं उनका खाना आ गया। तब एक से रहा नहीं गया। पूछा, "क्यूं भैया, तूं अब भी भजन गावै है?" सभी हंस पड़े। चरणसिंह ने कहा, "ताऊ, ज्यों ज्यों उम्र बढेगी, भजन तो अधिक गाऊंगा। तब एक दोहा सुना ही दिया,-

"देखो कर्म कबीर का, कछु पूरब-जनम का लेख।
जाका महल न मुनि लहैं, सो दोसत किया अलेख॥

ताऊ तो जैसे निहाल हो गया। उसकी गर्दन जैसे झूमनी लगी। तब हंसकर चरणसिंह ने पूछा, "और सुनोगे ताऊ।"

"भैया, एक दोहा और सुना दो। ताऊ ने आग्रह से कहा। और चरणसिंह गा उठे।

"कबीरा प्याला प्रेम का, अंतर दिया लगाय।
रोम रोम में रमि रह्या, और अमल क्या खाय॥"

"साची बात है भैया।" ताऊ ने स्वीकृति में सिर हिलाया। बच्चे-बूढ़े, महिलाएं सब के सामने जैसे एक फरिश्ता बैठा हो, वे ध्यान से सुन रहे थे। तब उन्होंने गांधीजी के बारे में बताया। अंग्रेजी राज को भगाने की बात कही। खादी पहनने का आह्वान किया। और फिर वह अगले गांव की ओर चल पड़े।

'यंग इंडिया' में गांधीजी के लेख बराबर आ रहे थे। अपने लेखों में गांधीजी भारत के दरिद्रनारायण की चर्चा करते रहते थे। चरणसिंह पढते और कह उठते, ''सारे भारत के गांव एक जैसे हैं। सभी भूखे पेट और वस्त्रहीन तन, टूटा हुआ मन और टूटी-फूटी झौंपड़ी।'' वे बहुत दुःखी थे। इस गरीब का, किसान का कब सुधार होगा? वे इसमें डूब जाते। इसका एक ही हल उनके दिमाग में था कि गांव गांव में कुटीर उद्योग खोले जायें। इसके बिना असली भारत का कल्याण नहीं होने वाला है। गांवों में वे अपने दौरे में कहते, ''पहले गांव खुशहाल थे। खेती के साथ छोटे छोटे धन्धे थे। अंग्रेजों ने इन सबको बर्बाद कर दिया। अब आवश्यक हो गया है कि गांवों में उन वस्तुओं का बिल्कुल प्रयोग न किया जाये जो बाहर से आती हैं।''

1930 में गांधीजी द्वारा नमक कानून के विरुद्ध देशव्यापी सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू किया गया। 5 अप्रेल को गांधीजी ने डांडी यात्रा कर नमक कानून को तोड़ा। देश भर में अवज्ञा की लहर चल पड़ी। सीमा प्रान्त में खान अब्दुल गफ्फार खां, दूसरे गांधी के रूप में आंदोलन का नेतृत्व कर रहे थे। मेरठ और गाजियाबाद में चरणसिंह की व्यस्तता का कोई अंत न था। उन्होंने नेतृत्व संभाला, सरकार ने उनके विरुद्ध मुकदमा दर्ज किया। कानून तोड़ने के अपराध में उन्हें गिरफ्तार किया गया और छः महिने की सजा सुना दी। यह उनकी प्रथम जेल-यात्रा थी। परिवार पर आर्थिक संकट टूट पड़ा। गायत्री देवी के पास जेवर के नाम पर सिर्फ हाथ के कड़े थे, जिन्हें बेचना पड़ा। इससे पूर्व चरणसिंह के फक्कड़पन को देखकर उन्होंने गाजियाबाद के कन्या महाविद्यालय में नौकरी पकड़ ली थी। किन्तु जब चरणसिंह जेल चले गये तो उन्होंने भी नौकरी छोड़ दी। उन्हें यह अच्छा नहीं लगा कि पति देश-सेवा के लिए जेल में हैं तो वे सिर्फ परिवार पालने के लिए नौकरी करती रहें। उन्होंने महिला कांग्रेस का आंदोलन खड़ा किया और राजनीति में कूद पड़ी। लेकिन इनकी जिम्मेदारी तो दोहरी थी। बच्चों का भी ख्याल रखना था। उस दिन तो सचमुचवे चिंता से घिर गई जब उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। पीछे बच्चे अकेले थे। किन्तु उन्हें शीघ्र ही जेल से रिहा कर दिया गया।

6 माह बाद जेल-अवधि पूरी होने पर चरणसिंह को रिहा किया गया। बाहर आने पर वे पहले से अधिक उग्र हो उठे। परिवार की अब जैसे उन्हें कोई चिंता ही नहीं थी। उन्हें विश्वास हो गया कि परिवार का बोझ कैसे भी गायत्री देवी उठा लेंगी। वे कांग्रेस के प्रचार में जुट गये। इसी बीच गांधी-इर्विन समझौता हुआ। उन्हीं दिनों डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चुनाव आ गये। कांग्रेस की ओर से चरणसिंह को चुनाव लड़ाया गया। उनके विरुद्ध कोई भी उम्मीदवार नहीं खड़ा हुआ। निर्विरोध रूप से निर्वाचित घोषित किये गये। यह चुनाव का पहला अनुभव था जो महत्वपूर्ण था। वे बोर्ड के कनिष्ठ उपाध्यक्ष भी चुने गए। यह कम महत्वपूर्ण नहीं था। डा. राजेन्द्र प्रसाद, सरदार पटेल और पंडित नेहरू जैसे वरिष्ठ नेता अपनी अपनी नगरपालिकों के अध्यक्ष चुने गए थे। जब बोर्ड के अध्यक्ष और वरिष्ठ उपाध्यक्ष जेल चले गये तो चरणसिंह के लिए आदेश आया कि वे गिरफ्तारी नहीं दें। तब दफ्तर चलाने का भार उनके कंधों पर आ गया। प्रशासक की नींव यहीं से शुरू हुई। वे ठीक समय पर दफ्तर में आ बैठते। इससे कर्मचारियों पर भी प्रभाव पड़ा। वे सभी समय पर अपनी ड्यूटी पर आते। जनता कार्य के लिए आती तो चरणसिंह अपने कमरे में बैठे मिलते। पहले ऐसा नहीं था। जनता का कार्य हाथों हाथ होने लगा। एक दबंग प्रशासक और जनहित चिंतक के रूप में उनकी ख्याति शीघ्र ही फैल गई।

तब उन्होंने बोर्ड के स्कूलों, सड़कों और दूसरे कार्यों का जिले भर में निरीक्षण किया। कर्मचारियों में उनके कड़े अनुशासन की बात फैल चुकी थी। इसीलिए समय पर कार्य होने लगे। उस दिन, उनके यात्रा का बिल हस्ताक्षर करने हेतु उनके सम्मुख रखा गया। चरणसिंह ने हस्ताक्षर करने से पहले प्रत्येक लाईन को पढा। उनहें समझ में आया कि बिल में रकम अधिक दिखाई गई है। रात्रि निवास का चार्ज अधिक था जबकि ऐसा उन्होंने किया नहीं था। उन्होंने सम्बन्धित अधिकारी को बुलाकर कहा, ''भैया, बिल ठीक बनाकर लाओ। इसमें रकम अधिक दिखाई गई

है। जैसा मैंने किया, वैसा ही बनाकर लाओ।''

''लेकिन सर, पहले भी तो ऐसे ही बनते रहे हैं। आपको तो अधिक रकम मिल रही है'' अधिकारी ने तर्क दिया। वे कुछ बोले नहीं। उसकी ओर गंभीरता से तिरछी नजरों से देखा जैसे कह रहे हों-वही करो, जो मैंने कहा है। यात्रा भत्ता बिल लेकर अधिकारी अपने कमरे में आ गया। फिर तो दफ्तर में सन्नाटा छा गया। कैसा बोर्ड अध्यक्ष है? न खायेगा न खाने देगा। यह पहले के ढर्रे से एकदम भिन्न था। सभी कर्मचारियों को सचेत होने का यह संकेत था। वे चरणसिंह से भयभीत रहने लगे। आपस में चर्चा करते-भैया ध्यान रखा करो। यह आदमी सख्त मिजाज का है। फंस गये तो बचोगे नहीं।''

जिला बोर्ड में चरणसिंह को जनता की व्यवहारिक कठिनाइयों का भी ज्ञान हुआ। गांवों में तब विकास के नाम पर कुछ नहीं होता था। आने-जाने के साधन नहीं थे। सड़कें नाममात्र की थी। बैलगाड़ियों से आना जाना होता। गांव का पानी कैसा है, इसकी कभी जांच नहीं होती थी। पढाई-लिखाई पर अत्यन्त सीमित खर्चा होता था। चार-पांच गावों के बीच मुश्किल से एक प्रायमरी स्कूल होता। अन्धविश्वासों का गांवों में कोई अन्त न था। गांव शाम होते ही धुयें और अंधकार में डूब जाते। लेकिन एक चीज गांवों में अब भी बची हुई थी, जिसे कबीर वकील चरणसिंह पसन्द करते थे। वह थी मानवता, नैतिकता। एक दूसरे के सुख-दु:ख में सम्पूर्ण रूप से शरीक होते थे। उच्च चरित्र का अकाल नहीं था। गांव की बहन-बेटियां अकेली खेतों में जाती, काम करती। एक की इज्जत, गांव की इज्जत।

तब, वे गांव वालों को जागृति का पाठ पढाते। वे बातचीत में कहते, ''किसानों, तकदीर के भरोसे मत बैठो। भगवान भी उसकी सहायता करता है, जो स्वयं प्रयत्न करे। अज्ञान और गरीबी हमारी शत्रु हैं। इन्हें दूर भगाना होगा। यह तभी भागेंगे, जब अंग्रेज भाग जायेंगे। अंग्रेज मालामाल होते गये, हम लुटते चले गये। अब संगठित होकर कांग्रेस की सहायता करो। जिला बोर्ड में गांवों के लिए मामूली बजट है, मैं चाहकर भी तुम्हें कुछ नहीं दे सकता।''

और तब उनकी चेतना के लिए कबीर के दोहे सुनाते, आर्य समाज के सिद्धान्त बतलाते। वे कहते, ''इस्लाम में बराबरी है, हिन्दू धर्म में ऊंच-नीच है। इसलिए हम इस्लाम की बराबरी करना चाहते हैं। दोनों धर्मों में आई रूढिवादिता से गांव और किसान का शोषण हो रहा है।''

उन्हीं दिनों अजमेर में महर्षि दयानन्द सरस्वती अर्द्ध-शताब्दी समारोह का आयोजन किया गया था। उसी अवसर पर चरणसिंह ने एक लेख लिखा था-''हमारा दायित्व'' (व्हाट इज अवर ड्यूटि?— यह लेख दिल्ली से प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक ''हिन्दुस्तान टाइम्स'' के 3 जून 1933 के अंक में प्रकाशित हुआ था। किसी भी प्रतिष्ठित राष्ट्रीय अखबार में यह उनकी पहली रचना थी। पूरे देश के आर्य समाजी वहां एकत्रित हो रहे थे। इसीलिए उन्होंने यह लेख अंग्रेजी में लिखा था। इसमें उन्होंने लिखा, ''संतों की लम्बी परम्परा में गैर हिन्दु लोगों के लिए हिन्दू धर्म के द्वार खोलने वाले वह (दयानन्द) पहले संत थे। एक समय ऐसा था, जब एक हिन्दू अपने धर्म पर लज्जित होता था और ईसाई मत को अंगीकार करके लज्जा से मुक्तिकी खोज किया करता था, किन्तु महर्षि के परिश्रम के लिए धन्यवाद है कि आज एक हिन्दू अपने अन्तर्मन में वैदिक धर्म के सत्य से आश्वस्त होकर और अपने मत के समर्थन में विश्वास के साथ, गर्दन ऊंची उठाकर घूम सकता है।''

''महर्षि दयानन्द ने इस मत का जमकर विरोध किया था कि यह संसार विकारों का घर है, अत: इससे दूर रहना चाहिए। समाज के प्रति एक सामान्य हिन्दू की इस उदासीनता का परिणाम यह हुआ कि वह सिर्फ अपने मोक्ष के विषय में ही प्रयत्नशील रहा। महर्षि दयानन्द ने प्रतिपादित किया था कि जीवन के प्रति यह नकारात्मक दृष्टिकोण, यह व्यक्तिवादी चेतना, जो जैन और बौद्ध धर्मों के प्रचार का विकृत प्रभाव है, भारत के राजनैतिक पराभव का प्रमुख कारण है। महर्षि दयानन्द भारत के अतीत के प्रति श्रद्धा रखते थे और उनका विश्वास था कि विश्व के अन्य भागों में ज्ञान

का प्रसारक-स्रोत भारत वर्ष ही था। उन्होंने अपने देशवासियों की दृष्टि के सामने विलुप्त आर्य वैभव को फिर से प्रस्तुत किया और उनको आश्वस्त किया था कि यदि हम उस मार्ग पर फिर से आसीन हो जायें और कार्य करना प्रारम्भ कर दें तो गौरव वृद्धि की संभावना को नकारा नहीं जा सकता।"

आगे, एक जगह उन्होंने आह्वान करते हुए लिखा, "आर्य पुरुष, आर्य महिला तथा आर्य कुमारों से मेरा अनुरोध है कि वे अजमेर की महान् यात्रा पर निकल पड़ें और उसके पश्चात् नवीन स्फूर्ति तथा प्रेरणा के साथ उस अपूर्ण कार्य की पूर्ति पर जुट जायें, जिसे हमारा महान् गुरु ने अजमेर में अधुरा छोड़ दिया था। साथियों, हमारी तीर्थ-यात्रा का यही पाथेय है।"

कबीर और दयानन्द सरस्वती में समानताएं तो जग-जाहिर हैं किन्तु असमानताएं भी थी। वो यहहै कि कबीर ने जहां हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों के पाखण्ड पर जम कर प्रहार किये, वहीं दयानन्द सरस्वती ने सिर्फ हिन्दू धर्म को जागृत करने का बीड़ा उठाया था। उसे आर्य सभ्यता की दुहाई देकर पुन: अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त करने को ललकारा था। किन्तु कबीर ने दोनों धर्मों की रूढिवादिता को समाप्त कर, एक ही ईश्वर या खुदा का नाम जपने का आह्वान किया। उनका ईश्वर निगुर्ण था, अलौकिक था, निराकार था। वस्तुत: एक ही लाईन में कहें तो कबीर मानवता का कल्याण निराकार ब्रह्म की भक्ति में मानते थे जबकि दयानन्द मात्र हिन्दू धर्म का उत्थान चाहते थे। वह हिन्दू धर्म के समाज सुधारक थे।

बदलती परिस्थिति में, चरणसिंह ने इन दोनों को अंगीकार किया, वह महत्वपूर्ण है। कट्टर हिन्दू समाज की रुढियों को उसके ही हथियार से काटने के लिए आर्य समाज का उपयोग था तो मानव मात्र के कल्याण के लिए कबीरदास उनके घट में तैयार थे। ऊपर के उनके लेख के अंश और उनकी फक्कड़ता में अक्खड़ता इस बात का प्रमाण हैं।

9.

इसी बीच दिल्ली का असेम्बली बम कांड हो गया था। भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने एक एक बम फेंककर गोराशाही को हिला दिया था। किसी को मारने का इरादा तो था ही नहीं। गिरफ्तारी से पूर्व उन्होंने जो पर्चे फेंके थे, उसकी पहली पंक्ति थी-"बहरों को सुनाने के लिए विस्फोट के बहुत ऊंचे शब्द की आवश्यकता होती है।" अंतिम पंक्ति थी-"मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को समाप्त कर देने के लिए क्रांति में कुछ न कुछ रक्तपात अनिवार्य है।" गाजियाबाद दिल्ली से दूर ही कितना है? इससे यह धारणा बन गई कि क्रांतिकारी अंग्रेज सरकार को चुनौति देने लगे हैं। चरणसिंह गांधीवादी थे किन्तु ऐसी घटनाओं से उनकी आंखें चमक उठती।

इस वक्त देश में उथल-पुथल मची हुई थी। क्रांतिकारी सरकार पर चोट कर रहे थे तो गांधीजी बातचीत का क्रम जारी रखे हुए थे। 1928 के कलकत्ता अधिवेशन में गांधीजी ने प्रतिज्ञा की थी कि यदि एक साल में सरकार कांग्रेस की मांग नहीं मानती है तो वे 1929 के अधिवेशन से व्यापक सार्वजनिक आंदोलन की घोषणा कर देंगे। एक साल में सरकार ने गांधीजी की चेतावनी की बिल्कुल उपेक्षा कर दी थी। दिसम्बर के अंतिम सप्ताह में लाहौर अधिवेशन हुआ था। उससे पूर्व गांधीजी एक बार लार्ड इर्विन से बातचीत करना चाहते थे। सबकी नजर इस अधिवेशन पर लगी हुई थी।

तभी एक धमाका और हुआ था। वायसराय लार्ड इर्वन की स्पेशल गाड़ी के नीचे क्रांतिकारियों ने बम चला दिया था। वायसराय बालबाल बचा था। उस दिन के अखबार गाजियाबाद पहुंचे तो

पूरा शहर जैसे खुशी से झूम उठा। चरणसिंह के निवास पर कांग्रेसियों की भीड़ एकत्रित हो गई। अब गाँधीजी क्या कहेंगे?

गाधीजी ने लाहौर अधिवेशन में इस बम कांड के विरुद्ध क्रांतिकारियों की आलोचना का एक प्रस्ताव रखा। कांग्रेस में भारी विरोध हुआ। तब गांधीजी ने रूठ जाने की धमकी दी थी। फिर भी यह प्रस्ताव 1713 की उपस्थिति में से मात्र 81 के बहुमत से ही पास हो सका। कांग्रेस पर भारी दबाव पड़ा। तभी वह ऐतिहासिक क्षण आया था जब पंडित नेहरू ने 26 जनवरी 1930 को, रावी नदी के तट पर पूर्ण स्वतंत्रता की घोषणा की थी।

उधर भगतसिंह आदि क्रांतिकारियों के सशक्त बयान कोर्ट से आ रहे थे। भगतसिंह ने कहा था, ''बम-पिस्तौल आदि से क्रांति नहीं होती। ये तो माध्यम मात्र हैं। क्रांति जनता के सामुहिक प्रयत्नों से ही संभव है।'' गांधीजी के अहिंसा के सिद्धान्त का भगतसिंह ने करारा जबाब दिया था। हिंसा किसी निरपराद के साथ उद्येश्यहीन आतंक है। लेकिन जब कोई व्यवस्था आतंक का सहारा लेकर शांति प्रिय आंदोलन को कुचलती है तो प्रत्युतर में सशस्त्र मार्ग हिंसा नहीं है। लाहौर हाई कोर्ट में भगतसिंह ने कहा था, ''क्रांति संसार का नियम है, वह मानवीय प्रगति का रहस्य है। उसमे रक्त रंजित संघर्ष अनिवार्य नहीं है, न उसमें व्यक्तिगत प्रति हिंसा की कोई जगह है....। '' अखबारों में ये बयान आ रहे थे। चरणसिंह का मन खिन्न था कि ये बहादुर युवक जेलों में सड़ रहे हैं। विदेशी सत्ता के विरुद्ध उनके मन में घृणा बढ़ती जा रही थी।

तब समाचार आया था कि हाईकोर्ट ने भगतसिंह की फांसी की सजा बहाल रखी थी। तब पूरे देश में मौत की सजा माफ करवाने के लिए जन आंदोलन चल पड़ा था। चरणसिंह के नेतृत्व में सभा का आयोजन कर भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरू को मौत की सजा बदलने की मांग की गई थी।

तभी गाँधी की लार्ड-इर्विन से समझौता वार्ता चल रही थी। पूरे देश ने गांधी से मांग की थी कि भगतसिंह की सजा बदलने की शर्त शामिल की जाये। गांधीजी ने स्पष्ट इनकार कर दिया। उनकी ग्यारह शर्तों में शराबबन्दी भी एक शर्त थी। पूरा देश हतप्रभ था कि गांधीजी ने भगतसिंह की जान की कीमत शराब से भी कम समझी। तब 23 मार्च 1931 को शाम को भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरू को फांसी दे दी गई। इस समाचार से पूरा देश हिल उठा था। चरणसिंह उस दिन घर से बाहर नहीं निकल पाये। गांधीजी के प्रति उनकी भक्ति का कोई अंत न था, लेकिन भगतसिंह के प्रश्न पर जैसे उन्हें गाधी पर क्रोध आया। तीन दिन बाद.ही करांची में कांग्रेस का अधिवेशन था। गांधीजी को यहां विरोध का सामना करना पड़ा।

तेजी से घटते घटना-चक्र का चरणसिंह पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। अब वे पूरी तरह राजनीति में रंग चुके थे। इससे वकालत समाप्त प्रायः होती जा रही थी। किन्तु वे अधिक दृढ़ होते जा रहे थे। सुबह जल्दी उठते, घूमकर आते, यह नियम बद्ध हो गया था। दिन में कोर्ट में जाते या प्रचार में चले जाते।

मशीन की तरह कार्य में जुटे चरणसिंह को आर्थिक स्थिति की तो परवाह नहीं थी। लेकिन इसी समय ईश्वर की तरफ से उन्हें भारी सजा मिली। तीन पुत्रियों के बाद वे गाजियाबाद में एक सुन्दर एवं स्वस्थ पुत्र के पिता बने। बच्चे को गाजियाबाद के 'बेबी शो' में सर्वश्रेष्ठ घोषित किया गया था। उसके कुछ समय पश्चात् ही यह सुन्दर अबोध बच्चा चल बसा। आयु सिर्फ साढे दस माह की थी। परिवार में कोहराम मच गया। असह्य वेदना थी। लेकिन चरणसिंह ने इस पीड़ा को दबा लिया। गायत्री देवी तो जैसे चीत्कार कर उठी थी। पुत्र की कामना उन्हें बहुत थी। भगवान ने इसे वापस क्यों छीन लिया। वे बिलख-बिलख कर रोई। सास और अन्य महिलाओं का उलाहना भी सुनना पड़ा। इसे बाहर भेजा ही क्यों गया? महिलाओं का विश्वास था कि इस अति सुन्दर बच्चे को किसी की नजर लग गई। गायत्री देवी ने खाट ही पकड़ ली। वह काफी दिनों तक इस गम से उबर नहीं सकी और शोक विह्वल पड़ी रही।

बाद में गाजियाबाद से मेरठ बसने का शायद यह एक कारण रहा हो। स्थान बदलने से इस अमंगल घटना से शायद मुक्ति मिले। लेकिन यह तो बाद की बात है। गाजियाबाद में रहते ही फरवरी 1937 में कांग्रेस ने उन्हें प्रान्तीय धारा सभा का चुनाव लड़ने के लिए उम्मीदवार घोषित कर दिया। यह चुनाव-क्षेत्र बहुत बड़ा था। अब तो यहां से आठ विधायक चुनकर आते हैं।

इतने बड़े क्षेत्र में चुनाव लड़ना आसान तो न था। बड़े बड़े कांग्रेसी नेता यहां से खड़े होने में कतरा गये। चरणसिंह के विरुद्ध अंग्रेजों ने अपने प्रिय नवाब बागपत को खड़ा करने की कोशिश की। नबाब की हिम्मत नहीं हुई। तब अंग्रेजों ने चरणसिंह के विरुद्ध एक बड़े जाट-जमींदार को ही राजी किया। जमींदारों का प्रभाव जनता पर खूब था। बाद में सन् 52-57 में भी जमींदार काफी संख्या में चुनाव में विजयी हुए थे। राजस्थान में तो 1962, 67 तक बड़े घराने एवं जागीरदार चुनाव जीतते रहे हैं। अशिक्षित जनता के मन से दासता की भावना मिटते बहुत समय लगा। यू. पी. में 1923 के काउन्सिल चुनावों में 77 ग्रामीण सीटों में से 58 सीटें बड़े जमींदारों ने जीती थी। 1937 में चरणसिंह के समक्ष जमींदार ने मुंह की खाई। बुरी तरह हार हुई। चरणसिंह अप्रत्याशित बहुमत से विदेशी शासन के उम्मीदवार के विरुद्ध विजयी रहे।

उस समय तक, वे गांव गांव में घूम चुके थे। उनकी बातों से आम जन निहाल हो रहा था। जीतने पर उन्हें लगा, उनकी तपस्या सफल हुई। गांवों में जो आर्य-समाज का अभियान चलाया उससे जनता जागरुक हो चुकी थी। वर्षों से कुंडली मारे जमींदार धाराशायी हो गया। यह जनता की ताकत थी। यही तो उन्हें चरणसिंह ने बताया था। गांव की इस नयी लहर ने जैसे उन्हें गाने को मजबूर कर दिया था-

''संतो भाई आई ज्ञान की आंधी।
भ्रम की टाटी सबै उड़ानी, माया रहै न बांधी॥
आंधी पीछै जो जल बरसै, तिहि तेरा जन भीनां।
कहै कबीर मनि भया प्रगसा, उड़े भानु जब चीना॥''

आंधी के बाद बरसे जल से, चरणसिंह ग्रामीण जन का तब हीरो बन गये। 1937 में फूटा यह अंकुर इतनी गहरी जड़ें जमा गया कि आयु पर्यन्त यहां की जनता ने उन्हें सिर आंखों पर रखा। 1952 के असेम्बली चुनव में छपरौली से वे 52 हजार वोटों से जीते थे, जो इस देश में रिकार्ड है।

1937 में कांग्रेस पार्टी को सभी प्रान्तों में भारी सफलता मिली थी। लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकांश सीटों पर बड़े जमींदार विजयी हुए थे। साधारण किसान को कांग्रेस ने टिकट ही नहीं दी थी। चरणसिंह की प्रतिभा से कांग्रेस प्रभावित थी। यह विडम्बना ही है कि जिसके हिस्से में मात्र तीन-साढे तीन एकड़ भूमि आने वाली थी, उन्हीं चरणसिंह को विरोधियों ने 'कुलक' कहा था।

धारा सभा में पहुंच कर उन्हें लगा, अब गरीब के लिए कुछ करने का अवसर मिल गया है। उन पर सवार धुन चैन कहां लेने देती। गत छः सात वर्षों से वे किसान की समस्याओं का गहन अध्ययन कर चुके थे। लखनऊ पहुंचते ही उन्होंने ''लैंड युटिलाइजेशन बिल'' तैयार किया। इस बिल में यह प्रावधान था कि लगान का दस गुना जमा कर देने पर जमीन का स्वामित्व जोतदार को दे दिया जाये। चरणसिंह ने मसविदा बनाकर सभी विधायकों के पास भेजा। विचार-विमर्श के बाद इसे धारा सभा में पेश करना चाहते थे। प्रान्तीय धारा सभा को अंग्रेजी शासन ने बहुत सीमित अधिकार दिये थे। प्रभावकारी रूप में कुछ करना संभव नहीं था। यदि धारा सभा किसी बिल को पास भी करदे तो गवर्नर मानने को बाध्य नहीं था। फिर भी बिल से लम्बी चौड़ी बहस तो की जा सकती थी। लेकिन चरणसिंह को बिल पेश करने की अनुमति नहीं मिली। इतना अवश्य हुआ कि वे सभा में अपनी ख्याति फैलाने में सफल हो गये। गांव क सीधा-सादा सा युवक अंग्रेजों और जमींदारों से लोहा लेने को जैसे तैयार बैठा था।

बेशक धारा सभा में अनुमति नहीं मिली, लेकिन इस किसान मसीहा को चैन कहां था? उनकी कलम तो देर रात तक कुछ न कुछ लिखती ही रहती। हिन्दुस्तान टाइम्स में कृषि विपणन पर दो लेख प्रकाशित करवाये। प्रथम था, 'मंडी में किसान की लूट' एवं दूसरा 'नियमन के लिए प्रस्तावित कानून'। धारा सभा में बिल पेश की कोशिश से उनका नाम प्रान्त की सीमाओं को पहले ही लांघ चुका था। इन दो लेखों के प्रकाशन के बाद तो उनकी बात पर गौर किया जाने लगा।

पंजाब में उस समय की सरकार में राजस्व मंत्री, सर छोटूराम थे। लेख पढ़कर बहुत प्रभावित हुए। तब उन्होंने अपने निजी सचिव को चरणसिंह के पास भेजा। सचिव ने इस विषय पर चरणसिंह से मार्ग-दर्शन लिया। जब छोटूराम को समझ में आ गया तो इन्हीं विचारों के आधार पर पंजाब में कृषि विपणन सम्बन्धि कानून बनाया गया। आजादी के बाद 1949 में जो मंडी समिति कानून अस्तित्व में आया, वह भी चरणसिंह के विचारों पर ही आधारित था। दरअसल चरणसिंह मंडी एक्ट को धारा सभा में पहले ही पेश करना चाहते थे किन्तु 1938 में धारा सभा भंग कर दी गई।

उस समय पूरे देश में किसान आंदोलन की लहर थी। अंग्रेज शासकों को जमींदारों और ताल्लुकदारों की चिंता थी। किसानों के बढ़ते असंतोष से जमींदार और अधिक अंग्रेजों के पिट्ठु बनते जा रहे थे। उधर चरणसिंह, दूसरों पर निर्भर इन 'ऐय्याशी जीवों' को समाप्त करने पर तुले थे।

इसी बीच वे पुनः धारा सभा के लिए चुन लिये गये। उन्होंने एक दूसरा प्रस्ताव रखा, कि 50 प्रतिशत उच्च प्रशासनिक पद खेतिहर अथवा ग्रामीणों के लिए आरक्षित किये जायें। यह प्रस्ताव भी पारित न हो सका। लेकिन आर्य समाज और कबीर उन्हें चैन कहां लेने देते! कांग्रेस विधान मंडल दल के सम्मुख प्रस्ताव रखा जिसमें प्रावधान था, "हिन्दू प्रत्याशियों से लोक सेवा और शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश के समय जाति के बारे में कोई पूछताछ न की जाये। सिर्फ यह जांच की जा सकती है कि क्या प्रत्याशी अनुसूचित जाति से सम्बन्धित है?"

कांग्रेस में उस समय उच्च वर्ग और जमींदारों का वर्चस्व था। उनका प्रस्ताव कांग्रेस ने ही अन सुना कर दिया। किन्तु चरणसिंह इस सम्बन्ध में पीछे हटने वाले कहां थे। 1948 में जाकर उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा फैसला लिया गया कि भविष्य में भू-राजस्व के इन्दराजों में पट्टेदारों की जाति का उल्लेख न किया जाये। कुछ तो हुआ।

दिन में विचार-विमर्श करते, रात को अपने विचार कागज पर उतारते। न दिन में चैन था, न रात को। उन्हें खेत की मेंड पर खड़ा, पसीने और मिट्टी से लथपथ किसान जैसे रोज चुनौति दे रहा था, "भैया, अब तो प्रान्त में अपनी सरकार है। तुम लोग कुछ करो तो!" और वे अपेन सहयोगियों से कहते, "हमें गांव तथा किसान के लिए कुछ करना चाहिये।" कांग्रेसी नेताओं द्वारा गांव से विमुख होना उन्हें विस्मय जनक लगता। उनका मन सरकारी सुविधाओं से विमुख था। कुछ किये बिना चैन नहीं। वे तब मेरठ, गाजियाबाद आ जाते। फिर गांवों का चक्कर लगाने चल पड़ते। किसान उनकी जय जयकार करते तो उन्हें अच्छा नहीं लगता। आत्म प्रचार से कोसों दूर। कहते, "भाई अभी तो मैं आप लोगों के लिए कुछ नहीं कर सका हूँ।"

किसान के प्रति उनका मोह चर्चित हो गया। पंजाब में उस समय कांग्रेस कमजोर थी। कांग्रेस को किसानों में लोकप्रिय बनाने हेतु चरणसिंह को पंजाब में आमंत्रित किया गया। वे बार बार बाहर दौरों पर जाने लगे। किसानों को कांग्रेस का कार्यक्रम समझाते हुए कहते, "किसानों, कांग्रेस तुम्हारी लड़ाई लड़ रही है। गांधी हैं, पटेल हैं, ये सब लोग तुम्हारा भला चाहते हैं। लेकिन तुम भी अपने में व्याप्त कुरीतियों को त्यागो। संगठित होकर अपने हक की लड़ाई लड़ो। कांग्रेस तुम्हारा साथ देगी।"

जिला मुख्यालय तो मेरठ था। गाजियाबाद जैसे अब उनके लिए छोटा पड़ने लगा। अनेक नेता भी चाहते थे कि चरणसिंह जिला मुख्यालय पर रहने लगें। दूर दूर के किसानों का आग्रह भी था। और तब, वे 1939 में स्थायी रूप से मेरठ में आ गये। चलने की बात हुई तो हरिजन रसोइया

उदास हो गया। बड़ी बेटी ने पिता से कहा, "रसोइया बहुत दुःखी है।"

चरणसिंह ने तुरन्त टोका, "बेटी, रसोइया नहीं, तुम्हारे चाचा हैं। चाचा कहा करो।' उन्होंने रसोइये को बुलाया, "क्यों भाई, क्या बात है?"

"मैं भी आपके साथ मेरठ चलना चाहता हूं।"

"अच्छा! तो तैयार हो जाओ।"

बाद में तो यह परिवार का सदस्य बन गया। इसके दो-तीन बेटों को सरकारी नौकरी लगवाने में पूरी सहायता की।

10.

मेरठ आने के बाद तो भीड़ बढ़ने लगी थी। सामने विशाल क्षेत्र था। राष्ट्रीय अखबारों में लेख छपने से प्रसिद्धि बढ चुकी थी। गांव गांव उनका परिचित हो गया। कोई ऐसा गांव न था, जहां के काफी लोगों को जानते न हों। मेरठ कमिश्नरी में चर्चित व्यक्तित्व बन गये। तभी द्वितीय महायुद्ध शुरू हो गया।

गांवों की चौपालों में या तो युद्ध की चर्चा होती या चरणसिंह की। युद्ध से भय व्याप्त था तो चरणसिंह का सहारा था। फौज के पेन्शनर गांवों में बहुत थे। बातचीत में कहते, "अंग्रेजी राज में सूरज भी नहीं डूबता। वे ही युद्ध जीतेंगे। भारत को भी नहीं छोड़ेंगे।" कुछ तो और आगे बढ़कर कहते, "चरणसिंह के चक्र में मत आओ भैया! यह फिरंगी राज है।"

दूसरे विश्व युद्ध में भारत को भी धकेल दिया था। गांधीजी को बहुत निराशा हुई। उन्होंने व्यक्तिगत सत्याग्रह का आह्वान किया। चरणसिंह ने तो पहले से ही गांवों में दौरे शुरू कर दिये थे। अब तक वे जिले के प्रमुख कांग्रेसी नेता बन चुके थे। कांग्रेस या गांधीजी की ढुल-मुल नीति से गांवों में निराशा व्याप्त थी। चर्चा यह भी थी कि गांधीजी का अंग्रेजों से समझौता हो गया है। युद्ध के पश्चात् भारत को आजादी मिल जायगी। लेकिन चरणसिंह के प्रचार में कोई कमी नहीं आई। वे गांव गांव घूमते और यह कहते रहे कि हमारी नीति में कोई अन्तर नहीं आया है। अंग्रेजों और जर्मनों की लड़ाई कब्जे की है। हम स्वतंत्र होना चाहते हैं। हमें मतलब नहीं कि अंग्रेज जीतें या जर्मन! भारत हमारा है।

उस समय तक मुस्लिम लीग प्रभावशील होकर उभर चुकी थी। गांवों में हिन्दु मुस्लिम को बांटने का षडयंत्र चल रहा था। इस समय ही तो उनका कबीर काम आया। वे कहते-

'हिन्दू कहै मोहि राम पियारा, तुरक कहै रहिमान।
कबिर लड़ि लड़ि दोनों मुये, मरम न काहु जान॥"

गांवों में हिन्दु-मुसलमान दोनों चाव से सुनते। कबीर के दोहे सुनकर दोनों एक दूसरे की ओर देख मुस्कराते। वे बार बार कहते, "ईश्वर या अल्लाह एक ही हैं। इस दुनिया में सबसे बड़ी शक्ति एक है। उसके नाम अलग अलग हो सकते हैं। सबको एक ने ही बनाया है। मरकर सभी एक ही गति को प्राप्त होंगे।" उस समय, उनके प्रवचन लम्बे होते। वे भूल जाते कि वे नेता हैं। राजनीति कहीं दूर छूट जाती। गांव की माटी एक, गांव का आदमी एक, वे सब से सवाल करते, "आप में कोई ऐसा है जो किसी बच्चे को देखकर बता दे कि वह हिन्दू है या मुसलमान!" कोई नहीं, कोई नहीं" की आवाज गूंज उठती।

"तब, ये दो किस तरह हुए!" उनका सवाल ही जैसे उत्तर था। उस समय सभा में सन्नाटा छा जाता। गांवों के इस तूफानी प्रचार से अंग्रेज प्रशासक घबरा उठे। उन्होंने चरणसिंह को चेतावनी

दी। गांवों जाने से रोकने की कोशिश हुई। किन्तु उन्होंने सब कुछ अनसुना किया। तब मजबूर होकर सरकार ने उन्हें 1940 में गिरफ्तार कर लिया। यह उनकी दूसरी जेल यात्रा थी। लेकिन उनके विरुद्ध कोई आरोप नहीं लगा पाई। कुछ सप्ताह बाद ही उन्हें रिहा कर दिया।

सार्वजनिक कार्यों की व्यवस्तता का कोई अन्त नहीं था। कांग्रेस को बिल्कुल समर्पित जीवन। तभी कांग्रेस के लिए भवन बनाने की सोची। इसके लिए चन्दा एकत्रित करने की अपील की गई। भवन का निर्माण शीघ्र ही शुरू हो गया। चन्दा लेने की भी अजीब शर्त थी। किसी धनाड्य सेठ से सहयोग नहीं लिया जायेगा, यह चरणसिंह का आदेश था। यह क्या कम अजब लगता है कि गांधी को राजनैतिक गुरू मानने वाले चरणसिंह धनाड्य सेठों से हमेशा दूर रहे, जबकि गांधीजी या अन्य कांग्रेसी नेता इसी वर्ग पर निर्भर रहे। यहीं चरणसिंह का कांग्रेस में रह कर भी अलग रास्ता था। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि कांग्रेस किसी विचारधारा की पार्टी नहीं, बल्कि आजादी के लिए लड़ने का एक व्यापक मंच था। तभी तो स्वतंत्रता के बाद, जब कुछ करने का अवसर आया, चरणसिंह को कांग्रेस के अन्दर ही भयानक संघर्ष करना पड़ा। जो कांग्रेस स्वतंत्रता से पहले संघर्ष का मंच थी, आजादी के बाद सत्ता प्राप्त करने का मंच बन गई। विचारधारा का कहीं कोई प्रश्न उठा ही नहीं। ऐसी अवस्था में यदि चरणसिंह को बाद में मजबूरन कांग्रेस छोड़नी पड़ी तो वह स्वाभाविक ही था।....बहरहाल....

मेरठ आने के बाद वकालत बहुत कम हो गई थी। अक्सर वे मुकदमें दूसरे वकीलों के पास भेजते रहे। गायत्री देवी कहती, "इतना खर्चा हो रहा है, कैसे काम चले? वकालत क्यों नहीं शुरू कर देते?"

तब वे गायत्री देवी के सम्मुख, एक तरह से नाच कर गाते–

"कबीर माया पापणी, फंद ले बैठी हाटि।
सब जग तौ फंदे पड़या, गया कबीरा काटि॥"

अथवा

"कबीर माया मोहिनी, सब जग घाल्या घाणिं।
कोई एक जन ऊबरे, जिनि तोड़ी कुलकी कांणि॥"

और वे सचमुच कुल की सब रस्में तोड़ रहे थे। कांग्रेस और किसान के अतिरिक्त कुछ सूझ ही नहीं रहा था। हां, इस समय तक उनके एक मात्र पुत्र ने जन्म ले लिया था। लेकिन उसे दुलारने का जैसे उनके पास वक्त नहीं था। हां, जब घर जाते, सभी बच्चों के बीच बैठकर हंसते, मजाक करते। प्रत्येक बच्ची को दुलारते। बच्चों बाबत गायत्री देवी को निर्देश देते। फिर बैठ जाते अपने कमरे में। वहाँ आने जाने वालों का तांता लगा रहता। कांग्रेस का दफ्तर उनका घर ही हो गया था। इससे पूर्व, मेरठ जिला कांग्रेस के अध्यक्ष या तो जमींदार होते थे या धनाड्य वर्ग के। पहली बार एक सीधा-सादा सा, गांव का व्यक्ति अध्यक्ष बना था। गांव के लोगों के समूह के समूह उनके घर में आते रहते।

उन दिनों गावों में प्राय: ही चर्चा चलती, "सुनो हो भैया, वो अपने चरणसिंह कांग्रेस के अध्यक्ष भी बन गये हैं।" वे पंद्रह वर्ष तक निरन्तर मेरठ जिला कांग्रेस के अध्यक्ष या महामंत्री रहे। जिला प्रशासन उनसे डरता था। क्योंकि 1937 में ही वे इस सम्बन्ध में चर्चित हो चुके थे। तब पहली बार गोविन्द बल्लभ पंत के नेतृत्व में कांग्रेस सरकार बनी थी। जिला पुलिस अधिकारी, जो प्राय: ही अंग्रेज थे, जनता पर अत्याचार करते रहते थे। कांग्रेस मंत्री मंडल बनने के बाद भी इनके तौर-तरीकों में कोई अन्तर नहीं आया था। चरणसिंह सम्बन्धित मंत्री के नोटिस में भी लाये, किन्तु समस्या का कोई समाधान नहीं निकला था। तब वे बैचेन हो उठे। किसानों की बराबर शिकायतें आ रही थी। उन्हें क्या जवाब दें। तब उन्होंने कांग्रेसी विधायकों के हस्ताक्षर करवाकर दल की बैठक बुलाने का अभियान छेड़ा। पंतजी बैठक के विरुद्ध थे। लेकिन बैठक बुलानी पड़ी। उसमें चरणसिंह ने तथ्यों के साथ पुलिस ज्यादती का मामला रखा। प्रशासन की कटु आलोचना

की। अविश्वास का माहौल बन गया। मंत्री परिषद् के सदस्य और पंतजी घबरा उठे। बात पंडित नेहरू तक पहुंच गई। पंडितजी ने चरणसिंह को बुलाकर बात की। उनके तर्कों को मानना पड़ा। तब पंत द्वारा समस्त जिला प्रशासन को हिदायतें जारी करनी पड़ी। तभी से चरणसिंह की एक दबंग नेता के रूप में ख्याति फैल गई। जनता उनसे अत्यन्त प्रसन्न रहती। अब जनता में भी भय नहीं रहा था। वे नीडर हो अपनी बात सम्बन्धित अधिकारियों के सामने रखने लगे। गांधीजी के आह्वान पर एक बार फिर गिरफ्तारी का दौर हुआ। चरणसिंह पर तो प्रशासन की यों ही नजर थी। उन्हें नवम्बर 1940 में गिरफ्तार कर लिया और एक साल की सजा सुना दी। उन्हें पहले मेरठ सैंट्रल जेल में रखा गया। जब वहां जनता का आना-जाना अधिक संख्या में होने लगा तो उन्हें बरेली जेल में भेज दिया।

यह लम्बी अवधि थी। चुपचाप समय व्यतीत करना उनके वश में नहीं था। अध्ययन करने का पुन: अवसर मिल गया। सबसे पहले 'सत्यार्थ प्रकाश' को पुन: पढा। भारतीय सरकारों पर पुस्तक लिख डाली। उनका विचार मंथन जारी था। घर में पत्नी और बच्चे। उनकी याद कैसे न आती। आर्थिक परिस्थितियां जैसी छोड़ आये थे, काफी भयावह थी। आर्थिक संकट से परिवार कैसे निपटेगा? तब उनके पास समाचार आया कि गायत्री देवी बच्चों को लेकर दिल्ली अपने निकट संबंधी के पास चली गई। दिन में वे अन्य कैदियों के साथ जेल के अहाते में, दरख्तों की छायां में लेटे रहते। जब बाहर थे जिन्दगी व्यस्त थी। अब कोई काम नहीं था तो बच्चे बार बार याद आ रहे थे। याद भी कैसी? यह चिंता सताने लगी कि व्यस्तता के कारण बच्चों में अच्छे संस्कार की शिक्षा नहीं दे सके। तभी उनके आर्य-समाजी व्यक्तित्व ने कलम उठा ली। बाहर से भी साहित्य मंगाया गया। कैदी मित्रों से सलाह मशविरा हुआ। मन हुआ, बच्चों के लिए एक पुस्तक लिखी जाये। मौखिक सलाह न दे सके तो लिखकर दी जाये। यह सब राजनीति में डूबे चरणसिंह ने किया। निहायत ही नीति और आचरण सम्बन्धि पुस्तक बच्चों के लिए लिख डाली-'शिष्टाचार'। विज्ञान में स्नातक, पेशे से वकील और राजनीति में फक्कड़ चरणसिंह का यह आर्य समाजी करिश्मा है 'शिष्टाचार'। यह उनके बहु आयामी व्यक्तित्व का उदाहरण है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि राजनीति तो उनके लिए वक्त की पुकार थी। इसके बिना वह ग्रामीण भारत का भला कैसे करते? जनतंत्र में जन की भागीदारी बिना तंत्र क्या निगल नहीं जायेगा?

'शिष्टाचार' में दैनिक जीवन के विभिन्न व्यवहारों के बारे में रोचक ढंग से समझाया गया है। बातचीत करने के तरीके से लेकर, खाने-पीने, कपड़े पहनने, सोने आदि के बारे में समझाया गया है। स्वास्थ्य बनाये रखना और व्यावहारिक नीति अपनाने के नियम बताये गये हैं। इस पुस्तक को पढने से पता लगता है कि चरणसिंह अपने बच्चों में अच्छे संस्कार डालने के लिए कितने चिंतित रहते थे। वे स्वयं जीवन भर कायदे की आचार संहिता से बंधे रहे। दूसरों से भी यही अपेक्षा की। बहुत बाद में, 80 के दशक में, उन्होंने एक दिन पत्रकारों को अपने निवास पर बुलाया था। सभी पत्रकार बैठ गये तो चौधरी साब आये। उन्हें देख कुछ ही पत्रकार खड़े हुए, बाकी बैठे रहे। सभी से नमस्कार भी उन्होंने ही पहले की। सहसा वे बोल उठे, ''प्रेस कांफ्रेस स्थगित की जाती है। आप लोग इतने पढ लिख गये कि बुजुर्गों के साथ कैसा व्यवहार किया जाये, यह भी याद नहीं। '' तब सभी पत्रकारों ने खड़े होकर माफी मांगी। लेकिन चरणसिंह को नहीं रोक सके। उन्हें राजनैतिक गर्दिश के दिनों में भी किसी के प्रति ओछा व्यवहार करते नहीं देखा गया। किन्तु उनके बारे में, उनके ही करीबी लोगों ने जो घिन्नौने आरोप लगाये, वे आश्चर्यजनक थे। चरणसिंह की खूबी यह रही कि अपने ही सहयोगियों द्वारा फैलाये गए उस गरल को चुपचाप पी गये।

1940-41 में यह पुस्तक लिखकर तैयार की परन्तु प्रकाशित बहुत बाद में हुई। इसकी पांडुलिपी उन्होंने सुरक्षित रखी। पचास के दशक में हिन्दी के सुप्रसिद्ध कथाकार भगवतीचरण वर्मा की नजर उस पांडुलिपि पर पड़ी। पढ़ कर बोले, ''चौधरी साब, इसे प्रकाशित क्यों नहीं करवाई?''

''इसमें मुझे कुछ खाश नहीं लगा, जिससे छपवाता।'' उन्होंने उत्साह नहीं प्रकट किया।

''क्या कह रहे हैं आप? यह पुस्तक बच्चों के लिए प्रेरणा का स्रोत है। इसे अवश्य ही प्रकाशित करवाओ।'' भगवती बाबू भी पीछे पड़ गये।

वे तैयार हो गये। तत्कालीन मुख्यमंत्री गोविन्द बल्लभ पंत ने इसकी भूमिका लिखी। स्वयं चरणसिंह ने 1954 में इसकी प्रस्तावना लिख डाली लेकिन प्रेस में नहीं दी जा सकी। राजनीति के भंवर में ऐसे खोये कि 1983 में ही यह पुस्तक प्रकाशित हुई। वह भी इसलिए कि परिचित व्यक्तियों ने ऐसा करने का दबाव डाला।

अक्टूबर 1941 में उन्हें जेल से रिहा किया गया। वे सीधे बच्चों के पास दिल्ली पहुंचे। नन्हें अजित को बाहों में भरकर चूम लिया। बेटियां पिता से लिपट गईं। बड़ी बेटी सयानी हो चुकी थी। उसने शिकायत की, ''पिताजी मेरे पास दो ही साड़ियां हैं, वे भी पुरानी। अम्मा नई साड़ी लाकर ही नहीं देती।'' उन्होंने बेटी का सिर चूम लिया। प्यार से समझाया, ''बेटी तेरे पास तो दो दो साड़ियां हैं, इस देश में लाखों लड़कियां हैं जिनके पास एक एक साड़ी भी नहीं होंगी। उनका भी ख्याल करो।''

''हम बात नहीं करते।'' बेटी रूठकर जाने लगी। वे हंसने लगे। थोड़ी देर में ही बेटी को मना लिया। बच्चों में ऐसी आदत डाली कि सभी खद्दर के मोटे कपड़े पहनते थे। बच्चे तो बच्चे ही हैं। कभी कभी किसी अनावश्यक या महंगी वस्तु की फरमाइस कर देते। तब भी उनका वही तर्क होता, ''बेटे, तुम खुश किस्मत हो कि आवश्यकताएं तो पूरी हो रही हैं। इस देश में बहुत से बच्चों को रोटी, कपड़ा और मकान नसीब नहीं हैं। हमें उनका भी ध्यान रखना चाहिए।'' बच्चों को समझ में नहीं आता कि वे क्या ध्यान रखें। हां तब उनकी फरमाइस पीछे छूट जाती।

अब एक ही रास्ता था कि मेरठ पहुंचकर वकालत पुनः शुरू की जाये। चरणसिंह को यह पेशा मन तो नहीं भाया, लेकिन मजबूरी थी। मुन्शी का बार बार समाचार आ रहा था। वकील मित्रों की सलाह थी। सबसे ऊपर, घर की आवश्यकता थी। गायत्री देवी ने आखिर कह ही दिया, ''हम कब तक दूसरों के सहारे रहेंगे। मैं और तुम तो कैसे भी रह सकते हैं, लेकिन बच्चों का भी सोचा करो।'' तब उन्हें लगा, कि वे परिवार के प्रति वास्तव में उदासीन रहे। उन्होंने स्नेह युक्त एक भरपूर नजर बेटियों पर डाली और कहा, ''ठीक है, मेरठ चलने की तैयारी करो।''

जब तक सामान बांधा जाये, वे बच्चों को घुमाने ले गये। दिल्ली आने के बाद भी बच्चे स्कूल और घर के अलावा कहां जा सकते थे। लेकिन ऐसी परिस्थितियों में भी पढ़ने में पीछे नहीं रहे। जब वे परिवार के साथ मेरठ पहुंचे, पड़ौसी बहुत खुश हुए। शाम को तो आने जाने वालों की भीड़ जमा हो गई। दूसरे दिन से एक बार पुनः वे कोर्ट जाने लगे।

11.

जब पता लगा कि वे कोर्ट जाने लगे हैं, मुकदमों की उनके पास बाढ आ गई। मुवक्किलों से घिर गये। अच्छी आमदनी होने लगी लेकिन सारा समय अब कानून की किताबों में जाने लगा। हरियाणा की गायत्री देवी ने तब बच्चों के लिए भैंस बांध ली। एक नियमित जिन्दगी की शुरूआत हो गई। दिन भर कोर्ट में रहते, देर रात तक फाईलों में खोये रहते। खूब तड़के खड़े हो जाते। तब वे अन्य पुस्तक पढते या कुछ लिखते। सूर्य निकलने से काफी पहले बच्चों को खड़ा करते और घूमाने ले जाते। घूमते समय वे खूब तेज चलते। बच्चों को तो दौड़ना ही पड़ता। पीछे मुड़ मुड़कर देखते रहते, छोटी बेटी कहीं दूर न छूट जाये। घूमने के लिए गायत्री देवी को भी साथ चलने को

कहते। लेकिन वे छुट्टी के दिन ही साथ जाती। वह कहती, "सुबह सुबह मेरे पास इतना काम है कि घूमने से ज्यादा मेहनत होती है।" भैंस को देखना, बच्चों का नाश्ता तैयार करना, उन्हें स्कूल के लिए तैयार करना। खूब-भागदौड़ शुरू हो जाती।

इन्हीं दिनों, चरणसिंह ने जैसे स्वयं को और भी कठोर अनुशासन में बांध लिया। उठते ही नित्यकर्म से निपट कर स्नान करते। फिर आसन लगाकर संध्या करते। समय मिला तो कुछ अध्ययन, नहीं तो घूमने निकल पड़ते। एक आश्रम की तरह समय, नियम और अनुशासन की कड़ी पालना। यही आदत बच्चों में आ गई। उन्हें भी निश्चित समय पर सोना, उठना, स्नान करना, भोजन करना और पढना होता था। सफाई का अत्यधिक ध्यान रखा जाता। कागज का कोई टुकड़ा भी इधर-उधर मिलता तो उनके माथे पर बल पड़ जाता। यहां तक कि पेन्सिल छीलते समय भी रोगन कागज के टुकड़े पर डाला जाता। बेटियां बाल बनाती तो कंघे से उखड़े बाल, न कंघे में रहते, न हीं पड़े मिलते। प्रत्येक बच्ची सफाई का पूरा ध्यान रखती। कभी कोई चूक हो भी जाती तो बुलाकर धीरे से कहते, "देखो बेटी, यह कागज तुमने यहां डाल दिया है। आइन्दा ध्यान रखना।" बच्चों के साथ कभी जोर से नहीं बोलते थे। फिर भी बच्चे एक अदब के साथ रहना सीख गये थे।

सुबह घूमने के बाद सभी बच्चों में नहाने की आदत डाली गई थी। स्नान के बाद पीने के लिए मट्ठा दिया जाता। स्कूल जाने वाले खाने के बाद स्कूल चले जाते। किसी भी पुस्तक या कॉपी का पन्ना फटा देखते तो तुरन्त टोक देते, "बेटे, इसे ठीक करो।" अनुशासन का एक अघोषित कड़ा नियम लागू था। कभी बच्चों को यह महसूस नहीं होने दिया कि उन पर यह थोपा जा रहा है। शुरू से ही रहन-सहन ऐसा बना दिया जैसे गुरूकुल में रह रहे हों।

स्कूल से आने पर सभी बच्चे अपने अपने बस्ते निकाल निश्चित जगह पर ही रखते। जिसको भूख लगी हो, नाश्ता करता। फिर आपस में खेलते। आंख मिचौनी इनका प्रिय खेल होता। स्कूल से आते ही पढ़ने की मनाही थी। अंधेरा होने पर सभी बच्चे अपना अपना आसन लेते और संध्या करते। फिर तैय स्थान पर अपना अपना आसन रखते। खाने के समय सभी को एक साथ खाना होता। सभी की छोटी छोटी चौकियां बनाकर दी गई थी। गोल दायरे में अपनी अपनी चौकियों के सामने आसन पर बैठ खाना खाते। नियम था, रसोई से स्वयं जाकर खाना लाओ और बैठकर खाओ। खाने के बाद स्वयं अपने बर्तन साफ करो। बेटियों को प्रारम्भ में ही कहना शुरू कर दिया था, "बेटी गृह-कार्य में निपुण बनो और जी लगाकर खाना बनाओ। लड़की को गृह-कार्य में दक्ष होना चाहिए।"

खाने के बाद कुछ देर अन्तराल रहता। फिर सभी बच्चे पढने बैठ जाते। जिसकी आयु कम होती, वह पहले सोने का अधिकारी था। सोने का समय निर्धारित था। घर का मुखिया सबसे बाद में सोता और सबसे पहले उठता। मेरठ में डाली गई यह आदत हमेशा लागू रही। यही नहीं, वकालत के समय खरीदी गई यह छोटी मेज हमेशा चरणसिंह के साथ रही। उनकी डा. बेटी ज्ञानवती का कहना है कि बच्चों ने कभी चौधरी साब को सोते हुए नहीं देखा। बाद में भी कभी उन्हें आराम करते नहीं देखा। जब देखो, मेज पर झुके हुए या नीचे दरी पर तकिये के सहारे पढ़ने लिखने में लगे हैं या किसी से बतिया रहे हैं।

घर की साफ सफाई के लिए एक बूढ़ा जमादार आता था। उस दिन उन्होंने सुना कि एक बेटी बातों ही बातों में कह रही है, 'जमादार चला गया।' उन्होंने तुरंत टोका, "बेटे, ये आयु में मेरे से बड़े हैं अत: इन्हें ताऊजी कहा करो। ये भी तो हमारे परिवार के सदस्य हैं।" उस दिन के बाद जमादार बच्चों के ताऊजी ही बन गये। घर के सदस्य भी ऐसे बने कि जमादार के बच्चों को पढाने की जिम्मेदारी भी चरणसिंह ने ले ली। समय-समय पर उसकी आर्थिक सहायता करते रहे। लखनऊ जाने के बाद भी जमादार के बच्चों को मनीआर्डर भेजते रहे। यहां यह उल्लेखनीय होगा कि जमादार के बच्चों को सिफारिश करके नौकरी भी दिलाई। किन्तु स्वयं के बेटे ने नौकरी के

लिए कहा तो उत्तर मिला, "बेटे मैंने तो तुम्हें पढा लिखा दिया। अब नौकरी ढूंढना तुम्हारा काम है। मैं कहीं भी सिफारिश नहीं करूंगा।"

बेटे अजित ने तर्क दिया, "दूसरे कई नेता भी अपने रिश्तेदारों को अच्छी नौकरी दिलवा चुके हैं, इसके मेरे पास प्रमाण है। मैं भी तो आपका बेटा हूँ। आपके संकेत मात्र से मुझे किसी फार्म में नौकरी मिल सकती है।"

उन्होंने तब दृढ़ता से गर्दन हिलाते हुए कहा था, "मैं ऐसा कभी नहीं करूंगा।"

"तो फिर मुझे आगे और पढ़ने के लिए अमेरिका भेज दीजिए।"

"यह मैं कर सकता हूं।" उन्होंने कहा। किया भी क्या? अजित के खर्चे के लिए तब अपने हिस्से की जमीन बेचकर उसे अमेरिका भेजा। क्या ऐसा कोई भी व्यक्ति राजनीति में मिलेगा?....बहरहाल...।

तभी अगस्त 1942 आ गया। गांधीजी की अंग्रेजों से तीन वर्ष से आंख मिचौनी चल रही थी। गांधीजी की कोई मांग नहीं मानी जा रही थी। भारतीय फौजें अंग्रेजों के लिए लड़ रही थी, शहीद हो रही थी। कांग्रेस को गोराशाही छका रही थी। तब गांधीजी ने आह्वान किया, 'करो या मरो'। अंग्रेजों को भारत छोड़ने को ललकारा गया। देश में जबरदस्त ज्वार उमड़ पड़ा। 'भारत छोड़ो आंदोलन' के तहत पश्चिमी उत्तर प्रदेश में आंदोलन का नेतृत्व चरणसिंह ने संभाला। सरकार ने उन्हें गिरफ्तार करने को छापा मारा, किन्तु वह भूमिगत हो गये। गुप्तरूप से गांव-गांव, ढाणी-ढाणी घूम कर वे जनता को अंग्रेजों के विरुद्ध तैयार करने लगे। उनके प्रचार कार्य से प्रशासन सकते में आ गया। उन्हें तुरन्त गिरफ्तार करने के आदेश जारी हो गये। पुलिस हाथ धोकर पीछे पड़ गई।

मेरठ उस समय उत्तर भारत का, फौज में भर्ती करने का सबसे बड़े केन्द्र था। उन दिनों गांव गांव में नारा था-'न एक पाई, न एक भाई'। भर्ती होने से रोकने का आह्वन सीधा अंग्रेजों पर प्रहार था। उन्हें लड़ने के लिए सैनिकों की अत्यन्त आवश्यकता थी। गांवों में इस बात का खूब प्रचार था कि हमारे भाई, बैटे अंग्रेजों के लिए क्यों लड़े? अंग्रेज तो हमारे भी दुश्मन है 'न सैनिक मिलेंगे न एक पाई टेक्स का देंगे।' इस प्रचार के पीछे चरणसिंह का हाथ बताया गया। अब पुलिस को आदेश मिला, "चरणसिंह को जिंदा या मुर्दा, शीघ्र पकड़ा जाये।" जनता में यह धारणा फैल गई कि पुलिस चरणसिंह को देखते ही गोली से उड़ा देगी।

फौज में भर्ती के लिए जोर-जबरदस्ती की जाने लगी। उत्तर मिलता कि हमें चरणसिंह का आदेश है, नौकरी नहीं करेंगे।

पुलिस पूछती, "कहां देखा तुमने चरण सिंह को?"

लोग उस गांव का नाम बतलाते, जहां वे पहले आकर जा चुके थे। आगे आगे चरणसिंह, पीछे पीछे पुलिस। अनेक दंत कथायें प्रचलित हो गई थी। किसान आपस में बतियाते, "सुना, पुलिस को चरणसिंह ने चकमा दे दिया। पुलिस जब उन्हें पकड़ने गई तो पांच पांच चरणसिंह एक साथ नजर आये। कौन सा चरणसिंह असली है, कौन सा नकली, यही समझना कठिन हो गया। जब तक पुलिस कुछ सोचे, वह 'राम-रहीम' कहकर गायब हो जाते।"

एक दंत कथा के अनुसार, खेतों में चरणसिंह को घेर लिया और पुलिस ने उन्हें हथकड़ी पहनानी चाही। चरणसिंह हाथी की तरह विराट रूप में खड़े हो गये। ऊंचाई इतनी कर ली कि चेहरा ही नजर नहीं आये। हाथ इतने लम्बे हो गये कि बरगद की शाखाओं की तरह झूलने लगे। इस विकराल रूप को देखकर सिपाई भयभीत हो गये और वे चीखकर भाग छूटे।

ऐसी चर्चाओं का कोई अन्त न था। प्रत्येक गांव में अलग अलग कहानी जोड़ ली गई थी। हिन्दू उन्हें देवता तो मुसलमान कोई फरिश्ता करार देने पर तुले हुए थे। तब उनके दर्शन करने को वे लालायित हो उठते।

उधर चरणसिंह ने जब देखा कि पुलिस ने अपना जाल व्यापक रूप से फैला रखा है तो वे दिन में किसी खेत में पड़े रहते। सूर्यास्त के बाद एक गांव से दूसरे गांव में जाते रहते। गांव में

वे ऐसा घर तलाशते जहां वे सुरक्षित रूप से रात भर सो जायें और पेट भर खाना खा लें। सुबह होने से पूर्व ही वह दूसरी जगह के लिए निकल पड़ते। दिन में उन्हें घर में रखने में अधिकांश डरते थे।

एक दिन ज्यों ही शाम को वे एक घर में पिछले दरवाजे से घुसे, देखा आंगन में पुलिस बैठी है। अब क्या करें। पीछे भागना भी खतरे से खाली नहीं था। तब वह तुरन्त जानवरों के बीच जाकर छुप गये। पुलिस को शायद भेद लगा था कि चरणसिंह यहां आयेंगे। वह रात भर मकान के चारों ओर घात लगाकर बैठी रही। मकान मालिक ने चरणसिंह को देख लिया था। परिवार के किसी भी सदस्य को खबर किये बिना वह उन्हें कुछ रोटियां दे आया। चरणसिंह ने लेटे लेटे वे रोटियां खाकर अपनी भूख मिटाई। तब एक छोटी बाल्टी में पानी रख दिया गया। मुंह अंधेरे ही पुलिस उन्हें दूसरे घर में गिरफ्तार करने चली गई। घरके मालिक ने, जो चरणसिंह के प्रति अति विश्वसनीय था, कपड़े में लपेटे चार-पांच रोटियां लाकर देदी। पीछे के दरवाजे से चरणसिंह अन्तर्धान हो गये। ऐसे वाकये कई बार हुए।

भारत छोड़ो आंदोलन चरम सीमा पर था। छुपते छुपते रहना चरणसिंह के स्वभाव में न था। और एक दिन वे गांव की सभा में भाषण करने पहुंच गये। आसपास के गांवों से काफी भीड़ एकत्रित हो गई। सारे प्रयासों के बावजूद पुलिस को जानकारी मिल गई। भाषण शुरू होने के थोड़ी देर बाद ही जनता ने देखा कि सभा-स्थल को पुलिस ने घेर लिया है। विशाल और उत्साही भीड़ के सामने पुलिस की संख्या नगण्य थी। सहसा ही जनता पुलिस के विरुद्ध नारे लगाने लगी। 'चरणसिंह जिन्दाबाद' का जय घोष गूंज उठा। गांवों के नवयुवकों ने चरणसिंह के चारों ओर हाथ बाँधकर अभेद्य दीवार बना ली। उस समय गिरफ्तारी की जाती तो वहां खून बह जाता। यही सोच पुलिस के सिपाई एक ओर खड़े हो गये। उनका इरादा था कि भीड़ छंटने और भाषण समाप्त होने पर गिरफ्तारी होगी। चरणसिंह अपना भाषण जारी रखे हुए थे। उसी बीच किसी बात पर जनता ने जोर से तालियां बजाई। एक कोने में काफी युवक नाचने लगे। पुलिस का ध्यान उधर गया। योजना के तहत चरणसिंह समीप खड़े घोड़े पर तुरन्त सवार हो गये और छू मंतर हो गये। नाचती-कूदती भीड़ ने पुलिस को रोके रखा।

इस घटना के बाद पुलिस बहुत बौखला गई थी। अधिक संख्या में पुलिस लगाकर गांवों को घेरा जाने लगा। गांव वालों की पिटाई भी की गई। तभी 23 अगस्त को चरणसिंह ने गिरफ्तारी दे दी। अबकी बार उन्हें 15 माह की सजा सुनाई गई जो अब तक की सबसे लम्बी अवधि थी। परिवार के सामने पुनः आर्थिक संकट दस्तक देने वाला था। यद्यपि परेशान गायत्री देवी ने कुछ पूंजी जमा करली थी। लेकिन भैंस का खर्चा भी बढ़ गया था। यही फक्कड़पन था। जब पैसे हाथ में आते तो अन्य जरूरतमंद की भी सहायता कर देते। लेकिन जेल में होते परिवार को ही कठिनाई होने लगती। और यह उस समय ही नहीं, पूरी जिन्दगी यही सिलसिला चलता रहा। कुछ दिन पहले गायत्री देवी ने टोका भी था, "घर के लिए आप कुछ बचने नहीं देते। किसी दिन जेल चले जाओगे, हमें परेशानी होगी।"

कोई उत्तर न देकर कबीर का पद्य गाने लगे-

"मन लाग्यो मेरा यार फकीरी में।
जो सुख पाओ राम भजन में सो सुख नहीं अमीरी में।
भला-बुरा सब सुन लीजे, कर गुजरान गरीबी में।
प्रेम नगर में रहिन हमारी, भली बनी आई शबुरी में।
हाथ में कुंडी, बगल में सोटा, चारों दिशा जगीरी में।
आखिर यह तन खाक मिलेगा, कहां फिरत मगरुरी में।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, साहिब मिले सबुरी में।"

और गाते गाते ही वास्तव में गायत्री देवी के आगे नाचने लगे। सभी बच्चे हंसने लगे। नन्हा

अजित मां का पल्लू पकड़े, अपने नाचते हुए कबीर बाप को निहार रहा था। हवाला कांड, चारा कांड, प्रतिभूति घोटाला कांड और न जाने क्या क्या? उस दिन दिल्ली की एक अदालत के न्यायाधीश ने जब इन बदमाश राजनीतिज्ञों पर वास्तविक टिप्पणी की तो ऐसा लगा, जैसे चरणसिंह तो किसी न किसी रूप में आज भी जीवित हैं। लेकिन इस टिप्पणी पर तिलमिलाने वाले ऐय्याशी नेताओं ने कभी सोचा कि आखिर उनकी यह दुर्गति क्यों हो रही है। चुनावों के लिए तुम्हें ही धन चाहिए? चरणसिंह ने भी तो चुनाव लड़े थे। लेकिन इनकी भूख का तो कोई अन्त ही नहीं है। तब समझ में आता है कि क्यों चरणसिंह को ये लोग आगे नहीं आने देते थे? अब तो कोई टोकने वाला नहीं बचा।....बहरहाल....।

बात तो चरणसिंह के पुन: जेल जाने की चल रही थी। जेल की ऊंची दीवारों के पीछे भी वे खेत और किसान को भुला नहीं सकते थे। राजनैतिक बंदियों में आपस में बहस होती। देश की आजादी की धुंधली तस्वीर अब बनने लगी थी। आजादी का स्वरूप क्या होगा, इस पर घंटो चर्चा होती। चरणसिंह कहते, "देश का किसान सदियों से पीड़ित है। हर आने वाले शासक ने उसे लूटा है। अंग्रेजों ने गांवों के कुटीर धंधे समाप्त करके, खेती पर ओर अधिक भार बढा दिया है। इसीलिए गांवों में गरीबी का विकराल रूप है। असली भारत यही है। यदि इनकी स्थिति में हमने सुधार नहीं किया तो आजादी का क्या मतलब होगा?"

हमारे देश के स्वतंत्रता संग्राम की अजीब कहानी है। गांधीजी, सुभाष बोस, पंडित नेहरू से लेकर क्रांतिकारियों तक, सबने अपने अपने तरीके से संघर्ष किया। किसी भी नेता के दिमाग में आजादी के बाद की रूपरेखा क्या होगी, स्पष्ट नहीं थी। दूसरे शब्दों मे , स्वतंत्रता की लड़ाई किसी विचारधारा पर आधारित नहीं थी। मुख्य प्रश्न यही था कि कैसे भी अंग्रेज देश छोड़कर चले जायें। बाकी क्या करना है, यब सब भविष्य पर छोड़ दिया गया। भगतसिंह जैसे क्रांतिकारियों को बाद में समझ में आया कि क्रांति तो वस्तुत: जनता द्वारा ही सफल होती है, कुछ गिने-चुने नवयुवकों द्वारा कुछ लोगों को मारने से क्रांति नहीं होती। लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी थी। इस मुद्दे को गौण रखने के कारण ही शायद कांग्रेस को व्यापक समर्थन मिला। कांग्रेस एक पार्टी नहीं, अपितु एक प्लेट फार्म था, जहां प्रवेश कर आजादी के संघर्ष में आसानी से सम्मिलित हुआ जा सकता था। लेकिन इससे हानि यह हुई कि अंग्रेज जाने के बाद सिर्फ सता-परिवर्तन हुआ, व्यवस्था नहीं बदली। इसीलिए चरणसिंह जैसे व्यक्ति को उम्र भर कांग्रेस या अन्य पार्टियों के साथ संघर्ष करना पड़ा।

जेल की बन्द दीवारों में सोचते सोचते वे गांव, किसान और खेत में पहुंच जाते। तब सहसा ही बोल उठते, "गांव का आदमी कितना तकलीफ में जीता है?" सुनने वाले मजाक करते-

"लो, चरणसिंह तो पहुंच गये खेतों में।" तब वे कहते, "क्या करूं? मिट्टी और पसीने से सने धरती पुत्रों को भूल ही नहीं सकता।" और यह जेल में ही नहीं, बाद में भी होता रहा। इस धरती पुत्र के लिए तो वे बार बार सता को त्यागने को तैय्यार हो जाते। जो आग भीतर लगी थी, वह कभी शांत नहीं हुई। जो करना चाहते थे, सत्ता लोलुप नेताओं ने करने नहीं दिया। तब वे दूसरी तरफ भागते। वहाँ तो और भी बुरा हाल था। इसी भागमभाग में तो वे रहे, जिसे पेशेवर नेताओं ने दल-बदल की संज्ञा दी।

नवम्बर 1943 में चरणसिंह जेल से छूटे। आयु में चालीस के आंकड़े को पार कर चुके थे। लेकिन आयु से अधिक प्रौढता उनके विचारों में आ चुकी थी। वे बार बार कहते, "इस देश की 80 प्रतिशत जनता गांवों में रहती है। हमारा प्रथम कार्य इस विशाल जन का मंगल करना होना चाहिए।" यह सब जेल में किये गये मनन का परिणाम था। जेल के साथियों के साथ बहस करने के कुछ कटु अनुभव भी थे। उन्हें दु:ख होता कि कांग्रेसी नेता गांव और किसान की बातें सुनना भी नहीं चाहते। बस किसी तरह सत्ता परिवर्तन हो जाये और वे अंग्रेज की जगह स्वयं ले लें। इससे पूर्व 1939 में धारा सभा का रूझान भी वे देख चुके थे। उन्होंने प्रस्ताव पेश किया था कि

प्रशासनिक नौकरियों में किसानों की संतान को पचास प्रतिशत आरक्षण दिया जाये। उनके प्रस्ताव का एक प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता ने मजाक उड़ाते हुए कहा था, "अरे भाई चरणसिंह, यदि तुम्हारे इस प्रस्ताव को मान लिया जाये तो फिर गांव की खेती कौन करेगा?" चरणसिंह ने उत्तर दिया था, "जब तक प्रशासन के साथ गांव का बच्चा नहीं जुड़ेगा, तब तक स्वराज आकर भी लुटा लुटा सा रहेगा।" वह प्रस्ताव पास नहीं हुआ था। अब उन्हें यकीन हो गया था कि अंग्रेजों के जाने के बाद भी उनका संघर्ष समाप्त नहीं होगा। जेल में विभिन्न नेताओं के साथ विचारों की टकराहट इस बात का प्रमाण थी। उच्च वर्ग के नेताओं के कटाक्ष भी सुनने को मिले थे-"भाई चरणसिंह, हर समय गांव की बात करते रहते हो, गांव तो गांव ही रहेंगे।" यह उनके के लिए एक चुनौती थी। गांधीजी के लेख 'यंग इंडिया' और 'हरिजन' में वे पढ़ते रहते थे। गांधीजी के इस वाक्य से भी उन्हें पीड़ा हुई थी कि अधिकांश को तो गरीब रहना ही है।

जेल से बाहर आने पर तो आराम कहां? कांग्रेस का काम तो था ही, परिवार की गाड़ी भी पटरी पर लाने का सवाल था। पीछे छूट गई वकालत को फिर पकड़ा। तभी उनका मुन्शी एक केस लेकर आया। एक धनाढ्य व्यक्ति का मुकदमा था। वकील चरणसिंह ने सारे तथ्यों की जानकारी ली। फिर कागजात मुन्शी की ओर बढ़ाते हुए बोले, "यह केस मैं नहीं लूंगा।"

विस्मित हो मुन्शी उनके चेहरे की ओर देखने लगा। कुछ कहना चाहता था किन्तु चरणसिंह की तेज आंखों को देखकर चुप ही रहा। वे कचहरी चले गये। मुन्शी ने गायत्री देवी से कहा, "कैसे आदमी हैं? मैं एक केस लाया था। ले लेते तो खूब पैसे मिलते। घर की हालत भी नहीं समझते?"

आर्थिक बोझ से दबी गायत्री देवी ने पूछा, "तो लिया क्यों नहीं?"

"वकील साहब ने स्पष्ट इन्कार कर दिया। आप ही शाम को कहकर तो देखना। मैं आज आज रोक लेता हूँ।" मुन्शी की सलाह थी।

शाम को चरणसिंह कचहरी से आये। बच्चों से शरारत करने लगे। बढिया मूड देख गायत्री देवी बोली, "वह मुकदमा ले लेना चाहिए था। अच्छा पारिश्रमिक मिल रहा है। आप घर की स्थिति नहीं जानते?"

"जानता हूँ। यह भी जानता हूँ कि उस मुकदमें को लेने में पैसे भी खूब मिलते। लेकिन केस झूठा है। इसलिए मैं पैरवी नहीं कर सकता।" उन्होंने अपना फैसला सुना दिया। "लेकिन आपका पेशा तो मुवकिल की पैरवी करना है। सच्चा है या झूठा है, इसका फैसला करना तो अदालत का काम है।" गायत्री ने तर्क दिया।

"मेरा ऐसा पेशा नहीं है।" उन्होने बात को समाप्त करने के लिए कहा। तब गायत्री देवी की ओर देखा। वे गंभीर लग रही थी। ऐसे अवसर पर भीतर बैठा कबीर कैसे चुप रहता। वे मुस्कराये और फिर वही कबीर...

"सुवटा डरपत रहु भाई, तोहिं डराई देत बिलाई।
तीनि बार रूंधै इक दिन में, कबहुंक खता खवाई॥
या मंजारी मुराध न मानै, सब दुनियां डहकाई।
राणां-राव रंग कौं व्यापै, करि करि प्रीति सवाई॥
कहत कबीर सुनहु रे सुवटा, उबरै हरि सरनाई।
लाषौं माँहिं तैं लेत अचानक, काहू न देत दिखाई॥"

बच्चे माया और जीवन के इस सम्बन्ध को क्या समझते। लेकिन पिता को गाते देख वे हंस पड़े। चिंता युक्त गायत्री देवी के चेहरे पर भी मुस्कान आ गई। चरणसिंह ने पत्नी के कंधे पर हाथ रख कर रहा, "मेरे रहते तुम चिंता मत करो। हमें खाने भर को भगवान अवश्य देंगे। यह परीक्षा का समय है। चरणसिंह को चरणसिंह ही रहने दो।" गायत्री देवी इतना ही कह सकी, "बच्चों का भी ध्यान रखना है। पता नहीं तुम कब जेल चले जाओ।"

कुछ दिनों बाद महायुद्ध समाप्त हो गया। युद्ध के मोर्चे पर अंग्रेज विजयी रहे। लेकिन आर्थिक

मोर्चा तहस-नहस हो गया था। यह जीत की भी हार थी। इन्हीं दिनों कस्तूरबा गांधी का देहांत हो गया था। मेरठ में उनकी स्मृति में एक अस्पताल स्थापित करने का निश्चय किया गया। पंडित सीताराम की अध्यक्षता में एक कमेटी बनाई गई थी। कमेटी अपने अभियान में असफल साबित हुई। तब सभी प्रमुख कांग्रेसी नेता चरणसिंह के पास आये।

सभी ने एक स्वर से चरणसिंह से अनुरोध किया, "आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी इस पुनीत कार्य को पूरा नहीं कर सकेगा। आप ही जिम्मेदारी संभालें।" गांधीजी के प्रति उनके हृदय में असीम श्रद्धा थी। 'बा' के नाम अस्पताल बने और प्रारम्भिक दौर में ही असफलता! यह तो एक चुनौति थी। उन्होंने इसे स्वीकार किया। चन्दा एकत्रित करने का अभियान प्रारम्भ किया गया। शीघ्र ही उन्होंने 63 हैंजार रुपये एकत्रित कर लिये। मोदी नगर के एक उद्योगपति कस्तूरबा अस्पताल में अपनी माताजी के नाम से कमरा बनाना चाहते थे। इसके लिए उद्योगपति का प्रस्ताव था कि चरणसिंह अपनी इच्छा से चन्दे की रकम जो चाहें बतलादें। कोई भी दूसरा उनकी जगह होता तो इतनी मोटी रकम को हाथ से जाने नहीं देता। लेकिन चरणसिंह का उतर था, " 'बा' के नाम पर अस्पताल बन रहा है। किसी अन्य दान दाता का नाम उचित नहीं रहेगा। यह तो आम जनता के सहयोग से ही बनेगा।"

जैसे कांग्रेस कमेटी का दफ्तर बना, वैसे ही अस्पताल बना। जनता ने जी खोलकर चन्दा दिया। एक एक पाई का हिसाब रखा गया। सार्वजनिक जिम्मेदारी के सामने व्यक्तिगत जिम्मेदारी भूल जाते। घर के खर्चे में किफायत शुरू हो गई क्योंकि ऐसे समय वकालत फीकी पड़ जाती। बेटियां जवान और सयानी हो चुकी थी। साल में एक बार से अधिक कपड़े नहीं सिलाये जाते। दो जोड़ी से अधिक होने नहीं चाहियें।

बेटियां अपनी मां से अनुरोध करती, "अम्मा हमें एक एक, नई साड़ी ला दो।"

गायत्री देवी झुंझलाकर कहती, "मेरे पास पैसे दे रखे हैं न तुम्हारे पिताजी ने? कहां से लाकर दूं। जाओ, उन्हीं से मांगो।"

बार बार मां के इस उत्तर से बेटियां खीज उठती। एक दिन उन्होंने तैय किया, "ठीक है, हम आज पिताजी से बात करेंगी।" निकट खड़े अजित ने कहा, "एक ड्रेस मैं भी सिलाऊंगा।" सभी बहनों ने उसकी ओर देखा। उनके एक युक्ति समझ में आई। तब यह योजना बनाई गई कि अजित को ही पिताजी के पास भेजा जाये। वह सबकी एक एक ड्रेस के लिए कहेगा। मां गायत्री देवी यह सुन मन ही मन मुस्करा रही थी।

उस दिन चरणसिंह घर लौटे तो जैसे व्यस्ततम थे। आते ही सीधे अपने कमरे में चले गए। हिसाब-किताब की फाइल में खो गये। बच्चों के निर्णयानुसार अजीत को पिताजी के पास जाना था।

अजित ने कमरे में झांककर देखा, पिताजी अपनी मेज पर लिखने में व्यस्त हैं। उसकी हिम्मत नहीं हुई अन्दर जाने की। वह मुंह लटकाए बहिनों के पास लौट आया। मां ने बेटे का जब यह हाल देखा तो हंसी रोक न सकी। उन्होंने तुरन्त साड़ी का आंचल मुंह में दबाया और दूसरी ओर खिसक गई। सोचा, हंसने से इनकी योजना में विघ्न पड़ेगा। सभी बहिनें भी अजित को देखकर धीरे से हंस पड़ी। अब कौन जाये? सबसे बड़ी ने चुनौति उछाली, "जो अपने आपको पिताजी की लाडली समझती है, वही जाये। उसकी बात को नहीं टालेंगे।"

सबने एक दूसरी की आंखों में झांका। सभी ने बारी बारी से दावा किया, "पिताजी तो सबसे अधिक मुझे प्यार करते हैं....।"

"तो जाओ, तुम्हीं जाओ न!" जब यह कहा जाता तो सभी पीछे हट जाती। नये कपड़े सिलवाने की ललक तो सभी के थी। तब सीनियरटी में नम्बर दो, वेदवती आगे आयी, "मैं जाती हूं।" सभी खामोश! वेदवती को कमरे की ओर ठेलने लगी। साहस करके वेद कमरे में चली गई। पिताजी के पास दुबके कदमों में जाकर बैठ गई।

चरणसिंह ने फाइल से नजर उठाकर देखा। स्नेह से पूछा, ''आओ बेटा, कैसे आना हुआ?'' वेदवती कुछ कहना चाहती थी लेकिन शब्द ही नहीं निकल पा रहे थे। उसे लगा, जैसे वह अपने पिता के नहीं, किसी कर्मयोगी महात्मा के सामने बैठी है। उसके मुंह से इतना ही निकला, ''कुछ नहीं पिताजी, यों ही आ गई।'' और वह झट से बाहर आ गई। प्रतिक्षारत बहिनों की आंखें पूछ रही थी, ''कहो, क्या हुआ?''

वेदवती ने हाथ हिला कर संकेत किया, ''कुछ नहीं। मैं नहीं कह सकती।''

''अरे...रे....रे..? सभी ने एक साथ विस्मय प्रकट किया। तब दूर बैठी मां हंसी नहीं रोक सकी। एक ऋषि क्या दे सकता है, सिवा आशीर्वाद के। उस दिन के बाद कई दिनों तक यह मांग का विषय जैसे समाप्त हो गया। बेटियां समझ गई कि इतना आसान नहीं है पिताजी को कहना। पिताजी तो उस समय खोये रहते देश की आजादी के सवाल पर, नंगे-भूखे, किसान-मजदूरों की हालात सुधारने पर, जातिवाद और भ्रष्टाचार को मिटाने के संकल्प पर। इन सब में घर की आवश्यकताएं तो कहीं दूर कोने में छुपी हुई प्रतीत हो रही थी।

द्वितीय महायुद्ध के बाद गोराशाही की आर्थिक स्थिति चौपट हो चुकी थी। भारत छोड़ो आन्दोलन ने एक जलजला पैदा कर दिया था। अब अंग्रेज समझने लगे कि भारत जैसे विशाल देश पर अधिक दिनों तक शासन नहीं किया जा सकेगा।

1946 में प्रान्तीय विधान सभाओं के चुनाव हुए। चरणसिंह अपने क्षेत्र से भारी मतों से विजयी हुए। चुनाव के लिए भी किसी धनाड्य व्यक्ति से उन्होंने चन्दा नहीं लिया। मजदूर-किसान, साधारण जनता ने उन्हें तन-मन-धन से सहायता दी।

लेकिन इस समय तक अंग्रेज देश में साम्प्रदायिक-आग लगाने में सफल हो चुके थे। इसका अनुभव चरणसिंह को गांवों में घूमते और मेरठ में रहते हो चुका था। उन्हें 1942 और 46 में अन्तर स्पष्ट नजर आ रहा था। सन् 42 के आंदोलन में रात को वे किसी भी घर में रह सकते थे। कभी जाति या सम्प्रदाय की चर्चा भी नहीं होती। उस क्षेत्र में वे गांधी के नाम से विख्यात हो चुके थे। अब तो जैसे हवा तेजी से पलट रही थी। मुस्लिम लीग के जहरीले नारों से परिचित हो चुके थे। उन्हें बहुत दु:ख हो रहा था। गरीब को गरीब से लड़ाने की साजिश। लेकिन इस बात का उन्हें संतोष था कि उनके स्वयं के क्षेत्र में ऐसा नहीं था। हिन्दू, मुसलमान, दलित या उच्च वर्ग सभी उन पर विश्वास करते थे। यह उनके कबीर होने का कमाल था। मेरठ में आने जाने वाले उनके घर में रुकते। इनमें न हिन्दू का सवाल था, न मुसलमान का। जब वे जीते थे, जनता ने उन्हें सिर आंखों पर बैठा लिया था। जो भी उनके पास मुकदमें थे वे सब अपने साथी वकील को सौंप चुके थे। यह वकालत को अंतिम विदाई थी। इसी के साथ उनसे मेरठ शहर भी छूटने वाला था। साथ काम करने के लिए उन्होंने मुन्शी को धन्यवाद दिया। मुन्शी की आंखों में उस दिन आंसु आ गये थे। चरणसिंह ने उसे बाँहों में भर कर कहा, ''कोई देश तो नहीं छोड़ रहा हूं। क्या तुम चाहते हो कि मेरठ से बाहर ही न निकलूं?''

मुन्शी गद्‌गद् हो उठा। ''आप तो देवता हैं। मैंने ऐसा कोई वकील नहीं देखा।'' जैसे उसका गला रूंध गया।

''भाई, वकालत तो मेरी मजबूरी थी, शौक नहीं। इसीलिए तो मैं एक असफल वकील रहा।

और आने वालों का तांता लगा रहा। जिस जनता के लिए वे भूखे रहे, एक ही कपड़ों में कई दिन तक खेतों में पड़े रहे, उस जनता ने भी जैसे उनका कर्जा उतार दिया। लेकिन वे तो जनता का कर्ज स्वयं पर मान रहे थे। ''इतने प्यार से विजयी बनाया है, अब इनके लिए कुछ नहीं कर सका तो मैं कहीं का नहीं रहुँगा।'' आने वाले प्रत्येक से उन्होंने यही कहा।

12.

लखनऊ का माहौल खुशनुमा हो चुका था। सात साल के पश्चात् कांग्रेस सरकार आई थी। जय हिंद और भारत माता की जय के नारों के साथ कांग्रेस के सदस्यों ने विधान सभा में प्रवेश किया था। चरणसिंह तो 1939 में ही 'भूमि उपयोग बिल' पेश करने के कारण प्रसिद्ध हो चुके थे। नये साथियों ने उनका स्वागत किया। पंडित गोविन्द बल्लभ पंत के नेतृत्व में सरकार का गठन किया गया। इसमें 6 केबीनेट मंत्री तथा 12 पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी या संसदीय सचिव बनाये गये। चरणसिंह को राजस्व मंत्री रफी अहमद किदवई के साथ संसदीय सचिव बनाया गया। यह अप्रेल 1946 की बात है। उन दिनों सरकारी नियम था कि सरकार के मंत्री गर्मो में पहाड़ पर जाते थे। चरणसिंह का पेट तो खराब रहता ही था। पहाड़ पर जाने का उन्हें यह फायदा भी हुआ। मई में पूरा मंत्रीमंडल नैनीताल छुट्टियां बिताने चला गया था।

चरणसिंह नैनीताल में जाते ही एक बार तो बीमार पड़ गये। तब डाक्टरों ने उन्हें पूर्ण विश्राम की सलाह दी। उस दिन रघुकुल तिलक ने अपने निजी सचिव तिलकराम शर्मा को चरणसिंह के स्वास्थ्य की जानकारी लेने भेजा। तिलकराम मेरठ जिले के रहने वाले थे। चरणसिंह से अत्यंत प्रभावित भी थे। यह स्वयं भी चरणसिंह से सम्पर्क करना चाहते थे। नमस्कार करने के बाद उन्होंने चरणसिंह को अपना परिचय दिया। वे अपने बिस्तर पर आराम कर रहे थे। समीप पड़ी कुर्सी पर बैठने का संकेत कर पूछा, "आपका नाम?"

"जी, तिलक राम शर्मा।"

"कहां के रहने वाले हो?"

"जी, मेरठ जिले की बागपत तहसील का।"

"कौन सा गांव है?"

"जी, खेकड़ा कस्बे के निकट एक छोटा सा गांव है।" तिलकराम शर्मा ने सोचा होगा कि छोटे छोटे गांवों को क्या जानते होंगे। तभी चरणसिंह ने पूछा,

"गांव का नाम भी तो बताओ भाई।" उनके चेहरे पर मुस्कान तैर गई।

"जी, संकरोद है।"

"यह बताओ न।" चरणसिंह फिर मुस्कराये। "मैंने चुनाव-प्रचार के दौरान संकरोद का दौरा किया है। यह यमुना के किनारे पड़ता है।" प्रायः ही, यह उनकी तीक्ष्ण नजर का कमाल होता कि वह देखते ही अनुमान लगा लेते कि अपरिचित व्यक्ति अमुक क्षेत्र का हो सकता है। तिलकराम का अब संकोच जाता रहा। उन्होंने आने का कारण बताते हुए पूछा,

"अब आपका स्वास्थ्य कैसा है?"

"ठीक हूं। रघुकुल तिलकजी को धन्यवाद देना।" तिलकराम उनसे बहुत प्रभावित हुए।

उन्हीं दिनों यू. पी. में अनाज का गंभीर संकट पैदा हो गया था। खाद्य मंत्रालय मुख्यमंत्री पंत के पास ही था। मंत्री-मंडल की बैठक में तैय किया गया कि सरकार के सभी सदस्य अपने अपने क्षेत्र का दौरा करें और स्थिति पर कड़ी नजर रखें। चरणसिंह अब और समय तक नहीं रुके। वे अपने क्षेत्र के लिए चल पड़े। कड़ाके की गर्मी पड़ रही थी। गांव गांव घूमकर स्थिति का जायजा लेने लगे। अनाज के सही वितरण हेतु प्रशासन को निर्देश दिये। जनता को यह प्रथम अनुभव था। सरकार का सदस्य जनता के बीच खड़ा था। जनता की आंखों में खुशी के आंसु आ जाते। चरणसिंह तब अन्दर तक हिल उठते। कितना विशाल हृदय है इन लोगों का। भूख में भी सुख। तब वे लोगों की पीठ थपथपाकर कहते, "किसी को भूखा नहीं मरने दिया जायेगा। मैं रोटी खाऊँगा तो तुम्हें भी मिलेगी।" और तब, उन्होंने प्रशासन को दौड़ा दिया था गांव गांव में। राशन की व्यवस्था ठीक होकर ही रही।

एक गांव से दूसरे गांव में जाने के लिए वे बैलगाड़ी की सवारी करते। दूसरे गांव में पहुंचकर अगले गांव के लिए वहाँ से दूसरी गाड़ी करते। गाड़ी में जितने आदमी आ सकते थे, उनके साथ बैठ जाते। जिस गांव में बैलगाड़ी की व्यवस्था शीघ्र नहीं हो पाती, वह पैदल ही अगले गांव की ओर चल पड़ते। अन्य कोई साधन नहीं था। मई जून की जान लेवा गर्मी। पैदल चलते समय वे इतना तेज चलते कि अन्य लोगों को लगभग दौड़ना पड़ता। दो तीन दिन से जिला मुख्यालय आते। उन दिनों सोते सोते रात के 12 बज जाते लेकिन सुबह खड़े होने का वही 4 बजे का समय। दैनिक कार्यों से निवृत्त हो, नहा धोकर वे तख्त पर बैठ जाते। अखबार पढते या कोई पुस्तक। तभी मुंह अंधेरे ही आने जाने वालों का तांता लग जाता। अधिकारियों को वे निर्देश देते। तब उनकी बीमारी जैसे कोसों दूर हो गई थी। पहाड़ से आने के बाद जैसे नई स्फूर्ति आ गई थी। उनकी अदम्य जीजिविषा का यह प्रमाण है कि जब भी कोई जन कार्य सामने होता, तो वे सब कुछ भूलकर उसमें जुट जाते। उस समय उन्हें अपने स्वास्थ्य की कभी चिंता नहीं रही। भले ही बाद में फुर्सत मिलने पर वे अस्पताल में जा पहुंचते।

गायत्री देवी ने एकाध बार टोका भी, "अभी तो बीमारी से उठे हो, थोड़ा आराम भी कर लिया करो।" तब उनका कबीर मुखर हो उठता। वे कहते "इस माटी के शरीर की उपयोगिता भी क्या है? इससे जितन काम लो, उतना ही अच्छा है। फिर तो माटी में मिल जाना है।"

"अच्छा बाबा, शुभ-शुभ बोला करो।" गायत्री देवी डर जाती। तब वे हँस पड़ते। तब तक कोई न कोई बैठक में आ जाता। उस समय कुछ साम्प्रदायिक घटनाएं भी हो चुकी थी। यह सुनकर उनके द:ख का कोई अन्त नहीं था। ऐसे अवसर भी आये, जब इस तरह की संभावना होने पर वे घटनास्थल पर पहुंच जाते। दोनों समुदायों से कहते, "आपस में लड़ना हमारे मेरठ की शान के विरुद्ध है। ऐसा कभी मत करना भाई।"

लेकिन पूरे प्रान्त में मुस्लिम लीग जहर उगल रही थी। उन्हीं दिनों असेम्बली का अधिवेशन शुरू हुआ। उस दिन चरणसिंह के क्रोध का अंत नहीं था, जब मुस्लिम लीग के सदस्यों ने असेम्बली में पाकिस्तान के समर्थन में नारे लगाये। हल्की भाषा का खुलकर प्रयोग किया गया। मुस्लिम लीग के सदस्यों ने गर्व करते हुए भाषण किये, "हमने हिन्दुस्तान पर 800 साल तक राज्य किया है। अब भी करेंगे।" इन लोगों के भाषण सबको बुरे लगे। सदन में गहरा सन्नाटा छा गया। किसी भी कांग्रेसी सदस्य ने प्रत्युत्तर में बोलने का साहस नहीं जुटाया, और यह कायरतापूर्ण चुप्पी चरणसिंह को बेंध गई। वे अपमान की आग में जल उठे। तभी वे तपाक से खड़े हुए और कहना शुरू कर दिया; "भारत के बहुसंख्यक मुसलमान, मुसलमानों के शासन काल में धर्म-परिवर्तन से मुसलमान बने हैं। वे इसी धरती से पैदा हुए हैं। शासन आप लोगों ने नहीं, बल्कि विदेशी तुर्कों, खिलजी और मुगलों ने इस देश पर किया है। हिन्दू से बनें मुसलमानों को इन विदेशियों ने अपने राज्य या दरबार में किसी ऊंचे पद पर नहीं रखा। ये मुसलमान उसी तरह पीड़ित या गुलाम रहे, जैसे हिन्दू या दूसरी जातियां। इसलिए आपके गर्व करने लायक बात नही है। आप अलग नहीं हैं।"

लीग के सदस्यों को तब जैसे सांप सूंघ गया था।

तब विधानसभा ने 8 अगस्त 1946 को प्रस्ताव पास किया, "यह विधान सभा इस प्रदेश में जमींदारी प्रथा के उन्मूलन का सिद्धान्त स्वीकार करती है, जिसके अन्तर्गत राज्य और काश्तकारों के बीच जो बिचौलिये आते हैं, उनके अधिकार न्याय संगत मुआवजे के भुगतान द्वारा अधिगृहित किये जाएं और इस उद्देश्य से योजना तैयार करने के लिए सरकार को चाहिए कि वह एक समिति नियुक्त करे।"

राज्य सरकार ने इसका अनुसरण किया। राज्य की भू-स्वामी रैय्यत प्रथा के उन्मूलन की योजना तैयार करने के लिए मुख्यमंत्री की अध्यक्षता में एक समिति बनाई गई। राज्य सरकार ने इसके तुरन्त बाद ही 1 सितम्बर 1946 को आदेश जारी कर काश्तकारों और छोटे काश्तकारों के

कब्जे में जो जमीन थी, उसकी बेदखली पर रोक लगा दी। यू. पी. टेनेन्सी एक्ट 1939 में आवश्यक संशोधन किया गया और आदेशों को विधिसम्मत बनाया गया। बेदखली के स्थगन को कानून रूप दिया गया। इसके अनुसार पहली जनवरी 1940 को या उसके बाद अपनी जोतों से बेदखल किये गये किसानों को पुनः कब्जा दिलाया जाये। यह 14 जून, 1947 से प्रभावी हो गया था।

इन सबके पीछे चरणसिंह का दिमाग काम कर रहा था। उन्हें तो जैसे एक धुन लग गई थी कि कैसे शीघ्र से शीघ्र किसान को जमीदारें के चंगुल से छुड़ाया जाये। कार्य करने की अपार क्षमता थी। इन दिनों वे निरन्तर अठारह घंटे काम में जुटे रहते। मुख्यमंत्री पंत यह देख दंग रह गये। तभी गांव के सारे निवासी, अपनी अपनी जोतों के स्वामी घोषित कर दिये गये। अब उन्हें अधिकार था कि अपने कच्चे मकानों को पक्का कर सकते हैं। घर और दरवाजे के साथ लगी जमीन को सुधार-संवार सकते हैं। यह कानून अनुसूचित जातियों के लिए वरदान साबित हुआ। पहले उनकी आवासीय झौंपड़ियों पर उनका स्वामित्व नहीं था। जमींदार लोग जब चाहें उन्हें बेदखल करने की धमकी देते रहते और मनमानी बेगार लेते रहते। इस कानून को आगे चलकर जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार एक्ट 1950 में समाहित किया गया। इसमें यह भी जोड़ा गया था कि प्रत्येक ग्रामवासी घर के साथ लगी जमीन पर लगाये गए पेड़ों और कुओं का भी स्वामी होगा। इसके लिए उसे कोई मुआवजा नहीं देना था।

कर्मयोगी चरणसिंह, जब गांव और किसान के लिए जुटे हुए थे, तभी पूरे देश में हाहाकार मच गया। हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्यता चरम सीमा पर थी। अंग्रेज शासक अपनी धूर्त नीति में सफल हो चुके थे। देश के विभाजन का प्रस्ताव सामने था। चरणसिंह उस समय अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य थे। दिल्ली में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई। उसमें विभाजन का प्रस्ताव स्वीकार हुआ। केवल 58 सदस्यों ने प्रस्ताव के विरुद्ध वोट दिया। इनमें पुरुषोत्तमदास टंडन और चरणसिंह प्रमुख थे। और तब आया 15 अगस्त 1947, स्वतंत्रता का दिन।

स्वतंत्रता का महोत्सव मेरठ में मनाया गया। उस दिन चरणसिंह का दिल बिलख रहा था। उनकी आंखें सजल थी। भाषण देते हुए उन्होंने कहा, "एक ही वंश वृक्ष के भिन्न धर्मावलंबी भाइयों का विभाजन घातक सिद्ध होगा। दोनों को हमेशा संतप्त रखेगा।" उनकी यह बात कितनी सच साबित हुई।

उस कठिन दौर में वे चौकस रहे। कहीं साम्प्रदायिक दंगे न भड़क उठें। गांवों में घूमते समय वे मुसलमानों के घर गये। उन्हें देख बुजुर्ग मुसलमानों की आंखों में आंसु आ जाते। चरणसिंह भी भाव-विह्वल हो उनसे लिपट जाते। आंखों से झरना बह उठता। आपस में यह कैसा परायापन हो गया? साथ में खेले-पढ़े साथी, आज बेगाने से होकर आंखें फेरने लगे हैं। यह कैसी आज़ादी आई, जिसने एक देश के दो टुकड़े कर दिये।

और तब चरणसिंह का कबीर मुखर हो उठता। वे कहते हैं, "यह धर्म का झगड़ा नहीं, सियासत का स्वार्थ है। नहीं तो सब जानते हैं कि सबका खून और मालिक एक है। एक ही रंग का, एक ही गुण का। जिस जगह हमने जन्म लिया, वही धरती हमारी मां है। किसी के बहकाने से कोई भला अपनी मां को छोड़ता है?" क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, सब चकित थे। कई बुजुर्ग उन्हें समीप बैठा कर पूछते, "ऐसा क्या हो गया? तुम तो जानते होंगे।" इनको चरणसिंह गाकर समझाते,

"साधो, देखा जग बौराना।
सांची कहौ तो मारन धावै, झूंठे जग पतियाना।
हिन्दू कहत है राम हमारा मुसलमान रहमाना।
आपस में दोऊ लड़े मरतु हैं मरम कोई नहीं जाना।
बहुत मिले मोहि नेमी धर्मी प्रात करैं असनाना।
आतम-छोड़ी पषानै पूजैं तिनका थोथा ज्ञाना।

आसन मारि डिंम धरि बैठे मन में बहुत गुमाना।
पीपर-पत्थर पूजन लागै, तीरथ-बर्त भुलाना।
माला पहिरे टोपी पहिरै छाप-तिलक अनुभाना।
साखी सब्दै गावत भूले, आतम खबर न जाना।''

यह कितनी बड़ी बात थी कि चरणसिंह के कबीर को सुन सुन कर गांवों में सबका विश्वास जमने लगा था। एक संसदीय सचिव सरकार की ओर से गांव गांव में घूम रहा था। प्रशासन चुस्त था। कहीं कोई कमी रह जाये तो चरणसिंह को जबाव देना कितना कठिन था।

13.

बेशक देश के टुकड़े हो चुके थे; किन्तु कुछ करने का अवसर भी आया था। अपना देश, अपनी सरकार। गांव और गरीब की भयानक दुर्दशा वे देख चुके थ, भोग चुके थे। तभी सितम्बर 47 में स्वायतशासन तथा स्वास्थ्य विभाग में सचिव के रूप में उनके व्यक्तित्व की छाप पड़ चुकी थी। ईमानदारी और कर्मठता देख सहयोगी मंत्री उनसे ईर्ष्या करने लगे। यह स्वाभाविक था। एमर्सन ने लिखा है, ''प्रत्येक विशिष्ट प्रतिभा को ईर्ष्या रूपी दण्ड भोगना पड़ता है।'' और यह दण्ड चरणसिंह पर लागू हो गया था। विशिष्ट वर्ग के नेता जहां आजादी का उपयोग स्वयं को एक अलग जमात बनाने के रूप में कर रहे थे, चरणसिंह की नजर तो गांव पर टिकी हुई थी। वे उसमें रातदिन लगे भी रहते। बात का विषय भी हर समय गांव और किसान होता। तब ये लोग उनसे जल भुनकर आपस में बतियाते, ''क्या भूत सवार है इसके गांव का? यह कभी सुधरेगा नहीं।''

भृष्ट अधिकारी सामने आने से कतराते थे। अंग्रेज अफसरों के विरुद्ध ही चुप नहीं रहे तो अब तो स्वयं का राज आ गया। उन्हीं दिनों एक घटना घटित हो गई। बुलन्दशहर जिले की रामगढ़ रियासत को कोर्ट ऑफ वार्ड से बरी करने में उन्हें उच्च स्तर के भ्रष्टाचार की गन्ध मिली। इस सवाल को उन्होंने प्रभावशाली ढंग से उठाया। कोई सुनवाई नहीं हुई तो उन्होंने अपना त्याग पत्र मुखअयमंत्री के पास भेज दिया। पंतजी ने उन्हें बलाया। मुस्कराकर बोले, ''तुम्हें काम बहुत करना है।''

''लेकिन मैं बेईमानी सहन नहीं कर सकता।''

''मैं इस मामले को देखुंगा। तुम अपना त्यागपत्र वापस लो।''

इस घटना से दूसरे मंत्री चौकन्ने हो उठे। यह व्यक्ति बेईमानी पर कोई समझौता नहीं कर सकेगा। तब केबीनेट मंत्री उनके पास फाईल भेजने से कतराने लगे। वे लगभग व्यर्थ में समय व्यतीत कर रहे थे। अखबारों की रिपोर्ट पढ पढकर उनका जी दुःखी हो रहा था। कांग्रेस की हिन्दु-मुसलमान के प्रश्न पर अपनाई गई नीति के वे विरुद्ध थे। फाईलें उनसे छुपाई जा रही थी। खिन्न होकर 20 जनवरी 1948 को पुनः इस्तीफा लिखकर वे घर आ गये। पंत उनकी मानसिकता को समझ रहे थे। उन्होंने बुलाकर कहा, ''तुम कुछ दिन रुको, मैं तुम्हें काम दूंगा।''

दस दिन बाद ही तो भयानक हादसा हो गया था। 30 जनवरी 1948 को गाँधीजी की हत्या कर दी गई। समाचार सुनकर चरणसिंह तो जैसे सब कुछ गंवा बैठे थे। अपनी सारी तकलीफ भूल गये। ''अब क्या होगा?'' यह प्रश्न बार-बार उन्हें कुरेद रहा था। उस दिन घर में, कमरे के कोने में, गांधी की तस्वीर के सामने बिलख बिलख कर फूट पड़े थे। परिवार के लिए यह एक असाधारण घटना थी। इतना दबंग व्यक्तित्व, पहाड़ सी मुसीबतों को झेलने वाला, बड़े से बड़े खतरे का सामना करने वाला, आज कैसे बच्चों की भांति कांप उठा। बहुत देर बाद, स्वयं को काबू में कर, गायत्री

देवी को कहा था, ''आज हम भारतीय दुनियां में मुंह दिखाने लायक नहीं रहे। मैं सोच भी नहीं सकता कि क्या कोई अपने बाप को भी मार सकता है? वह भी भारतीय संस्कृति में?'' बड़ी कठिनाई से वे साधारण स्थिति में आये। और फिर आंसु सूखे तो ऐसे कि वे और भी कठोर हो-गये- साम्प्रदायिकता के विरुद्ध, भ्रष्टाचार, कामचोरी और किसी भी गलत कार्य के विरुद्ध। गांधी के बलिदान का कर्जा जैसे वे इस रूप में चुकाने का दृढ़ संकल्प ले चुके थे।

मुख्यमंत्री पंत उनसे बेहद प्रभावित थे। इसीलिए मई 1948 में उन्हें मुखयमंत्री के साथ संसदीय सचिव बनाया और सूचना एवं न्याय विभाग का स्वतंत्र प्रभार दिया। तब कहीं वे आत्म सम्मान से कार्य करने लगे। उन्हें लगा कि जैसी कांग्रेस की बनावट है, पंत भृष्टाचारियों पर अंकुश तो नहीं लगा सकते किन्तु उन्हें भी अपना कार्य करने की छूट दे दी।

1948 से 51 तक, तीन साल वे मुख्यमंत्री पंत के सहायक रहे। यह काल उनकी नींव मजबूत करने का रहा। स्मरणीय है कि इस दौरान रेवेन्यू विभाग से उनका कोई सम्बन्ध नहीं था लेकिन पंत उनकी योग्यता पहचान, राजस्व और भूमि सुधार संबंधि कार्य में सहयोग ले रहे थे। पाठकों को जानकारी होगी कि भूमि सुधार के मामले में उत्तर प्रदेश ने पूरे देश को नेतृत्व दिया। और उत्तर प्रदेश को नेतृत्व दिया चरणसिंह ने। इस राज्य में जमींदारी या भूस्वामी-रैयत प्रथा जड़मूल से समाप्त कर दी गई। भूमि सुधारों के दायरे में कानून के प्रत्येक अंश का मसौदा इतनी अच्छी तरह से सोच-विचार कर तैयार किया गया था कि न्यायपालिका एक को भी रद्द नहीं कर पाई जबकि दूसरे कई राज्यों में ऐसा हुआ।

जमींदारी उन्मूलन समिति के चरणसिंह सदस्य थे। ग्रामीण समस्याओं पर चरणसिंह के विचारों और समिति के अधिकांश सदस्यों के विचारों में जमीन आसमान का अन्तर था। उन्होंने अपना एक ज्ञापन बनाकर समिति को पेश किया लेकिन समिति ने कोई ध्यान नहीं दिया। मुख्यमंत्री पंत समिति के अध्यक्ष थे। चरणसिंह को जब कोई उत्तर नहीं मिला तो उन्हें विचार हुआ कि पंत उनसे सहमत नहीं हैं। तब अगस्त 48 में फिर अपना इस्तीफा भेज दिया। पंत जी चौंके। उन्होंने चरणसिंह को लिखा, ''आप अपने विचार लिखकर भेंजें।'' तब उन्होंने मुक्यमंत्री को एक विस्तृत नोट लिखते हुए सुझाव दिया कि समिति की कम से कम सात सिफारिशों को तो तत्काल रद्द किया जावे। उनके नोट के मुख्य अंश इस प्रकार थे:-

एक-जमींदारी उन्मूलन समिति ने प्रस्तावित किया है कि मुआवजे का भुगतान सरकार 40 वर्षों में देय बॉडों के रूप में करे। हालांकि 90 प्रतिशत से अधिक मूल्य के बांड बेचे-खरीदे जा सकेंगे। मेरा सुझाव है कि इस परामर्श पर फिर से विचार किया जाये। इसके लिए उन्होंने अपने सुझाव पेश करे।

दूसरा-मेरी रायमें भूमि के क्रय मूल्य पर कोई सीमाबन्दी नहीं होनी चाहिए। दलील सिर्फ यह पेश की जाती है कि खरीददार अगर बाजार मूल्य चुकाने पर बाध्य होगा तो ठीक ढंग से खेती करने के लिए उसके पास बहुत कम पूंजी रह जायेगी। यह प्रस्ताव यूरोपीय और रूशी कृषि साहित्य से उधार लिया गया है। वहां 'पूंजी' शब्द का इस्तेमाल लगभग पूरी तरह मशीनरी के अर्थ में होता है। यहां, अपने देश में कुल नहीं तो सौ में से निन्यानवें मामलों में किसान को चाहिए सिर्फ एक जोड़ा बैल।

इस पर कठोर वास्तविकता यह है कि घोर आर्थिक दबाव में भी जमीन की वास्तविक कीमत क्षेत्रीय दर के मुकाबलने 40 से 50 गुना तक अधिक होती है। जबकि समिति का प्रस्ताव है कि उस दर से सिर्फ 12 गुना अधिक मूल्य चुकाया जाये। आज तो यह गुणवता बढ़कर कम से कम 175 हो गई है और कई मामलों में तो और भी ऊंची। भूमि का अत्याधिक मूल्यहास सौ तरह की चालबाजियों और कानून को झांसा देने की प्रवृतियों को जन्म देगा। उदाहरण के लिए, लोग जमीन को बिक्रीनामा के बजाय दानपत्र के जरिये खरीदने वाले के नाम कर देना चाहेंगे। हम संभावित दान उपहार को नियंत्रित या प्रतिबंधित तो नहीं कर सकते।

तीसरा-इसी प्रकार पट्टे की रकम की सीमाबन्दी नहीं होनी चाहिए। शोषण से बचाव की दृष्टि से समिति ने यह सीमा बंदी की है कि पट्टा देने वाला सरकार को चुकाये जाने वाले भूमिकर और उसके 50 प्रतिशत से अधिक किराये की रकम नहीं प्राप्त करेगा, लेकिन हमें नहीं भूलना चाहिए कि विधवायें, नाबालिग तथा अन्य अक्षम लोग ही पट्टा देने के अधिकारी होंगे और वे ऐसा इसलिए नहीं करेंगे कि दूसरों के श्रम का शोषण करना चाहते हैं, बल्कि इसलिए कि अपने खेतों की जुताई खुद करने में शारीरिक दृष्टि से अक्षम हैं। पट्टा देने के अधिकार की सीमाबन्दी ऐसे पट्टादाताओं के लिए व्यावहारिक और लाभप्रद नहीं होगी।

चौथा-इन पाबंदियों के हटा लिये जाने पर पंचायत का किसी व्यक्ति की भूमि से कुछ लेना-देना नहीं रहेगा। अच्छी से अच्छी जमीन को काफी गिरे हुए मूल्य पर बेचने पर अधिकार, चाहे स्थायी तौर पर या सीमित अवधि के लिए, एक बहुत बड़ी आर्थिक ताकत है। इसे हमारे ग्रामीण समाज की मौजूदा परिस्थितियों में किसी निर्वाचित निकाय को सौंप देने से काफी भ्रष्टाचार और विवाद पैदा होंगे।

पांचवा-जमींदारी उन्मूलन समिति कहती है कि स्वामित्व या संयुक्त हिस्सेदारी का दर्जा सभी शिकमी काश्तकारों को भी दिया जाना चाहिए, अपने कृषि क्षेत्र के लिहाज से वे चाहे काश्तकार के अधीन हों या जोतदार (मुखिया) के अधीन।

छठा-बड़े फार्मों पर खेती चाहे भूस्वामी के अधीन होती हो या काश्तकार के अधीन, उन्हें तोड़ दिया जाना चाहिए। 50 एकड़ से अधिक जो भी जमीन हो, उसे पहले तो लाभकारी बनाने के उद्देश्य से अलाभकर जोतों में तथा फिर लाभकारी क्षेत्र के भूमिहीनों में वितरित किया जाना चाहिए। रिपोर्ट में इस सुझाव पर चर्चा की गई और फिर इस आधार पर उसे रद्द कर दिया गया:

(क) इससे बहुत सारे किसानों में विरोध की भावना पनपेगी (ख) जमींदारों पर भारी मुसीबत आयेगी, जिनकी आमदनी में जमींदारी उन्मूलन के द्वारा हम कटौति कर ही रहे हैं, (ग) उपलब्ध क्षेत्र की लघुता के लिहाज से यह व्यवहारतः उपयोग नहीं है, (घ) इससे बड़ी संख्या में कृषि मजदूर विस्थापित हो जायेंगे, जिनके लिए उपयुक्त समय के भीतर वैकल्पिक रोजगार ढूंढ पाना सम्भव नहीं होगा।

बड़े फार्मों से निकले कृषि मजदूरों की बेरोजगारी वाली यह आखिरी दलील मन को नहीं के बराबर छूती है। अन्ततः यह पूंजीवादी कृषि व्यवस्था को जारी रखने की चिरौरी जैसी प्रतीत होती है, जिसे शायद कोई नहीं चाहता। दुनिया भर के कृषि अर्थशास्त्री इस बात से सहमत हैं कि बड़ी जोतों की अपेक्षा छोटी जोतें प्रति एकड़ उपज ज्यादा देती ही हैं, रोजगार भी ज्यादा देती हैं। अतः शोषण का भी अन्त करेगा राष्ट्रीय हित का यह स्पष्ट तकाजा है कि बड़े फार्मों को कूचकर जाना चाहिए।

सातवां-एक सुझाव कहता है कि 10 एकड़ से कम क्षेत्र की जोत अविभाज्य होगी। तो फिर,जो जोतें 10 एकड़ या इससे ज्यादा क्षेत्र में फैली हुई हैं, उनके बारे में क्या कहा जाये? अगर वे विभाजन योग्य हैं तो इसका मतलब है कि अलाभकर जोतें आगे भी अस्तित्व में आती रहेंगी, क्योंकि समिति के अनुसार 10 एकड़ से कम क्षेत्र की सभी जोतें अलाभकर हैं। ऐसी स्थिति में तो सुधर का उद्देश्य ही विफल हो जायेगा। मैंने सवा छः एकड़ की न्यूनतम सीमा रखी है। (भिन्न अंक पर मैं बल देता हूँ, क्योंकि सवा छः एकड़ 10 मानक बीघे के बराबर होती है। इसे हमारे किसान समझते हैं)। इसलिए 12.5 एकड़ से कम की जोत के अविभाज्य रहने से सभी जोतें सवा छः और साढे बार एकड़ के बीच अलग अलग आकार की होंगी। तो फिर अविभाज्यता की दृष्टि से कह सकते हैं कि मैंने समिति से ज्यादा ऊंचे आंकड़े दिये हैं। फिर भी ये आंकड़े मनमाने ढंग से नहीं दिये हैं। मैं लाभकर जोत उसे मानता हूं जो उत्पादन के किसी अविभाज्य तत्व के लिए रोजगार उपलब्ध करता हो; जैसे न्यूनतम कृषि उपकरण, यानी एक जोड़ा बैल, जिन्हें हर स्थिति

में किसान रखेगा ही तथा एक औसत किसान परिवार के लिए काम। तथ्यत: सवा छ: एकड़ अच्छी कृषि भूमि ऐसे परिवार को पूरा रोजगार दे सकती है, ठीक जैसे साधारण भूमि के मामले में साढे 12 एकड़ कृषि भूमि दे सकती है। फिर सवा छ: एकड़ की निचली सीमा हस्तांतरण के मामले में कम ही लोगों की स्वतंत्रता को सीमित कर सकती है।

अन्त में, सरकारी खेती पर जिस रिपोर्ट में विचार किया गया है, उसके बारे में मैं फिर से बहुत संशयशील हूं, हालांकि इसकी स्वैच्छिक प्रकृति को देखते हुए मैं इसका विरोध नहीं करता, क्योंकि प्रयोग करने में आखिर कोई हानि नहीं।''

पूरी समिति एक तरफ, चरणसिंह दूसरी तरफ। यहीं से चरणसिंह की आर्थिक लाईन भिन्न रास्ता दिखाती है। तभी उनके संघर्ष की शुरूआत भी होती है। उपरोक्त नोट ही यह स्पष्ट करता है कि क्यों अर्थशस्त्री चरणसिंह दिन रात अध्ययन में डूबे रहते थे। विद्यार्थी दिनों में तो विज्ञान और इतिहास, कानून पढा था। लेकिन इन सबको छोड़, किसान की आर्थिक दशा ने उन्हें स्वाद्याय से ही एक बेजोड़ अर्थशास्त्री बना दिया। उनके नोट से मुख्यमंत्री पंत बहुत प्रभावित हुए। समिति के अन्य सदस्य तो किताबी ज्ञान में खोये रहते, तब चरणसिंह भोगे हुए जीवन के अनुभव के तथ्य प्रस्तुत कर रहे थे। कृषि और ग्रामीण समाज की कठिनाइयों को उन्होंने देखा था, भोगा था, पढा तो बाद में था। लेकिन इस देहाती के तर्क को समिति के बौद्धिक जुगाली करने वाले महान् विचारक, विचार करने लायक ही नहीं समझा। वे लोग अपने गढे हुए कोटरों से बाहर नहीं निकल सके। उनमें से अधिकांश तो जमींदारों का हुक्का भरने वाले थे। मुख्यमंत्री पंत ने इस वक्त साहस का निर्णय लिया। उन्होंने समिति को ही भंग कर दिया। तब चरणसिंह की अध्यक्षता में राजस्व अधिकारियों और कानून विशेषज्ञों की एक समिति गठित कर दी।

बौद्धिक लबादा ओढे हुए नेताओं की उस समय क्या स्थिति रही होगी, कल्पना की जा सकती है। यहीं से चरणसिंह के विरुद्ध एक मजबूत लॉबी तैयार हो गई जो किसी भी कीमत पर इस किसान मसीहा के विरुद्ध जहर उगलना अपना नैतिक दायित्व समझने लगी। इस गिरोह ने संकल्प ले लिया था कि चरणसिंह को सता के महत्वपूर्ण पदों से वंचित रखना ही स्वयं के अस्तित्व की रक्षा करना है। इस कारण चरणसिंह को जो अपमानजनक स्थिति झेलनी पड़ी, वह कंपा देने वाली है। षडयंत्रकारियों ने इस समय जो घृणा की बुनियाद उनके विरुद्ध रखी, चरणसिंह के साथ जीवन भर पीछे लगी रही। लेकिन वह तो बाद की बात है।

मुख्यमंत्री पंत का फैसला, चरणसिंह के आत्म विश्वास की विजय थी। उनकी ईमानदारी, कर्मठता, अध्ययनशीलता और लगन का अमिट प्रभाव पंडित पंत पर पड़ चुका था। अपने लक्ष्य पर पहुंचने की राह पंडित पंत ने दे दी थी। यह चरणसिंह के जीवन के महत्वपूर्ण क्षण थे।

अफसरों की टीम लेकर चरणसिंह अपने कार्य में जुट गये। कानूनी विशेषज्ञों और आइ. एस. अफसर उनके अनुभव से विस्मित थे। और काम करने की इच्छा तो विलक्षण थी। अफसरों को ऐसा नेता पहली बार मिला जो कक्षा में अध्यापक की तरह तथ्यों का विश्लेषण कर रहा था। रात दिन जुटे रहने के कारण इस समिति ने सन् 1949 के प्रारम्भ में ही विधेयक तैयार कर लिया।

विधेयक के बाद सारी कृषि भूमि राज्य के अधीन आने वाली थी। यह विधेयक किसान मसीहा चरणसिंह की विलक्षण प्रतिभा का प्रमाण था। जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार विधेयक को तैयार करने में चरणसिंह ने दिन-रात एक कर दिये थे। एक एक शब्द को जैसे वे गूंथ रहे थे कि जमींदारों को अदालत में जाने का अवसर ही न मिले। उधर जमींदार और उनके पोषक राजनीतिज्ञ चरणसिंह के विरद्ध लामबन्ध हो गये थे। मंत्री मंडल के सहयोगी भी इसमें हवा दे रहे थे। अनभिज्ञ लोगों को भरजाने के लिए जमींदारों द्वारा धुआंधार प्रचार शुरू हो गया था। चरणसिंह ने मुख्य मंत्री को सलाह देकर जमींदारी उन्मूलन प्रचार अभियान का आयोजन किया। तब पूरे प्रान्त में गांवों के लोगों को इसके प्रभावों की जानकारी दी गई थी। एक तरफ चरणसिंह विधेयक को बनाने में जुटे थे, साथ ही जमींदारों के दुष्प्रचार से लोहा ले रहे थे।

इसी समय चरणसिंह ने 'भूमि अधिग्रहण नियम पुस्तिका' में यह प्रभावी नियम शामिल करा दिया था कि निर्दिष्ट स्थल से आधा मील के दायरे में अगर ऊसर या परती जमीन उपलब्ध हो तो कोई कृषि भूमि अधिगृहीत नहीं की जायेगी। पंद्रह वर्षों बाद, भारत सरकार ने भी भूमि अधिग्रहण कानून में एक संशोधन करके इसी का अनुसरण किया।

मई 49 में हमेशा की तरह मंत्रीमंडल के सदस्य नैनीताल पहुंचे। एक सप्ताह तक मंत्रीमंडल की बैठक चली। विधेयक पर खूब बहस चली। किसान-मसीहा ने कहीं कलम टिकने की गुंजायस नहीं छोड़ी थी। नैनीताल में उस समय जैसे चरणसिंह की हवा चल रही थी। पंडित पंत अत्यन्त प्रसन्न थे। तभी मंत्री मंडल ने स्वीकृति देदी थी।

पिछले काफी समय से चरणसिंह कठिन परिश्रम कर रहे थे। अब कहीं जाकर उनकी तपस्या सफल हुई थी। पहाड़ की ठंड से उन्हें स्फूर्ति मिली। अथाह परिश्रम और अनियमित सोने से इस कर्मयोगी का पेट बहुत खराब रहने लगा था। अब नियमित खाना-पीना और सोना होने लगा। सुबह घूमते समय बच्चों को साथ ले जाते। उनके साथ भागते, हंसते और खेलते। सबसे छोटी बच्ची घर पर ही रहती थी, वह खड़ी खड़ी उन्हें आते-जाते देखती रहती। कई बार वह स्नेह से कहते, "बेटी, मैं तुम्हें अपनी सेक्रेटरी बनाऊंगा। लेकिन पहले तुम मुझे सैल्यूट करना तो सीखो। " बार बार कहने से छोटी बेटी 'सैल्यूट करना' सीख गई। जब भी वे घर से बाहर निकलते या घर में प्रवेश करते, तो बेटी उन्हें सैल्यूट करती। तब वे भी गंभीर हो सैल्यूट स्वीकार करते। फुर्सत के इसी समय उन्होंने बच्चों के साथ ताश खेलना शुरू कर दिया था। बच्चों में ऐसा व्यवहार करते जैसे वही सबसे छोटे हों। रूठना, मनना और हंसना, यह सब चलता रहता। जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार विधेयक जैसे गंभीर और निरस विषय के बाद जैसे अब वे स्वयं को हल्का बनाने का प्रयास कर रहे थे। बच्चें को साथ आंख मिचौनी खेलते देख उस दिन उनके एक निजी स्टाफ के सदस्य ने कहा, "इस समय इन्हें देखकर आश्चर्य होता है कि यह वही व्यक्ति है जिसके बनाये प्रस्ताव पर सात दिन से मंत्रीमंडल उलझा हुआ है।" और यही तो कबीर का फक्कड़पन था।

जून में वे लखनऊ वापस पहुंच गये। कर्मयोगी चरणसिंह यदि कुछ दिन बिल्कुल आराम करते, तो फिर एकाएक कर्मभूमि की ओर दौड़ पड़ते। मंत्री मंडल की स्वीकृति के बाद तो जमींदारों में हलचल और बैचेनी बहुत बढ़ गई थी। तब उनका दुष्प्रचार भी बढ़ गया था। ऐसे वक्त में चरणसिंह को पहाड़ क्या रास आता। उन्हीं दिनों पूर्वी उत्तर प्रदेश के पिछड़े तबकों और हरिजनों ने प्रान्तीय शोषित संघ का गठन किया था। यह संगठन बड़ी तेजी से उभर रहा था। इस संघ ने भूमि सम्बन्धी अधिकार को सुनिश्चित करने की मांग उठाई। इलाहाबाद में एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया। भाषण देने हेतु चरणसिंह को आमंत्रित किया। उन्होंने ऐलान किया कि कांग्रेस ने सभी अधिवासियों को जमींदारी उन्मूलन कानून लागू किये जाने के 5 वर्ष बाद भूमिधारी या सीरदारी का दर्जा दिये जाने का प्रस्ताव किया है। इस घोषणा का सम्मेलन में तालियों से स्वागत हुआ। इसके बाद तो शोषित संघ बिल्कुल समाप्त हो गया। उनकी कोई शिकायत बाकी नहीं रही। और तब, भूमि सुधार के क्रांतिकारी स्वरूप से आकर्षित होकर वे सभी कांग्रेस में सम्मिलित हो गये।

तब एक विस्मयकारी प्रतिक्रिया हुई। सिर्फ राजनीति के लिए साधन बनाने वाले उच्च वर्ग के कांग्रेसी नेताओं ने यह संगठन खड़ा किया था। अपने घड़ियाली आंसु दलित वर्ग के लिए बहाकर, ये लोग अपनी राजनीति की रोटी सेंक रहे थे। दबाव बनाये रखने की चाल थी। जब संगठन ही समाप्त हो गया तो ये लोग खुश नहीं थे। चरणसिंह के प्रति ईर्ष्या और भी मुखर हो उठी। इन्हें अपना आधार ही खिसकता नजर आया। तब बैचेन हो एक दिन वे अपने वरिष्ठ नेता के निवास पर एकत्रित हुए।

"यह चरणसिंह अब पूर्व उत्तर प्रदेश में भी पैर पसारने लगा है। पंतजी हमारी सुन नहीं रहे हैं।" एक की यह निराशा की प्रतिक्रिया थी।

"यह जाट को सिर चढ़ाने का परिणाम है। यह तो भस्मासुर बन गया है। पंडित पंत को इसका इस्तीफा पहले ही स्वीकार कर लेना चाहिए था। भूमि विधेयक के बाद तो यह और भी लोकप्रिय हो गया है।" उनके नेता का यह मत था।

"इसका घमंड तो देखो, किसी से सीधे मुंह बात ही नहीं करता। जब देखो, गांव या किसान की चर्चा। जैसे यही संरक्षक हो।"

"भैया, हमने तो इसका इलाज कर दिया था। पहले वाली समिति में इसकी एक न चलने दी। यह सब मुख्यमंत्री ने कबाड़ा किया है।"

"आप मुख्यमंत्री को विश्वास में लीजिए साब। इसे हटवाइये।" इसी निर्णय के साथ इन लोगों की बैठक समाप्त हुई। उनके विरोधियों में इस तरह के विचार-विमर्श रोज चलते रहते। लेकिन चरणसिंह इन सबसे बेखबर। एक स्पष्ट लक्ष्य सामने था। कुछ करने की तमन्ना थी और अवसर भी था। कबीर ने अवधूतों की पूरी पोल समझ कर ही तो उन पर कोड़े बरसाने शुरू किये थे। भक्ति के ठेकेदारों, भगवान के दूतों पर तभी तो आक्रमण शुरू किये थे जब अपने निराकार, निर्गुण ब्रम्ह के स्वरूप को जनता के सामने रखा। अभी चरणसिंह अपने ब्रह्म की तलाश में लगे हुए थे। फतवा जारी करने, धर्मात्माओं को देखने का यह वक्त नहीं था।

दफ्तर में काम दूसरा था। सचिव तो दूसरे विभाग के थे, कार्य राजस्व का था। घर में आकर पूरा ध्यान किसान पर रहता। फर्श पर बिछी दरी पर बैठ कुछ लिखना या अध्ययन करना जारी था। और इस काम का कोई अन्त नहीं था। हां, खाते समय परिवार के साथ बैठकर ही खाना खाते।

जमींदारों के लिए न्यूनतम भूमि 6.25 एकड़ रखी गई थी। इस विस्मयकारी विधेयक को बनाते समय चरणसिंह ने भूमि सेवियों की चार श्रेणियां निर्धारित की। भूमिधर (भूमि का धारक), सीरदार (जोतने वाला), आसामी (स्वामीत्व रहित), और अधिवासी (दखलकार) जिसे सिर्फ अस्थायी या शिकमी काश्तकारी का हक हो। सभी तरह के काश्तकारों की बेदखली 1946 से ही स्थगित थी। जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार विधेयक के प्रवर समिति को सौंपे जाने के बाद तत्कालीन राजस्व मंत्री ठाकुर हुकुमसिंह ने यह प्रस्ताव रखा कि कम से कम उन्हें तो सीधे बेदखल किया ही जाये जो अनाधिकृत हैं। लेकिन प्रवर समिति ने इसे स्वीकार नहीं किया।

विधेयक के विरोध में पूर्वी जिलों के कांग्रेसी नेता खुलकर सामने आ गये। अक्तूबर 49 में वाराणसी में इन्होंने एक क्षेत्रीय सम्मेलन कर चरणसिंह पर जमकर प्रहार किये। ये नेता या तो ब्राह्मण थे या ठाकुर। ये अपनी जमीनों पर खुद खेती नहीं करते थे। अनुसूचित या पिछड़ी जाति के लोगों को बटाई पर देने के आदी थे। पूर्वी भागों से आने वाले समाजवादी भी भविष्य के लिए शिकमी या बटाईदारी पर रोक के प्रावधान से नाराज थे। काफी वर्षों बाद, 1965 में समाजवादी नेता गेंदासिंह कांग्रेस में शामिल हुए तो सुचेता कृपलानी ने उन्हें कृषिमंत्री बनाया था। तब गेंदासिंह और कृपलानी ने यह प्रस्ताव पेश किया और बिना कोई विचार किये यह अनुमती दे दी गई कि भूमिधारी अपनी जमीन खेती करने हेतु दूसरों को दे सकते हैं। तब चरणसिंह के इस सिद्धान्त को, कि 'जमीन जोतने वाले की' बदल दिया गया था। यह इस बात का प्रमाण है कि अपने वर्ग हितों के लिए भिन्न भिन्न पार्टी नेता एक हो गया थे।

जमींदारी प्रथा कहीं पुन: न पनप जाये, इसके लिए चरणसिंह ने पुख्ता इंतजाम किया। जिस दौरान चरणसिंह रात दिन एक करके इतने बड़े वैधानिक कदम को उठाने की तैयारी कर रहे थे, विरोधियों का यह प्रचार जोरों पर था कि सरकार में दम नहीं है कि वह जमींदारी समाप्त कर दे। चरणसिंह को गालियां और मारने की धमकियां दी जा रही थी। लेकिन बाद में जनता ने देखा कि किसानों की लड़ाई लड़ने वाले योद्धा ने न केवल युद्ध के मोर्चे पर विजय प्राप्त की बल्कि एक टिकाऊ ढांचे का निर्माण भी किया। आर्थिक और सामाजिक सुधार की एक मिशाल पेश की जिसे बाद में अन्य राज्यों और केन्द्र ने भी माना।

उन्हीं दिनों मेरठ में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हुआ था। सेठ

गोविन्ददास इसके सभापति थे। सर सीताराम ने इस सम्मेलन का उद्घाटन किया था। मुख्य अतिथि थे राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन। स्वागताध्यक्ष चरणसिंह को बनाया गया। उस समय दिया गया उनका भाषणष राष्ट्र भाषा हिन्दी एवं अन्य प्रान्तीय भाषाओं के संदर्भ में उनका दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। भाषण देते हुए उन्होंने कहा था, 'हिन्दी व अन्य प्रान्तीय भाषाओं की एक ही जननी है, अर्थात् संस्कृत। इसलिए हिन्दी उस हिन्दुस्तानी की अपेक्षा जो फारसी लिपि में भी लिखी जाये, बंगाली, गुजराती, मराठी आदि के निकट है। इस कारण हिन्दी को सारे भारतवासी अधिक सरलता से सीख, पढ व लिख सकते हैं। देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता के आगे तो विरोधी पक्ष भी आज नतमस्तक हैं। उस दिशा में संसार की कोई लिपि भी उसके सामने नहीं ठहर सकती। रही साहित्य निर्माण की बात, सो हिन्दी और उसकी मां संस्कृत के पास शब्दकोष का बहुत बड़ा भंडार है।''

''अंग्रेजी काल में जहां तक मुझको याद है, प्रान्तीय भाषा के समर्थकों ने यह आवाज नहीं उठाई कि अंग्रेजी के रहते हुए उनकी भाषा का विकास असंभव है। फिर आज अंग्रेजी का स्थान हिन्दी को दिये जाने की बात कही जाती है, तो फिर साम्राज्यवाद कैसा? हिन्दी प्रान्तीय भाषाओं के अधिकार को छीनना नहीं चाहती, वह अपने अपने स्थानों पर फले-फूलें, उनमें प्रादेशिक साहित्य भी बनता रहे और नित्य प्रति के व्यवहार में भी वे काम आती रहें। हमारा आशय तो केवल इतना है कि यह देश एक लड़ी में बंध जाये। इसके लिए अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार की एक भाषा का होना आवश्यक है। हम केवल यही चाहते हैं कि जो स्थान अब तक विदेशी भाषा को प्राप्त था, वह अब इस देश के सबसे बड़े भाग की भाषा को मिल जाये।''

उपरोक्त उद्धरणों से पता लगता है कि वे हिन्दी के कितने समर्थक थे। हिन्दी को साम्प्रदायिकता का रंग देने वालों से उन्हें सख्त चिढ़ थी। उन्होंने तर्क दिया कि चीन या यूरोप में रहने वाले मुसलमान अपना धर्म बखुभी निभा सके हैं लेकिन उनकी भाषा तो देश की भाषा है।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर एक कवि सम्मेलन का भी आयोजन था। यह एक विशाल कवि सम्मेलन था जिसमें देश के चोटी के कवियों ने भाग लिया था। उन दिनों कवि सम्मेलनों की बात ही निराली थी। देश अभी अभी स्वतंत्र हुआ था। मेरठ के इस कवि सम्मलेन में अपार जन-समूह एकत्रित हुआ। कवि सम्मेलन के सभापति प्रसिद्ध साहित्यकार भगवती चरण वर्मा थे। उनके लिए कवि सम्मेलन से निपटना अत्यन्त दुष्कर साबित हो रहा था। पंडाल में हुल्लड़बाजी का जोर था। गाली-गलौज की बौछार हो रही थी। वर्मा जी को भय था कि कहीं कवि सम्मेलन उखड़ न जाये।

एकाएक ही चमत्कार हुआ। सात-आठ व्यक्तियों के साथ एक व्यक्ति ने पंडाल में प्रवेश लिया। दुबल-पतला, गोरा रंग, तीखी आंखें, कुर्ता-धोती और सिर पर टोपी। हुल्लड़बाजी तत्काल बन्द हो गई। वह व्यक्ति अपने सहयोगियों के साथ श्रोताओं की अगली पंक्ति में बैठा दिया गया। भगवती बाबू ने अचानक आई इस शांति से राहत की सांस ली। वे आने वाले व्यक्ति के प्रति गद्गद् हो उठे। आंखों ही आखों में उन्हें आभार प्रकट किया गया। तब वे पूछे बिना नहीं रह सके, ''ये कौन सज्जन हैं?''

''चरणसिंह, उत्तर प्रदेश सरकार के संसदीय सचिव।'' उत्तर मिला। वर्मा जी ने तब पुन: ध्यान से देखा। ऊपर से देखने पर तो कोई रोब-दाब नहीं। हां, आंखों में आत्म विश्वास की झलक और सामने वाले को एक ही नजर में तौलने की तिक्ष्ण दृष्टि। आवाज में एक तरह का तीखापन उन्होंने अनुभव किया। किन्तु व्यवहार में अपनापन और अधिकार की भावना। इसी से तो कवि सम्मेलन में सन्नाटा छा गया था। कवि सम्मेलन देर रात तक चला। देश भर से आये चोटी के कवि चरणसिंह को लक्ष्य करके अपनी कविता पढ़ते। ऐसा अनुभव हो रहा था जैसे मेरठ की जनता के वे संरक्षक थे। उन्हें अपने बीच पा जनता निहाल थी। कभी कभी कविता के बीच श्रोताओं की घुसर-पुसर सुन, उस ओर वह देख भर लेते थे। बस आर-पार जाने वाली दृष्टि ही चुप कराने के लिए काफी थी।

इससे पूर्व उनका लेख 'सरकारी सेवाओं में किसान-संतान के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण क्यों?' नामक लेख अखबारों में प्रकाशित हो चुका था। उन्होंने लिखा था,-

"शहर निवासी-गैर कृषि समाज के व्यक्ति का सामाजिक दर्शन, देहात के किसान-समाज में पैदा हुए व्यक्ति से पूर्णत: भिन्न होता है। प्राय: देखा जाता है कि शहर में पला गैर-किसान वर्ग का व्यक्ति गांव के एक गरीब भारतीय को देहाती, गंवार आदि घृणित नाम से पुकारता है, ठीक उसी स्वर में, जिसमें अंग्रेज हम भारतीयों को पुकारते थे।....किसान का बेटा, अपने शहरी साथी अफसर की तुलना में अधिक साधारण, कम बनावटी एवं ऐशोराम का कम अभ्यस्त होता है।.....वह धोखा नहीं जानता, न सफलतापूर्वक धोखा दे सकता है क्योंकि उसका तथा उसके पिता का बचपन जमीन, पेड़-पौधे तथा पशुओं के साथ व्यतीत हुआ था, जो कभी झूठ नहीं बोलते, जबकि एक गैर कृषक तथा उसका बेटा अपनी जीविका-अर्जन के कार्य में, ऐसे लोगों से सम्पर्क में आता है, जो एक दूसरे से आगे निकलने की स्पर्धा में झूठ बोलते हैं तथा छल-कपट का व्यवहार करते हैं। यह भी कहा जा सकता है कि शहरी नागरिक की संतान की अपेक्षा किसान का बेटा भृष्टाचार के मार्ग पर कम बढता है। उसका जीवन स्तर सामान्य होता है, उसके आराम का तरीका भी सहज है और उसका काम थोड़े धन से चल जाता है।...

मैं जानता हूं कि देहाती वर्ग, शहरी समाज और इस प्राचीन देश के अन्य सभी वर्ग, अच्छाई तथा बुराई के कामों में सभी एक साथ हैं और केवल अपराध की भावना उनमें ईर्ष्या पैदा करती है...तमाम व्यक्तियों को यह समझ लेना चाहिए कि प्रशासन तंत्र नगर निवासियों अथवा गैर कृषक समाज के लिए एक किला एवं सुरक्षित स्थान नहीं है और जीवन की अन्य अच्छी चीजें तथा शिक्षा केवल कुछ लोगों के एकाधिकार का क्षेत्र नहीं है बल्कि वह जमीन से पैदा हुए प्रत्येक व्यक्ति की मिली-जुली विरासत है।" ऐसा लगता है कि ऐसे लेखन की वजह से ही शहरी विशिष्ट वर्ग ने चरणसिंह को जातिवादी करार दिया था।

14.

इन्हीं दिनों चरणसिंह मुख्यमंत्री पंत के साथ संसदीय सचिव थे। न्याय और सूचना विभाग के प्रभारी। उनके साथ के सभी संसदीय सचिव केबीनेट मंत्री बन चुके थे। सिर्फ वही बाकी थे। यह उनके साथ अन्याय था लेकिन वे बेपरवाह थे। जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार विधेयक तैयार करने का श्रेय तो उन्हें ही था। वह भी उस व्यवस्था में जब वे इस विभाग से सम्बन्धित नहीं थे। इससे वरिष्ठ मंत्री भी उनसे बात करने से कतराते थे। इसका प्रमुख कारण था कि जनहित के कार्य में किसी का अंकुश वे सहन नहीं कर पाते थे। प्राय: ही घर में गुनगुनाया करते-

"काम किये जा, राम भजे जा, ना काहू का डर है।
यह दुनियां दो दिन का मेला, ना काहू का घर है।"

इस कर्मयोगी में एक साथ नेता, संत, गृहस्थ के गुण देखकर, नेता और अफसर ही नहीं, घरवाले भी चकित थे। बच्चों के साथ बच्चों की सी शरारत करते तो बच्चे तालियां पीटते। सबसे छोटी बेटी को साथ नाचते तो बड़ी बेटियां मुश्किल से हंसी रोक पाती। गायत्री देवी कई बार टोकती भी, "यह क्या सनक पाल रखी है? बच्चे तो बड़े हो गये हैं। अजित भी क्या सोचेगा?"

तब वे बेटियों की ओर देख, जोर से हंस पड़ते। वहीं उनके बीच फर्श पर बैठ जाते और पूछते, "क्यों बेटे लोगों, क्या मैं तुम सबको बावला नजर आता हूँ?"

"नहीं पिताजी!" सभी एक साथ बोलते। तब वे गायत्री देवी की ओर देख, गर्दन को आगे-

पीछे हिलाते; जैसे कह रहे हों, तुम्हीं गलत हो। और एक दिन कहा भी, "यदि मैं तुम्हारी जगह इन बच्चों की मां होती तो देश की सबसे सफल मां साबित होती। तब मुझे राष्ट्रीय पुरस्कार मिलता।"

तब परिवार में हंसी का जो फव्वारा छूटता, वह देर तक थामे नहीं थमता। कर्म क्षेत्र में गंभीर रूप से खोये चरणसिंह का यह हल्के-फुल्के क्षणों का रूप देखकर अजनबी सकते में आ जाते। अधिकारियों को आपस में कहते सुना जाता, "घर में चरणसिंह को देखकर यह विश्वास नहीं होता कि सचिवालय मैं बैठा कठोर व्यक्ति चरणसिंह का ही यह रूप है।"

घर के वातावरण से शायद वे अधिक ऊर्जा प्राप्त करते। तब उनकी मानसिक थकान, वेदना सब धुल जाती। और यह क्रम हमेशा चलता रहा। जो शिष्टाचार, अनुशासन और संस्कार बच्चों में वे गाजियाबाद और मेरठ में डाल चुके थे, उनसे बच्चों ने अपनी राह पकड़ ली थी। इसमें क्या आश्चर्य हो कि उनके बेटे-बेटियों द्वारा आज भी कलुषित राजनीति में कभी स्तरहीन वक्तव्य जारी नहीं हुआ। अवसरवादी घाघ नेताओं ने चरणसिंह की मृत्यु के बाद अजितसिंह को घेर लिया था। चक्रव्यूह में घिरे अजित ने कभी संतुलन नहीं खोया और न किसी के प्रति अपमानजनक बातें कही। जबकि उन्हीं के सहयोगी 'बड़बोले' बनकर अन्ततः विदुषक की श्रेणी में ही रहे। ...बहरहाल...।

किन्तु घर में भी इस अथाह प्यार और स्नेह के बावजूद उनके सिद्धान्त के साथ छेड़छाड़ नहीं की जा सकती थी। 1950 की गर्मियों में घर में कूलर लगाने की इच्छा बेटियों की हो गई। उन्होंने पिताजी के निजी सचिव से कूलर लगाने को कहा। पी. ए. ने उनकी आदत जानते हुए पूछा, "क्या चौधरी साब नाराज नहीं होंगे?"

"नहीं, हम पिताजी को मना लेंगे। आप आज ही कूलर लगा दें।" बेटी का आदेश था। घर में दिन में कूलर आ गया। सभी बड़े खुश हुए। गर्मी से राहत मिली। शाम को देर से चरणसिंह घर लौटे। देखा, कूलर चल रहा है। पूछ बैठे-

"यह क्या? यहां कहां से आ गया?"

एक बेटी ने मुस्करा कर उत्तर दिया, "पिताजी गर्मी बहुत है। आपको भी आराम रहेगा।"

स्नेह से चेहरे पर तनिक मुस्कान बिखेरे उन्होंने बेटी की ओर देखा। धीरे धीरे तीन चार बार गर्दन हिलाई। आशय था-मैं समझ रहा हूं। फिर वे कमरे में जा अपने काम में व्यस्त हो गए।

सुबह ही दोनों बड़ी बेटियों को अपने पास बुलाया।

"आजकल क्या कर रही हो?"

"कुछ नहीं पिताजी, गर्मी की छुट्टियां हो गई हैं।"

"ठीक है, तब छुट्टियों में गांव घूम आओ।"

"लेकिन, पिताजी गांव में तो गर्मी बहुत है। वहां तो बिजली भी नहीं।"

"बेटे, तुम्हारी दादी भी तो रहती है। कभी कभी उनकी सेवा भी तो करनी चाहिए।" उसी दिन दोनों बेटियाँ गांव आ गई। कूलर घर से हटा दिया गया था।

गांधीजी उनके सब कुछ थे। दयानन्द सरस्वती और कबीर उनके भीतर थे। ज्यों ज्यों आयु बढ़ती गई, भीतर का कबीर अधिक मुखर होता गया। सरदार पटेल उनके आदर्श थे। सरदार पटेल से जैसे वे मौन रूप से शक्ति प्राप्त करते रहते थे। यही सहारा एक दिन टूट गया। खबर आई, सरदार पटेल चल बसे। गांधीजी की मृत्यु के बाद, यह दूसरा सबसे बड़ा आघात था। उनके दुःख का कोई अन्त नहीं था। आंखों के सामने जैसे अंधेरा छा गया था। अब क्या होगा? उनकी पीड़ा कागज पर उतर आई। 23 दिसम्बर 1950 को एक साप्ताहिक में उन्होंने एक लेख लिखा-'हमारा सरदार।' इसके मुख्य अंश इस प्रकार हैं-

"आज भारत वर्ष लुट गया। आज उसका वह लाल, जिसके बल पर वह निर्बल होते हुए

भी अपने को सशक्त समझता था, उससे रूठ गया। आज भारत का लौह पुरुष जिसकी गर्जना सुनकर देश-द्रोही तथा अपने देश के शत्रु दहला करते थे, विदा हो गया। आज हमारा सरदार सदैव के लिए सो गया।...भारत वर्ष महाभारत काल से छोटे छोटे टुकड़ों में विभक्त था। अंग्रेज जब विदा हुए तो 562 रजवाड़ों को स्वतंत्र छोड़ गये। सरदार ने अपने कौशल से बात की बात में देश का एकीकरण कर दिया और देश की, अपने अकेले इसी काम से, ऐसी सेवा की, जैसी कि संसार में किसी व्यक्ति ने अपने देश की नहीं की होगी। जब तक भारतवर्ष के आकाश में सूर्य चमकता रहेगा, देश सरदार के इस उपकार को नहीं भूलेगा।"

"सरदार एक अनुपम साहस के धनी थे। गत पांच वर्ष से यह देश एक भीषण संकट से गुजर रहा है। ऐसी विकट अवस्थाओं में, जो कि जन सेवकों को किंकर्तव्य बना देती हैं, साधारण व्यक्ति निराशा के सागर में डूबने लगता है। ऐसी अंधकारमय स्थिति में भारत की जनता को इस लौह-पुरुष का सहारा था। उन पर उसको गर्व था। सरदार के रहते हुए लोगों को ढांढस बंधा था:-कोई बात बिगड़ेगी तो सरदार तो मौजूद हैं, संभाल लेंगे।"

"आज इस अभागे देश का वह सहारा, निर्बल की वह लकड़ी जाती रही। गत वर्ष अपने जन्म दिवस पर बोलते हुए इस सिंह पुरुष ने अहमदाबाद में कहा था, "मैं इस संसार में कुछ वर्ष और रहने का इच्छुक हूं, यद्यपि महात्मा गाँधी, कस्तूरबा और महादेव देसाई के समीप जल्द पहुंचने की उत्कट अभिलाषा मेरे मन में बसी है। मैं अब केवल, जो काम वह अधुरा छोड़ गए हैं उसे पूरा करने के लिए ही रुका हूँ।"

और इसके बाद, घर में बच्चों के साथ ताश खेलने वाले, बच्चों की तरह रूठने और राजी होने वाले चरणसिंह जब भी अकेला होते चिंतित हो जाते। सरदार पटेल के बाद यह चिंता बढ गई थी। जैसे कोई अन्दर से पूछ रहा होता, अब क्या होगा? और, क्या तुम पटेल का स्थान नहीं ले सकते? एक सवाल तो सदा ही घेरे रहता, देश का क्या होगा? गरीबों, मजदूरों और किसानों की दुरावस्था एक ओर; तो दूसरी ओर सफेदपोश बेईमान राजनीतिज्ञ, भ्रष्ट अधिकारी और जमाखोर व्यापारी। वे सोचते रहते और लिखते रहते। उनकी बहुत बड़ी तमन्ना थी कि देश अपने पुराने वैभव पर लौट आये। वह सोने की चिड़िया फिर कहलाये। भारतीयों का चरित्र संसार में अनुकरणीय बने। पिछले सैंकड़ों साल के भारतीय इतिहास से वे दुखी थे। ऊंच-नीच की भावना ने भारतीयों को कायर और निकम्मा बना दिया था। सब अपने अपने स्वार्थ में लिप्त थे। किसी ने स्वयं को भारतीय समझ, इस राष्ट्र भारत वर्ष की चिंता ही नहीं की थी। और तब एक तरह से अवतार लिया था गांधीजी ने। सहयोगी बने थे सरदार पटेल। दोनों के चहरे और वेश-भूषा से पता लगता था कि ये भारतीय हैं।

इसीलिए तो देश स्वतंत्र होते ही उन्होंने अखबार (अमृत बाजार पत्रिका) में एक लेख लिखा था-'कॉजेज ऑफ अवर स्लेवरी' (हमारी गुलामी के कारण) यह लेख 16 अगस्त 1947 के अंक में प्रकाशित हुआ था। इसके मुख्य अंश थे-"अंग्रेज हम लोगों से किसी भी तरह श्रेष्ठ नहीं है, चाहे हम उनके देश के (आर्थिक) स्रोतों से तुलना करें या उनकी शारीरिक या मानसिक क्षमता से। न उनके पास हमें नैतिकता एवं सभ्यता की सीख देने जैसे कुछ था, कम से कम जब वे हिन्दुस्तान आये। बल्कि कला, संस्कृति एवं सभ्यता को बाजारू माल मानकर हिन्दुस्तान एवं इंग्लैंड के बीच व्यापार हो तो पलड़ा हिन्दुस्तान का ही भारी पड़ेगा। इस आशय की स्वीकारोक्ति एक अंग्रेज ने ही 1833 में हाऊस ऑफ कॉमन्स की एक समिति के समक्ष की थी। फिर भी अंग्रेजों ने कई पीढियों तक हम पर शासन किया। सवाल उठता है; क्यों?

"इसके दो या तीन साधारण कारण हैं। यूरोपीय अनुशासन एवं सैन्य तकनीकी श्रेष्ठता, दिल्ली स्थित केन्द्रीय सत्ता के क्षीण हो जाने के कारण देश में व्याप्त अराजक स्थिति वगैरह, लेकिन इसका जो सबसे प्रमुख कारण रहा है, वह है हम में राष्ट्रीय विवेक का अभाव, देशभक्ति का अभाव।

"यद्यपि प्राचीन काल की तरफ पीछे मुड़कर हम देखें, तो पाते हैं कि कभी एक आक्रमक

जाति, कभी दूसरी, कम ज्यादा अन्तराल पर यहां आती रही, लेकिन विदेशी आक्रामकों का बिना किसी बाधा के लगातार 11वीं शताब्दी के बाद ही यहां आना शुरू हुआ। विदेशी गुलामी की तरफ भारत तेजी से बढा और राज्य लोगों में देश-भक्ति की भावना जगाने का अपना अधिकार खो बैठा। (जिसे कल ही यानी 15 अगस्त 1947 को ही फिर से वापस पा सका है)।

"जाति, उपजाति, परम्परा, एक दूसरे से भिन्न धार्मिक आस्थाओं, अन्धविश्वासों के चलते बंटे होने के कारण जो कुछ सूत्र भी भारतीयों को एक साथ बांधे रखते थे, वह निहायत ही कमज़ोर थे। बाहरी दबावों एवं कई शताब्दियों तक एक के बाद एक होते गये अफगान, तुर्क या मुगल आक्रमणों के कारण उत्पन्न हुए अनुकूल वातावरण के बावजूद हिन्दुवाद में देशभक्ति का समावेश नहीं हुआ।...यद्यपि मराठों ने मुगल साम्राज्य के ऊपर भयानक प्रहार किये थे लेकिन वे, अगर भारतीय नहीं, तो एक हिन्दू राज्य के तौर पर भी अपने को विकसित करते तो सफल हो जाते। इसके बजाय पांच अलग अलग विभाजित टुकड़ों में बंटे और अंग्रेजों के बहुत आसानी से शिकार बन गये।

"गांधीजी के नेतृत्व में, सदियों बाद भारत पहली बार एक बन्धन में बँधा। कांग्रेस संगठन ने इसे एक ही धागे से एक सूत्र में बांधा। विदेशियों ने देखा कि भारत न सिर्फ जाग चुका है बल्कि एक समग्र राष्ट्र के रूप में सांस भी ले रहा है, और वह भी कि अब वे उन भारतीय सैनिकों पर भरोसा नहीं कर सकते, जो देखते ही देखते अपने देशवासियों को अपना भाई समझने लगे हैं और अंग्रेजों को विदेशी। बिना युद्ध किये भारत को जल्दी से छोड़ना उन्होंने तैय कर लिया। हमारे नेताओं का सपना सच हो चुका था।

"लेकिन इस उपलब्धि में असफलता भी शामिल थी। हम लोग अपने बहुसंख्यक मुस्लिम देशवासियों को यह यकीन दिलाने में असफल रहे कि वे अपनी पहचान को समग्र भारत से जोड़कर देखने की आवश्यकता को समझें। इस हद तक कि देश अपने चिन्ह तिरंगा से बाहर हो गया। ऐसा क्या हुआ? इसके विस्तार में मैं नहीं जाना चाहता लेकिन इस पर आंसु बहाकर आगे बढुंगा।

"जो बात मैं घर घर पहुंचाना चाहता हूं, वह यह है कि कांग्रेसियों के खिलाफ जो कुछ भी कहा जाता है, उस सबके बावजूद उनमें से अधिकांश अभी भी उन्हीं आदर्शों से प्रेरित हैं, जिससे प्रेरणा पाकर वे अंग्रेजों से जूझे थे। यह कांग्रेस ही है, जिसने देश को एक सूत्र में बाँध रखा है, जो देश एवं दुर्व्यवस्था के बीच खड़ी है। हमारे नेताओं ने जीवन भर त्याग किया है और कठिन श्रम के पश्चात् वही हमारे बीच आए हैं, हमें उन पर गर्व है।

"हमें बापू का आभार मानना चाहिए कि उन्होंने मुक्ति के इस यंत्र को आग में तपाकर ऐसा बनाया कि आज वह हमारे राजनीति रूपी शरीर को जो अभी पूरी तरह खत्म नहीं हुआ है, केन्द्र की ओर ढकेलने वाली शक्तियों के खिलाफ ढाल का काम कर रहा है। विदेशी विचारों से प्रेरित ये शक्तियां फिर अपना सिर उठा रही हैं।

"ये घड़ियां संकटपूर्ण हैं। हमारी राष्ट्रीयता अभी सतह से ज्यादा गहरी नहीं है। इन खतरों को टल जाने दें, देशभक्ति का पाठ लोग सही तौर पर ग्रहण कर लें, देश की अर्थ-व्यवस्था को मजबूत कर लें ताकि निम्नतम आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। संक्षेप में हमारी स्वतंत्रता जड़ जमा ले, उसके बाद एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए हमारे पास काफी समय होगा। वर्तमान स्थिति को दस साल से अधिक नहीं झेलना है।"

जिस समय यह लेख लिखा, चरणसिंह एक प्रान्त के संसदीय सचिव मात्र थे। राष्ट्रीय भावना, देश की एकता की चिंता, भारतीयता की पहचान के प्रति जो उनके मन में आवेग था, वही भविष्य में उन्हें राष्ट्रीय नेता बना सका। यह लेख 1947 में लिखा था. छ माह बाद ही गांधीजी की हत्या हो गई थी। दो वर्ष बाद अब सरदार पटेल चल बसे थे। इन घटनाओं से वे कितने चिंतित रहे होंगे। लेकिन उन्हें अब अधिक नीडर बनना था, अधिक जिम्मेदार भी। तब वे अक्सर गुनगुनाया करते थे-"कदम पै कदम मिलाये जा, देश को आगे बढाये जा।" अथवा-"खूब लड़ी मर्दानी वो तो

झांसी वाली रानी थी।"

इन दोनों गानों की बाद में कैसेट तैयार करवाली थी। अंतिम दिनों में भी, जब वे बिस्तर पर पड़े रहे, इन गानों को सुनते और आंसु बहाया करते।...बहरहाल...।

उन्हीं दिनों गांधीजी की तीसरी पुण्य तिथि पड़ रही थी। आकाशवाणी से प्रसारित अपने भाषण में उन्होंने कहा, "हमने अंग्रेजों को गोली से नहीं मारा। यही नहीं महात्माजी ने उनको गाली भी नहीं दी। फल यह हुआ कि सदियों के बाद उनके फौलादी पंजों से हमारा छुटकारा हुआ, तो भी हमारे सम्बन्ध मधुर बिने हुए हैं। इसके विपरीत मुस्लिम लीग ने हिन्दुओं के प्रति नफरत का राग अलापा और गांधी जैसे मुसलमानों के शुभ चिंतक को, जिसने अंत में अपनी जान ही उनके लिए निछावर कर दी, 'मुसलमानों का दुश्मन नम्बर एक' कहा। इसके बाद जो पाकिस्तान बना, चाहे हिन्दुस्तानी व पाकिस्तानी अब तक एक मुल्क के निवासी व एक दूसरे के खून एवं एक दूसरे की हड्डी की हड्डी से सम्बन्ध क्यों न रहे हों, उसके व हमारे सम्बन्धों में खिंचाव है।

"महात्मा वर्तमान व्यवस्था को केवल मिटा ही नहीं रहा था बल्कि साथ ही नये समाज की नींव रख रहा था। वह जानता था कि मनुष्य सच्चे अर्थों में तभी सुखी होता है, जब कि अपनी रोटी कमाने के धंधे में किसी के पराधीन न हो तथा मनुष्य अपने रोजगार में तभी स्वतंत्र कहा जा सकता है, जबकि वह अपने कार्य, रोजगार या पैदावार के साधन का स्वयं मालिक हो और किसी दूसरे के हुक्म का बन्धा न हो अर्थात् अपने वक्त और अपनी मरजी का मालिक हो। परन्तु ये दशाएं तभी उपस्थित हो सकती हैं, जबकि आर्थिक इकाई छोटी हो, बड़ी न हो, जिसमें काम करने वालों की संख्या अधिक हो अथवा ऐसी हो, जहां श्रमिक या कारीगर स्वेच्छा से काम कर सकें और उसको अनिवार्य रूप से दूसरे का हुक्म न मानना पड़े।

"गाँधीजी के लिए चरखा केवल छोटे रोजगारों का प्रतीक था। वह चाहते थे कि सिवाय उन वस्तुओं को बनाने वाले कारखानों के, जो छोटे पैमाने पर न बन सकती हीं, सब चीजें अपने देश में लाखों, बिखरे हुए गांवों के अन्दर कारीगरों की झौंपड़ियों में बने। ऐसी आर्थिक व्यवस्था में अधिक लोगों को काम मिलेगा अर्थात् कोई बेरोजगार नहीं रहेगा। मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास होगा, वह स्वतंत्र रहेगा। और इस कारण सुखी भी। महात्मा न बिजली विरोधी थे, न मशीनों के। धन्य है भारत माता, जिसकी कोख में ऐसा लाल पैदा हुआ। उनके श्री चरणों में मेरी लाख बार श्रद्धांजली।"

गांधीजी, पटेल और भारत के बारे में उपरोक्त लेख अंशों से चरणसिंह की विचारधारा का पता लगता है, उनके राष्ट्रीय नेता होने के गुण को दर्शाता है। और तभी यह समझा जा सकता है कि वे इतने व्यस्त क्यों रहते थे? घर में वे क्यों कभी कभी बच्चे बन जाते थे। ऐसा नहीं करते तो क्या वे जीवित रह पाते? हमेशा गंभीर विषयों में खोये रहते। ऐसे भी कई अवसर आये, जब लिखते-पढ़ते पूरी रात बीत जाती। अकेले अपने कमरे में लैंप जलाये डेस्क को थामे पुस्तकों में खोये रहते। प्यास लगी तो उठकर पानी पी लिया। किसी को कुछ कहना नहीं होता। रात भर जागने से कई बार पेट बहुत खराब हो जाया करता। भूख बन्द हो जाती। तब गायत्री देवी का मिलता उलाहना। वे बार बार कहती, "समय पर सोना-उठना करना चाहिए। तुम्हारा काम तो कभी समाप्त नहीं होने वाला।" वे हंसकर कहते, "इसीलिए तो रात दिन लगा रहता हूं कि काम कुछ हल्का हो।" जब भूख कम लगने की चर्चा गायत्री देवी करतीं तो कहते, "कौन कहता है, भूख कम लगती है। आज खीर-पूड़ी बनाकर खिलाओ तो। सबसे ज्यादा खाऊँगा।" उस दिन खीर-पूड़ी ही बनती। कई बार आग्रहपूर्वक एक ही खाना तीन चार दिन लगातार बनवाते। फिर कहते, "हां, अब जी भर गया है भई।" कभी तीन चार दिन तक निरंतर पालक या बथुए के परांठे दही के साथ चाव से खाते।

वह पहले ही लिख चुके थे कि हम सब भारतीय हैं। जातिवाद ने हमारे देश को कमजोर किया है। बहुसंख्यक का शोषण किया गया है। इसलिए जातिवाद के जहर को न फैलने दिया

जाये। यह लिखा ही नहीं, स्वयं के जीवन पर भी लागू किया। दूसरों से भी उन्हें यही अपेक्षा थी। विशेष तौर पर मंत्रियों के जीवन को तो वे एक खुली पुस्तक की तरह देखना चाहते थे। उनका मानना था कि अच्छई या बुराई ऊपर से ही शुरू होती है। इसीलिए जब उन्हें पता लगा कि एक मंत्री अपनी ही जाति के समारोह में जा रहे हैं तो उन्हें बहुत दु:ख हुआ। ऐसे वक्त भीतर का कबीर कब चैन लेने देता! उन्होंने मुख्यमंत्री पंत को एक टिप्पणी लिख भेजी-

मुख्यमंत्री

''अभी कुछ दिन पहले भी उन समस्त शैक्षणिक संस्थाओं की अनुदान राशि रोकने की मांग मैंने उठाई थी, जो किसी जाति के नाम से चल रहे हैं, उदाहरणार्थ, कायस्थ पाठशाला (जो कि इलाहाबाद में है, शायद जाति के आधार पर खोली गई प्रथम पाठशाला है), वैश्य हाईस्कूल, राजपूत या खत्री कॉलेज, जाट स्कूल आदि। इसी प्रकार का कदम ऐसे ही उपनामों की संस्थाओं जैसे- डी. ए. वी. के हाईस्कूलों (वह स्वयं ही नाम बदलकर 'दयानन्द' रखने की बात सोच रहे हैं), हिन्दू या इस्लामिक कॉलेजों आदि पर भी लिया जाना चाहिए। राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता की राह में सबसे बड़ा रोड़ा आज जाति ही है। यह एक व्यक्ति की दृष्टि को संकुचित एवं निष्ठा को खोखला करती है और इसी संकुचित दृष्टि एवं सीमित दृष्टिकोण जो जाति व्यवस्था में पैदा होता है, के ही कारण हमारे लोग पिछले दो हजार दशकों से ऐसे सुगम शिकार बन गये हैं कि जंगल का कोई मामूली साहसी शिकारी अपनी किस्मत आंकने यहां सुगमता से आता रहा है।

यह देखकर मुझे बड़ा दु:ख होता है कि कड़वे पाठ से हमारे सर्वोच्च नेताओं, जन सेवकों ने जिनमें से कुछ तो पहले ही उत्कृष्ट राजनैतिक संस्था, कांग्रेस के उच्च अधिकारी भी हैं, कुछ भी सबक नहीं सीखा है। कल ही मेरी नजर से अखबार की एक सुर्खी गुजरी जिसके अनुसार अमुक व्यक्ति जो कि सार्वजनिक जीवन के उच्च पद पर आसीन है-अखिल भारतीय अग्रवाल महासभा के दिल्ली में अगले 1-2-3 अक्टूबर को होने जा रहे सम्मेलन की अध्यक्षता करेंगे। राज्य या केन्द्र का नेतृत्व करने वाले, हम प्रमुख लोग अगर जातियों-उपजातियों के संकरे मोह के रास्ते को रोकने या इनसे ऊपर उठाने का कार्य नहीं कर सकते तो निश्चय ही अति धूमिल भविष्य हमारे सम्मुख खड़ा है।

मैं इस बात पर बल दे रहा हूं कि प्रथम कदम इस दिशा में हो-शैक्षणिक संस्थाओं के नाम में परिवर्तन, जहां पर हमारी नयी पीढी प्रारम्भिक शिक्षा सबसे असरदार आयु में प्राप्त करती है। हमारे बच्चे इसी स्थान पर घर के बाद जातीय किटाणुओं से ग्रसित होकर उसी दिशा में जाने-अनजाने में सोचने के लिए बाध्य हो जाते हैं। इसके लिए कोई कानून की आवश्यकता नहीं है। केवल विभागीय आदेश से ही कार्य पूर्ण हो जायेगा। हम जैसे ही प्रबन्धकों को निर्णय बतायेंगे, वह हमारे कदम उठाने के पहले ही नाम बदल लेंगे। मेरा मत है कि प्रबुद्ध जनता इस बात की इच्छुक है और स्वागत के लिए तैयार बैठी है कि सरकार जातीय दुर्ग को तोड़ने के लिए कुछ ठोस कदम उठाये।

मैं जानता हूं कि मुख्यमंत्री इस मांग से पहले ही परिचित हैं। लेकिन वह अपने इधर-उधर फैले अनेक कार्यों में व्यस्त हैं। इसलिए मैंने यही उचित समझा कि बल देने के लिए लिखित रूप से उनका ध्यान इस तरफ खींचा जाये।''

-ह. चरणसिंह

30. 9. 49

लेकिन मुख्य मंत्री पंडित पंत ने इन सुझावों पर कोई उत्साह नहीं दिखाया। तत्कालीन शिक्षा मंत्री डा. सम्पूर्णानन्द, जो समाजवादी विचारों के लिए जाने जाते हैं, चरणसिंह के प्रस्ताव का तिव्र विरोध किया। हाँ, बहुत बाद में जब चरणसिंह यू. पी. के मुख्यमंत्री बने तो उन्होंने सर्वप्रथम यह निर्णय लिया। कहा जा सकता है कि यह कबीर न स्वयं चैन लेता, न मठाधीशों को लेने देता। उनका अन्तर्मन बड़े नेताओं के दोगलेपन से जैसे कराह उठता। उनकी पीड़ा का अन्त नहीं था।

जब भी अवसर मिला, वे इस विषय को उठाने से नहीं चूके। उन्हीं दिनों लखनऊ में राज्य कांग्रेस कमेटी की बैठक हो रही थी। इसकी अध्यक्षता आचार्य जुगल किशोर कर रहे थे। यहां भी उन्होंने अपना प्रस्ताव पेश किया। राज्य कांग्रेस कमेटी की बैठक के बाद जो विज्ञप्ति जारी की गई, वह इस प्रकार थी-

''छ: जाति संगठनों के सम्बन्ध में चौधरी चरणसिंह ने राज्य समिति के सामने निम्न प्रस्ताव रखा। दिनांक 13-14 नवम्बर को निर्णयानुसार इसका मसौदा तैयार किया गया। समिति ने सदस्यों के बीच बहस के बाद इस प्रस्ताव को स्वीकार किया।

उत्तर प्रदेश राज्य कांग्रेस समिति के मतानुसार 'कोई भी कांग्रेसी व्यक्ति न तो किसी ऐसी संस्था का सदस्य होगा और न ही ऐसी किसी संस्था की कार्यवाही में भाग लेगा जो किसी जाति या जातियों तक ही केन्द्रित हो, और न ही अन्य जातियों के बीच वैमनस्य फैलाने में भागीदार होगा। अगर वह किसी कारण से ऐसा करता है तो उसका यह कदम राष्ट्रीय मूल्यों के विरुद्ध माना जायेगा। कांग्रेसी व्यक्तियों की निष्ठा और सहानुभूति निश्चय ही अन्य जाति के लोगों की दृष्टि में गिरती है। अगर वे इस प्रकार की संस्थाओं के सदस्य बनते हैं। या उनमें शामिल होते हैं। अगर वे ऐसा करते हैं तो इसके द्वारा जनता की सही सेवा करने से वे निश्चय ही भटक जायेंगे। इसलिए समिति का फैसला है कि इस प्रकार का कोई व्यक्ति न तो कांग्रेस का सदस्य और न ही कांग्रेस कमेटी का कोई पदाधिकारी ही बनाया जायेगा।

इस समिति का आगे भी फैसला है कि किसी शैक्षणिक संस्थान का नाम किसी जाति के आधार पर न रखा जाये। समिति राज्य सरकार से यह मांग करती है कि वह इस प्रकार की शैक्षणिक संस्थाओं को किसी प्रकार वितीय सहायता न दे।''

शिक्षा मंत्री डा. सम्पूर्णानन्द पी. सी. सी. की एस बैठक में सम्मिलित नहीं हुए थे। वह इस सामाजिक व्यवस्था के कट्टर समर्थक थे। प्रस्ताव पास हो गया था। डा. सम्पूर्णानन्द चाहते थे, कि इस पर पुन: बहस हो। तब पुन: बैठक बुलाई गई। यही एक मात्र विषय था। लेकिन सम्पूर्णानन्द अपने पक्ष में समर्थन जुटाने में सफल नहीं हो सके।

अखबारों की सूखियों से यह समाचार प्रान्त भर में फैल गया। ऐसी संस्थाओं के जातिवादी संगठन चरणसिंह से क्रुद्ध हो गये। उनके जिले मेरठ में भी ऐसी संस्थाएं थी। राजपूत राष्ट्रीय उच्चतर विद्यालय, पिलखुवा (मेरठ) के प्रबंध मंडल ने चरणसिंह की आलोचना की। तब चरणसिंह के दु:ख का अन्त न था। इसलिए भी कि यह संस्था उनके ही क्षेत्र में थी। आलोचना स्तर भी बहुत निम्न था। इससे पूर्व वे अपने दौरे के दौरान भी ऐसी संस्थाओं की आलोचना कर चुके थे जो किसी जाति के नाम पर चल रही थी। स्तरहीन आलोचना का उत्तर देना उनके लिए आवश्यक हो गया। उन्होंने तब, प्रबन्धक को निम्न पत्र लिखा-

''प्रिय प्रिंसीपल महोदय,

पिछली प्रथम जनवरी को आपके स्कूल के प्रबन्धक मंडल के भाषणों के जवाब में, सामान्य प्रतिक्रिया स्वरूप शैक्षणिक संस्थों के नाम जाति विशेष के आधार पर रखे जाने के विरुद्ध मैं बोला था। मैं समझता हूँ कि मेरे विचारों को काफी इकट्ठा कर इस प्रकार का प्रचार किया गया है कि मैं राजपूत जाति का विरोधी हूं, इत्यादि-इत्यादि। अभी तक तो मैंने इसको कोई विशेष महत्व नहीं दिया था लेकिन अब मैं समझता हूं कि मुझे अत्यधिक विवादास्पद बनाकर घसीटने का प्रथम सप्ताह (फरवरी) में पिलखुवा में आपकी अध्यक्षता में हुई बैठक में कई वक्ताओं ने प्रयास किया।

आपको शायद इस बात की जानकारी नहीं है कि मैंने जब से सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया तब से ही इसी प्रकार के विचार प्रकट करता रहा हूँ। विशेष रूप से इनको जाट बाहुल्य क्षेत्रों में जब गया हूं तो अधिक सशक्त ढंग से प्रकट किया है। आप तो एक पढे लिखे व्यक्ति हैं और आप इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि हमारी गिरावट और राजनैतिक दासता का प्रमुख कारण सदियों से जातिगत संकीर्णता रही है। संकीर्ण जातियता की आग, हवा देने से बढ तो सकती

है लेकिन इससे लाभ किसी को नहीं होने वाला। आप एक शैक्षणिक संस्था के प्रमुख हैं और आपको अच्छी तरह जानना चाहिए।

आप मुझे राजपूतों का शत्रु समझते हैं। आपकी तरह सोचने वाले जो लोग जाटों में हैं, वे मुझे उसी कारण से जाट विरोधी मानते हैं। आप यदि मेरे समुदाय के वरिष्ठ लोगों से बातचीत करें जिनका सम्बन्ध बरहट (जिला मेरठ) के जाट कॉलेज या सईदपुर (जिला बुलन्द शहर) से है, आप, पायेंगे कि मैं जाट समुदाय को छोड़कर अन्य प्रत्येक समुदाय का मित्र हूँ। लेकिन आप और ये सब लोग गलती पर हैं। हमें इतिहास से सीखना चाहिए कि यदि हम अब भी जातियों और गोत्रों में बंटे रहेंगे तो हम सभी विभिन्न दिशाओं में खींचते चले जायेंगे।

शुभकामनाओं सहित,

भवदीय
चरणसिंह

प्रति:-
प्रिंसिपल,
राजपूत राष्ट्रीय उच्चतर विद्यालय
पिलखुवा जिला मेरठ

पत्र पाकर प्रिंसिपल ने अपना स्पष्टीकरण भेजा। लेकिन उसके पत्र ने फिर चरणसिंह को एक और पत्र लिखने को मजबूर किया जो इस प्रकार था-

'' प्रिय श्री बी. एन. सिंह,

आपका दिनांक रहित पत्र प्राप्त हुआ। मुझे किसी ने गुमराह नहीं किया। मैंने एक से अधिक बिन्दुओं से जानकारी हासिल की है। आपका कहना कि बड़ी संख्या में राजपूतों के दिलों में मेरे कथन ने पीड़ा पहुंचाई, यह खुद बताता है कि मेरी जानकारी गलत नहीं है। वे भोले-भाले ग्रामीण मुझे समझने में कतई गलती नहीं करते वरन् पढे-लिखे लोग भूल कर सकते हैं। मेरे कथन से राजपूतों के दिलों में पीड़ा क्यों कर हुई? मैंने उनसे कोई अलग व्यवहार किया था? क्या मैंने केवल राजपूतों को अकेले जाति सूचक संस्था के नाम से वंचित किया या कि और सब दूसरी जातियों को छोड़ दिया? क्या मैंने इस तरह की कोई बात कही जिससे उनके आत्म सम्मान को ठेस पहुंचे। क्या मैंने अपने इन विचारों और भावनाओं को सैंकड़ों मंचो से प्रचारित किया एवं दोहराया नहीं है?

हालांकि आपको इस बारे में जरा भी चिंता नहीं करनी चाहिए। मैं आपसे फिर से आग्रह करूँगा कि आप जरा शांति पूर्वक सोंचे एवं हमारी इस अभागी मातृभूमि के इतिहास का मनन करें। हमने धर्म एवं राजनीति के क्षेत्र में सदियों से मात खाई है। प्रमुख रूप से जन्म के आधार पर बंटी हुई हमारी हजारों जातियों के कारण ही। यदि देश को राष्ट्र मंडल में अपनी सही स्थिति पर पहुंचना है तो हमें जाति एवं गांव के इन संकुचित दायरों से ऊपर उठना होगा। जन-मानस का नेतृत्व करने का दायित्व आप और मुझ जैसे पढे लिखे लोगों पर आता है।

शुभकामनाओं सहित,

भवदीय,
चरणसिंह

प्रति:-
श्री बी. एन. सिंह, एम. ए. बी., एस. सी., बी. टी.,

प्रिंसिपल, राजपूत राष्ट्रीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय,
पिलखुवा, जिला मेरठ''

कबीर ने भी तो कहा है-

'उलटि जात कुल दोऊ बिसारी। सुन्न सहज महि बुनत हमारी॥
हमरा झगरा रहा न कोऊ। पंडित-मुल्ला छांड़ै दोऊ॥'

लेकिन जो खरी खरी कहे, उसकी तो दुश्मनी बढ़ेगी। कबीर को भी कम विरोध नहीं झेलना पड़ा था। शायद कबीर ने ही कहा है, 'कायर कोई झेल सके ना, अलबेला मस्त फकीरी में।' मंत्री मंडल के सहयोगियों से लेकर गांव गांव तक फैले स्वार्थी लोगों से टक्कर लेना कोई आसान तो न था। जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार विधेयक अभी लागू नहीं हुआ था। राज्यपाल ने स्वीकृति देकर राष्ट्रपति को भेज दिया था। अखबारों के जरिये पूरे प्रान्त में जनता को जानकारी मिल रही थी। चरणसिंह की राज्यव्यापी सैंकड़ों सभाएं हो चुकी थी। सभाओं में वे राजनीति और विधेयक के बाबत ही नहीं, समाज की कुरीतियों के बारे में भी जमकर बोलते। जोंक की तरह जीने वाले जमींदार ही नहीं, सत्ता के ईर्द-गिर्द फैले उनके दलाल भी इनसे सख्त नाराज थे। समाजवादी और विचारक होने का लेबल लगाये बड़े बड़े महारथी इस 'देहाती आदमी' से बैचेन थे। उन पर तरह तरह के आरोप लगाये जा रहे थे। उनसे दु:खी होकर जनवरी 51 तक वे तीन बार और इस्तीफा भेज चुके थे लेकिन पंत बुलाकर वापिस कर देते। कहते, ''तुमने जो इतना बीड़ा उठाया, वह तो अभी बाकी है।'' निश्चय ही मुख्यमत्री उनकी योग्यता का लोहा मान गये थे। जनवरी 51 में राष्ट्रपति की स्वीकृति भी विधेयक को मिल गई थी। लेकिन कोर्ट में जमींदारों ने अपील की हुई थी अत: लागू नहीं किया जा सकता था।

जून 51 में उन्हें केबीनेट मंत्री बनाकर न्याय एवं सूचना विभाग सौंपा। तीन चार माह बाद ही फिर परिवर्तन कर उन्हें कृषिमंत्री बनाया गया और साथ में पशुपालन और सूचना विभाग भी दिये गए। इससे ध्वनि निकलती है कि मुख्यमंत्री पंत पर भारी दबाव था। राजनीति के अवधूत या पोंगापंडित किस्म के लोग इस कबीर को मंत्रीमंडल में देखना नहीं चाहते थे। मुख्यमंत्री पंत उनकी सेवा लेना चाहते थे। इसीलिए विरोध के बावजूद, वे धीरे धीरे कदम बढ़ा रहे थे। अब कृषि मंत्रालय अवश्य उनको पसन्द आया। पहली बार महत्वपूर्ण विभाग मिला। अखबारों के सम्पादकीय इस बात की गवाही दे रहे थे कि चरणसिंह को बहुत विलम्ब से महत्वपूर्ण विभाग का मंत्रालय मिला है। अब तुरन्त ही उनसे अपेक्षा की जाने लगी कि वे कृषि में क्रांति कर देंगे।

कृषि मंत्री बनने की खबर से उत्तर-पश्चिमी यू. पी. तो जैसे खुशी से झूम उठा। पूरे प्रदेश के किसानों का लखनऊ में तांता लग गया। पहली बार किसान गर्व से राजधानी में घूमने लगे। एक झलक चरणसिंह की पाने की तीव्र इच्छा थी। अनेक जिलों से उनके पास निमंत्रण आने लगे। तब पुन: उनके तूफानी दौरे शुरू हो गये। गांवों में होने वाली असंख्य जन सभाओं में वे भूमि सुधार विधेयक के बारे में जनता को जागृत करने लगे। किसान उनकी बातें यों सुनते जैसे बच्चे किताब का पाठ सुनते हों। किसान और कृषि की बातें पहले किसी मंत्री ने नहीं की थी। भाषण समाप्त होने के बाद भी जनता उन्हें जाने नहीं देती। गांवों के बुजुर्ग उनके समीप पहुंचकर दोनों हाथों से उनके चेहरे को सहलाते, उन्हें आशीर्वाद देते। तब भावावेश में उनकी आंखों से आंसु टपक पड़ते।

एक दिन तो मंच तक एक हरिजन महिला पहुंच गई। सुरक्षा कर्मचारी उसे पीछे धकेल रहे थे। चरणसिंह की नजर पड़ गई। उन्होंने संकेत करके ऐसा करने से रोका और महिला को आगे भेजने को कहा। वह स्वयं खड़े होकर मंच के किनारे आ गये। महिला ने पूछा, ''चरणसिंह तुम ही हो?''

उन्होंने हामी भरी। महिला के मुख से अनायास ही निकल गया, ''अरे, तुम तो गांव के आदमी लगते हो; दुबले-पतले से।''

अन्य के साथ चरणसिंह भी हंस पड़े। तब उसने एक दरख्वास्त उन्हें सौंपी। उन्होंने जेब में रखी और कहा, "पढकर कार्यवाही करूंगा अम्मा। अब तुम्हारे दिन शीघ्र ही बदलेंगे। तुम्हें अब जमीन मिलेगी।"

एकटक उनकी ओर देखती महिला की आंखों से जैसे गंगा उमड़ पड़ी। उसने दोनों हाथों से चरणसिंह के चेहरे को पकड़ लिया। "तुम जुग जुग जीओ! म्हारी सुणोगे तो भगवान भला करेगा। बहौत मुशीबत उठाई है रे"..उसका गला रूँध गया। चरणसिंह की आंखे भीग गई। बड़ी मुश्किल से महिला को ले जाया गया।

ऐसी घटनाओं का अन्त नहीं था। लोग एक दूसरे से कहते, "भैया, जो आज तक हमारी लड़ाई लड़ रहा था, वही अब फैसला करने वाला भी बन गया है।" मुख्यमंत्री पंत को यू. पी. के कोने कोने से बधाई के तार मिल रहे थे। यह एक असाधारण बात थी। लोकप्रियता का ऐसा अन्य कोई उदाहरण नहीं था। सचिवालय में गांवों के लोगों का आना जाना बढ़ गया था। दरख्वास्त आते ही उस पर तुरन्त कार्यवाही की जाती। अफसरों की व्यस्तता बढ गई थी। काम और दौरे इतने बढ़ गये कि चरणसिंह को किसी दिन तो 24 घंटे में सिर्फ एक बार खाना मिलता। तभी, 1952 के पहले आम चुनाव देशभर में होने जा रहे थे।

द्वितीय सोपानः

... चरणसिंह से चौधरी चरणसिंह ...

देश का संविधान लागू हो चुका था। प्रत्येक पांच वर्ष में देश की लोकसभा एवं विधान सभाओं के चुनाव होने थे। 1952 में प्रथम चुनाव थे। कांग्रेस को शासन करते पांच वर्ष हो चुके थे। इसी बीच गांधी और पटेल इस दुनिया से कूच कर गये थे। अब पंडित नेहरू का जादू था। स्वप्न दृष्टा नेहरू की बिल्कुल अलग लाईन थी। वे रूस से बेहद प्रभावित थे। उनके व्यक्तित्व में विशेष आकर्षण था। जनता के दिलों के वे बादशाह थे। प्रभावशाली विपक्ष नहीं बन पाया था। देशी रियासतों का विलय हो चुका था। कांग्रेस का विरोध जहां कम्युनिस्ट पार्टी कर रही थी, वहीं बड़े बड़े सामन्त और कट्टर हिन्दूवादी तत्व भी चुनौति दे रहे थे। रूस के साथ मैत्री होने के कारण कम्युनिस्ट पार्टी का विरोध सतही था। वह सिर्फ ट्रेड यूनियन की राजनीति तक ही सीमित थी। ऐसी अवस्था में कांग्रेस को भारी सफलता मिली। यू. पी. में चरणसिंह अपने क्षेत्र से आसानी से जीत गये।

1952 से ही वे अपने क्षेत्र में चुनाव-प्रचार पर अधिक जोर नहीं दे रहे थे। अन्य क्षेत्रों से उन्हें निमंत्रण आ रहे थे। पूरे राज्य में उन्होंने चुनावी दौरे किये। अपार जन-समूह कृषि मंत्री को सुनने आता। कांग्रेस के निष्ठावान सिपाई थे तो ग्रामीण भारत के नायक थे। अखबारों में उन्हें सुनने आई भीड़ की खूब चर्चा होती। स्वयं के चुनाव क्षेत्र के लोगों ने उनकी अनुपस्थिति में चुनाव की बागडोर संभाली। आपस में चन्दा करके दिल्ली से जीप ले गये। वे ही गांव गांव में घूमने लगे। क्षेत्र की जनता चरणसिंह को देखना चाहती थी किन्तु यह पता लगने पर कि वे पूरे प्रान्त के दौर पर हैं तो वे गद्गद् हो उठे। यू. पी. का ही नहीं, शायद देश भर में यह पहला उदाहरण था कि अपने क्षेत्र में गये बिना चरणसिंह को जनता ने विधानसभा में भेजा।

चुनावों में उनकी लोकप्रियता देख पंडित गोविन्द बल्लभ पंत अत्यधिक प्रभावित हुए। अप्रेल 46 में संसदीय सचिव बने चरणसिंह अब अप्रेल 52 में यू. पी. में लोकप्रियता में सबसे अव्वल थे। तब चरणसिंह को रेवेन्यू, कृषि और पशुपालन मंत्री बनाया गया। यह सही है कि साथ के संसदीय सचिवों में केबीनेट मंत्री बनने वाले चरणसिंह अंतिम व्यक्ति थे। लेकिन इस कर्मयोगी को बिना मंत्री जो कार्य सौंपा गया और जो सफलता मिली, उसे देख अन्य केबीनेट मंत्री चकित थे। शायद मुख्यमंत्री पंत उनके साथ की गई ज्यादति को अब समझ गये थे। अब उनको मन पसन्द विभाग मिले थे। यहीं से चरणसिंह का स्वर्णकाल शुरू होता है। कुछ ही दिनों बाद वे पूरे देश में लोकप्रियता के रिकार्ड को तोड़ चुके थे। मुख्यमंत्री, भारत का गृहमंत्री तथा बाद में प्रधानमंत्री बनने की नींव यहीं से बननी शुरू हुई थी।

अखबारों मे चरणसिंह को राजस्वमंत्री बनाने पर मुख्यमंत्री पंत को बधाई दी गई थी। यह विश्वास प्रकट किया गया कि अब चरणसिंह ग्रामीण जनता का उद्धार कर सकेंगे। उनकी सक्षमता और नियत पर किसी को शक नहीं था। पाठकों के पत्रों से अखबार भरे पड़े थे। किसी में उन्हें 'किसान-मसीहा' तो किसी में 'गांव का गांधी' लिखा गया था। मेरठ के एक पाठक ने लिखा, ''चरणसिंह आगे बढ़ते जाओ, हम आपके फौजी साथ हैं।'' किसी पत्र में पंडित पंत की प्रशंसा

करते हुए लिखा गया, ''आपने गांवों का सम्मान बढाया है, हम आपके आभारी हैं।'' पूर्वी उत्तर प्रदेश के एक पाठक ने लिखा, ''चरणसिंह, अब हम प्रत्येक जिले में एक एक चरणसिंह तैयार करेंगे, जिससे अन्याय, भ्रष्टाचार से लड़ाई लड़ी जा सके। ऐसे पत्रों का कोई अन्त नहीं था। पाठकों में जैसे होड़ लग गई थी। अखबारों से सूचनाएं आ रही थी कि प्रान्त में जगह जगह मिठाइयां बांटी गई। एक दूसरे को लोगों ने बधाइयां दी। मेरठ में उनके सम्मान में एकाएक ही बड़ी सभा जुट गई। वक्ताओं की खुशी का जैसे पार नहीं था। उनका अपना आदमी महत्वपूर्ण पद पर पहुंच गया था। एक वक्ता ने ऐलान किया, ''आज से राज्य में भ्रष्टाचार मिट जायेगा, यह नोट कर लें।'' ऐसी अनेक सभाएं हुई जिनमें चरणसिंह की उपस्थिति नहीं थी।

यहीं अन्त न था। जिनके पास कुछ साधन था, वे अपने नेता की एक झलक सबसे पहले पाने लखनऊ की ओर दौड़ पड़े। लखनऊ में लोगों ने पहली बार नया नजारा देखा। मैले-कुचैले कपड़े पहने देहाती 'चौधरी साब जिंदाबाद' के नारे लगाते उनके बंगले की ओर बढते जा रहे थे। इनमें सुरती फांकते 'पूर्बिये' थे तो हाथ में हुक्का थामे पश्चिमी उत्तर प्रदेश के किसान थे। जैसे सारा यूं. पी. लखनऊ में सिमट गया हो। लखनऊ की जनता विस्मित थी। कैसे इस व्यक्ति ने लोगों के दिलों में अधिकार जमा लिया। तब कई दिनों तक चरणसिंह सचिवालय नहीं जा पाये। सारे दिन आने जाने वालों का तांता लगा रहता। चरणसिंह परेशान हो उठे। उन्हें एक मिनट भी कोई छोड़ने को तैयार न था। लॉन में हुक्के गुड़गुड़ा रहे थे। छल्ले बनाता धुआं कई बार चरणसिंह को लग जाता। तब उन्हें खांसी आ जाती। लेकिन कुछ कहने की हिम्मत उनमें भी नहीं थी। लोगों से मिलते हुए उन्होंने गौर किया कि कुछ लोग कई दिनों से डेरा जमाये हुए हैं।

वे परेशान हो बोले, ''तुम लोग अपने गांव क्यों नहीं जाते?''

उत्तर मिला, ''हमारा जी अभी भरा नहीं।''

''यहां कोई तमाशा है?'' चरणसिंह नाराज हो उठे। ''उठो, अभी घर जाओ।'' एक तरह का आदेश दिया। दस-बारह लोगों का यह गुट जाने को खड़ा हुआ। सभी के चेहरे पर विजयी मुस्कान थी। फिर एकाएक ही सभी चरणसिंह के पैरों में गिर पड़े। सभी की आंखें खुसी से लबालब थी। चरणसिंह स्वयं ने उन्हें संभाला। उनकी आंखें भी जैसे इसी असीम श्रद्धा से भीगना चाहती थी। किन्तु राजस्व मंत्री ने अपना दिल कड़ा किया। मन ही मन सोचा, ''मैं इनके विश्वास को कभी नहीं तोड़ूंगा।'' अनमने मन से वे लोग चल पड़े। सहसा ही चरणसिंह को कुछ याद आया, ''सुनो भाई!'' जाने वाले तनिक ठिठके। समीप आ उन्होंने संकेत करते हुए कहा, ''पीछे चले जाओ। खाना खाकर ही जाना है।'' एक कार्यकर्त्ता को साथ भेज दिया। पता नहीं इन लोगों ने कब से खाना नहीं खाया होगा। उन दिनों निवास पर खाना चलता ही रहता। लेकिन देहाती लोगों के स्वभाव से वे परिचित थे। बिना कहे ये लोग खाते नहीं होंगे। तब वे अन्य लोगों की ओर मुड़ गये।

कोई सिर्फ उन्हें देखभर लेता। कोई कुछ लिखकर लाया था। समूह के समूह उन्हें अपने जिलों में आने को निमंत्रित कर रहे थे। कई दिनों तक चले इस क्रम से वे स्वयं अवाक् थे। जनता के प्रेम से अभिभूत थे। उनका घर जैसे विशाल गांव का चौक बन गया था। यह कब तक चलेगा? तब एक दिन उन्होंने सबको सम्बोधित करते हुए कहा, ''किसानों! अब बहुत हो गया। मैं प्रत्येक जिले का दौरा करूंगा। प्रत्येक व्यक्ति से मिलूंगा। आप लोग अपने अपने गांवों में जायें और काम में जुट जायें। मुझे भी काम करने दो भाई। मैं काम नहीं करूंगा तो तुम लोग ही मुझे गालियां दोगे। किसान को तो काम प्यारा होता है। यहां आने-जाने में फिजूल खर्चा मत करो भाई। अपने घर और खेत को संभालो।''

और तब 'चौसाब-जिंदाबाद, किसान मसीहा 'जिंदाबाद' के नारों से जैसे आकाश गूंज उठा। लेकिन यह उन्हें अच्छा नहीं लगा। बड़ी मुश्किल से उन्होंने रोका और बोले, ''किसानों, मुझे इतना ऊपर मत चढाओ। अभी तो मैंने कुछ नहीं किया है। मुझे काम करने दो।''

ऐसे वातावरण में कभी वे भाव-विह्वलग हो जाते, आंखें नम हो जाती। जैसे उनका कोई नियंत्रण नहीं था। वे सचमुच व्याकुल हो उठते। तब स्वयं को अंदर से कठोर करते। मिलने वाले से कहते, "देखो, अपने गांव में कह देना, यहां कोई न आये। यहां भीड़ मत करो। अपना काम करो और मुझे भी करने दो।"

ऐसे भी अवसर आये, जब भीड़ सब बाधाओं को तोड़, उन्हें खाना खाते समय भी घेर लेती। सुरक्षाकर्मी देखते रह जाते। तब चरणसिंह को सचमुच क्रोध आ जाता। वह कहते, "कैसे आदमी हो तुम! मुझे खाना भी नहीं खाने दोगे? भागो बाहर।" तब उन लोगों को सुरक्षा कर्मचारी लगभग धक्का देकर बाहर निकालते। कुछ क्षणों पश्चात् शांत होने पर निजी स्टाफ से कहते, "भाई; ऐसे धक्का मारकर उनका अपमान मत करो। मुझे तो क्रोध आ जाता है, तुम लोग तो समझा करो। ये गांवों के भोले लोग हैं।"

तब एक कार्यकर्त्ता को कहते, "जाओ उन लोगों को एक ओर ले जाकर खाना खिलाओ। तब तक मैं आता हूं।"

लोकप्रियता के शिखर पर बैठे चरणसिंह ही ऐसा कर सकते थे। ग्रामीण भारत के लोग उनके इस चरित्र को भलीभांति जानते थे।

अन्तत: वह दिन आ गया। जब जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार विधेयक लागू हो गया, जुलाई 1952। संसदीय सचिव चरणसिंह ने इसे तैयार किया था और अब राजस्व एवं कृषि मंत्री चरणसिंह को यह लागू करना था। उन्हें ज्ञात था कि जमींदार, जो सिर्फ ऐय्याशी जंतु थे, काफी प्रभावशाली थे। उच्चतम न्यायालय तक अपील कर चुके थे। लेकिन न्यायालय ने कहीं एक शब्दी भी हेर फेर करना उचित नहीं समझा। उनके मंत्रीमंडल के सदस्य उनकी लोकप्रियता से जले-भुने बैठे थे। वे जमींदारों की चाकरी किया करते थे। चरणसिंह के लिए तो सता कांटों की ताज थी। उन्हें इस बात का एहसास था। इसलिए विधेयक को लागू करते ही वे भी युद्ध-भूमि में दमखम के साथ उतरे।

जनता को जागरूक करने के लिए तरह तरह से प्रचार आरम्भ किया गया। रेडियो पर भाषण, प्रमुख समाचार पत्रों मे लेख और पूरे प्रान्त में धुआंधार सभाओं में भाषण। गरीबों और शोषितों के मन से जमींदारों का भय दूर करने का हर संभव प्रयास। जनता को समझाया जाता कि कानून और सरकार उनके साथ हैं। सारी भूमि राज्य की है और जिसे आवंटित हो जाये, वह जमींदार को वापस नहीं करनी है। पंचायत राज कानून के अन्तर्गत ग्राम समुदाय को कुछ न्यायिक और प्रशासनिक अधिकार पहले ही सौंप दिये गये थे। एक 'गांव समाज नियम पुस्तिका' प्रकाशित की गई जिसमें पंचायतों को सौंपी गई भूमि से सम्बन्धित उनके अधिकारों और कर्तव्यों का पूरा ब्यौरा था। यह नियम पुस्तिका दूसरे राज्यों के लिए भी आदर्श बन गई।

सरकारी रिकार्ड के मुताबिक 1952 में जमींदारी प्रथा की समाप्ति के बाद निजी स्वामित्व वाली फालतू भूमि, बंजर भूमि, वन भूमि और सार्वजनिक उपयोग की 48 लाख हैक्टेयर भूमि राज्य की हो गई। उसमें से 8 लाख 80 हजार हैक्टेयर भूमि वितरण के लिए गांव सभाओं को सौंपी गई। इन सभाओं में उच्च वर्ग के लोग बहुमत में थे। मंत्रियों और राजस्व विभागों के अधिकारियों की मिलीभगत से अधिकांश जमीन इन्हीं उच्च वर्ग के लोगों ने हड़प ली। बाद में जब वे मुख्य मंत्री बने तो इस सम्बन्ध में जांच की गई। तब पता लगा कि 1964 और 67 के बीच दिये गए एक लाख पट्टों में से 90 प्रतिशत में अनियमितता बरती गई थी। यह कांग्रेस के मठाधीशों की करतूत का उदाहरण है।

किन्तु स्वयं के काल में उन्होंने ऐसा नहीं होने दिया। सरकारी मशीनरी को चुस्त बनाया गया। राजस्व अधिकारी उन्हें देख स्वयं भी काम में जुट गये और रिकार्ड समय में अपना कार्य पूरा किया। सारा कार्य अत्यंत जटिल था। दस साल या उससे भी पुराने रिकार्ड देखे जाने थे। शिकायतों और विवादों का अम्बार लग गया था। यह कर्मयोगी अपने अफसरों के साथ रात दिन काम में लगा

रहा।

जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कानून में यह व्यवस्था भी थी कि भूमिधरों और सीरदारों द्वारा चुकाये जाने वाले भू राजस्व अगले 40 वर्षों तक अपरिवर्तित रहेंगे। लेकिन दस साल बाद ही यानि 1962 में ही तत्कालीन मुख्यमंत्री चन्द्रभानु गुप्ता ने जब इसमें 50 प्रतिशत वृद्धि की पहल की तो चरणसिंह ने, जो उस समय कृषिमंत्री थे, उसका तीव्र विरोध किया। यह मामला योजना आयोग के पास पहुंच गया। चन्द्रभानु गुप्त को स्पष्ट कर दिया कि यदि ऐसा हुआ तो वे इस्तीफा दे देंगे। तब कहीं इसे ठंडे बस्ते में डाला गया। लेकिन यह तो बाद की बात है। अभी तो उनकी जंग प्रारम्भिक दौर में थी, जिसकी सफलता से वे बाद में किसान मसीहा बने।

2.

उस समय समाचार पत्रों में चरणसिंह के नाम की धूम मची हुई थी। समाचारों और सम्पादकीय में भविष्यवाणी प्रकाशित हो रही थी कि चरणसिंह किसानों की काया पलट कर देंगे। उन्हें विभिन्न अलंकरणों से सुशोभित किया जा रहा था। पूरे सामंति ढांचे को ध्वंस्त कर दिया गया था। ग्रामीण जनता के प्यार की थाह नहीं थी। गांधी की नीति को असली जामा पहनाने एक और गांधी अवतरित हो गया था।

जमींदारों का मुआवजा निश्चित कर दिया गया था। यह रकम 137.5 करोड़ रुपये तक पहुंच गई थी। भविष्य में फिर से जमीन लेकर आदमी द्वारा आदमी के शोषण को बन्द करने हेतु सख्त नियम बना दिये गए। संयुक्त परिवार द्वारा भी अधिकतम सीमा 30 एकड़ बांध दी गई थी। इसके उल्लंघन की स्थिति में भूमि को सीधे जब्त करने का अधिकार था। अलाभकर जोतों की संख्या न बढ़े, इस दृष्टि से दस मानक बीघे या उससे कम रकबे की भूमि को अविभाज्य घोषित किया गया। बड़े आकार की जोतों को कम से कम दस बीघे से छोटे टुकड़ों में नहीं बांटा जा सकता था। अगले 40 वर्षों तक राज्य द्वारा भू राजस्व को नहीं बढ़ाने की बात थी। विधेयक में कुल मिलाकर 310 अनुच्छेद थे।

और चरणसिंह, जब इतने बड़े वैधानिक कदम को लागू करने में कड़ी मेहनत से जुटे हुए थे, आलोचक अपने अभियानों में लगे हुए थे। विधेयक को लागू करने में कानूनी औपचारिकताएं पूरी करने में समय लगा, इसी कारण जमींदार और उनके चाटुकार दुष्प्रचार में लगे थे-''यह सरकार असक्षम है। विधेयक को तैयार करने में और लागू करने में कितना समय बर्बाद कर दिया।'' लेकिन बाद में सबने देखा कि न केवल विधेयक लागू हुआ बल्कि एक वैकल्पिक व्यवस्था चरणसिंह ने तैयार की। देश के अन्य प्रान्तों के सामने एक आदर्श प्रस्तुत किया जिसकी विश्व में भी प्रशंसा की गई।

कम्युनिष्ट, रूस की प्रशंसा और चरणसिंह की आलोचना करने में आकाश सिर उठाये थे। चरणसिंह ने लेख लिखकर इस तथ्य को गलत साबित किया। उन्होंने लिखा, ''रूस को विकल्प तैयार करने में पूरे दस वर्ष लगे जबकि हमने सिर्फ तीन वर्ष लगाये। ये तीन वर्ष असामान्य दबाव और तनाव भरे थे। हमारे किसानों को यह प्रणाली पूरी तरह से स्वीकार्य होगी, जबकि रूसी प्रणाली दो दशक से अधिक समय बीत जाने के बावजूद किसानों द्वारा आज भी रद्द की जा सकती है, यदि उन्हें स्वतंत्रता मिले।'' यह भविष्यवाणी कितनी सच साबित हुई, यह संसार ने देखा लिया है।

समाजवादी नेता भी, अतिक्रांतिकारी बनने की हौड़ में लगे हुए थे। वे मुआवजे की नीति

की आलोचना कर रहे थे। उनका तर्क था कि भूमि को जब्त कर लेना चाहिए। चरणसिंह ने लिखा, ''जो लोग जब्ती की नीति की वकालत करते हैं, वे आम तौर पर ऐसे संदिग्ध उपायों का हवाला देते हैं कि कैसे अतीत में कोई भूमि हथियायी गई। लेकिन पूर्वजों के पाप के लिए पोते-परपोतों को दंडित करने का औचित्य भी संदिग्ध है, क्योंकि इनमें से कुछ ने तो बाद के दौर में स्वतंत्र-संग्राम में भाग लेकर अपने पूर्वजों के पापों का प्रायश्चित भी किया है।''

समाजवादियों को करारा जवाब देते हुए उन्होंने आगे लिखा, ''यह उपयुक्त हो सकता है कि ये जो जी में आये कहें, लेकिन उन्हीं के नेता आचार्य नरेन्द्र देव ने जमींदारी उन्मूलन समिति को दिये जाने वाले मुआवजे की अधिकतम सीमा पांच लाख रुपये रखी थी जब कि अब ये लोग एक लाख तक की सीमा की बात कर रहे हैं। क्या यही सैद्धांतिकता है जिसके लिए हाय-तौबा मचाई जाये?''

विधेयक में यह प्रावधान था कि काश्तकार चाहें तो तुरन्त भुगतान करके बदले में भूमिधारी के अधिकार और साथ ही लगान में 50 प्रतिशत छूट प्राप्त कर लें या मौजूदा लगान को किश्तों में भुगतान करते हुए सीरदारी या जोत के अधिकारों से संतोष करें। आलोचकों ने कहना शुरू किया, ''बेचारे किसान इतना पैसा कहां से देंगे?''

विरोध के लिए विरोध करने वालों को चरणसिंह ने उत्तर दिया, ''पहले आप किसान की जिन्दगी का अनुभव तो प्राप्त करें। आप नहीं जानते कि किसान को जमीन की कितनी ललक रहती है? भूमि से सुरक्षा की भावना पैदा होती है। भविष्य में लाभ की गारंटी मिलती है। यह एक जीती-जागती अचल संपति है। रुपया-पैसा बेशक चूक सकता है, लेकिन भूमि वैसी ही रहेगी। पीढी-दर-पीढी किसान उस पर निर्भर रहता है। उसकी अपनी जमीन होगी जो अब तक सिर्फ काम करता था। इससे बढ़कर किसान के लिए कोई खुशी नहीं हो सकती।''

उन्होंने उदाहरण देकर समझाया, ''मान लीजिए, किसान के पास पांच एकड़ भूमि है और वह औसतन 25 रुपये लगान के रूप में चुकाये तो एक मुश्त 250 रुपये का भुगतान कर देने पर भविष्य में उसे सालाना 12.50 रुपये ही लगान चुकाना होगा, जिसमें अगले 40 वर्षों तक किसी भी हालत में वृद्धि नहीं होगी। इसका अर्थ है कि 40 वर्षों में वह 500 रुपये कमा या बचा लेगा, जो कि आज भुगतान की जाने वाली रकम का दो गुना है। बैंक दर से 250 रुपये की रकम इस अवधि में सिर्फ 400 रुपये हो पायेगी। भूमिधारी के अधिकार प्राप्त करते ही उसकी भूमि की कीमत बढ़कर प्रति एकड़ कम से कम 500 रुपये की दर से 7500 रुपये हो जायेगी।''

जमींदारों के बारे में उन्होंने कहा, ''उनके साथ रूखाई बरतने की जरूरत नहीं। उन्हें अब जो कुछ भी मिलेगा, नकद मिलेगा और यह इस योजना की दूसरी अच्छी बात है कि वे अब अपनी रकम कारों, अल्सेशियन कुतों या रेस के घोड़ों पर बर्बाद नहीं करेंगे बल्कि उद्योगों में लगायेंगे।''

अधिकतम सीमा निश्चित करके खेतों में काम करने वाले श्रमिकों तक के शोषण को काफी हद तक समाप्त कर दिया गया। उत्तर प्रदेश में न कोई रैयत रही और न ही कोई शिकमी काश्तकार। किसी को जमीन बटाई पर उठाने की अनुमति नहीं थी। 'जमीन किसकी, जोते उसकी' का सिद्धान्त लागू किया गया। गांव में सहकारी खेती न होने पर अलाभकर जोत वाला किसान ही ग्राम-समुदाय से जमीन प्राप्त करने का पहला अधिकारी था। जहां तक भूमिहीनों के हित की दृष्टि से उठाये गए कदम की बात आती है, विधेयक में सारी परती जमीन ग्राम समुदाय को सौंप दी जाने की व्यवस्था होने से जमीन में उनकी निश्चित भागीदारी अब संभव हो गई थी। उन्हें अपने घरों का स्वामी घोषित किया गया था। कल तक इन्हीं घरों से जमींदार बिना किसी मुआवजे के बेदखल कर सकता था।

चरणसिंह के भाषण या लेख लगभग प्रतिदिन सुने या पढे जाते थे। गांवों में कुटीर उद्योग लगाने की आवश्यकता बता रहे थे। ऐसे अकाट्य तर्क और आंकड़े प्रस्तुत कर रहे थे कि विरोधियों

के पास कोई उत्तर नहीं था। उनका कहना था कि अपनी उर्जाओं को विकेन्द्रीकृत उद्योग की ओर मोड़ना है जो बेरोजगारी के लिए एकमात्र रामबाण है। उद्योग और कृषि के बीच सही संतुलन रखने की आवश्यकता पर बल देते हुए कृषि पर आश्रित आबादी से अच्छे खासे प्रतिशत को उद्योगों की तरफ ले जाने का आह्वान किया।

जमींदारों के एक नेता ने विधानसभा में बड़े भोलेपन से सुझाव पेश किया कि इतने बड़े विधेयक के विरोध को देखते हुए सरकार एक ऐसा छोटा विधेयक ला सकती है कि काश्तकार अपने लगान का दस गुना जमींदार को चुकाकर उसी से सीधे भूमि के स्वामित्व का अधिकार प्राप्त कर ले। जमींदार भी इसका स्वागत करेंगे। चरणसिंह ने इसका कड़ा प्रतिवाद करते हुए कहा, "इससे ग्राम समुदाय को कोई जमीन नहीं मिलेगी। राज्य का भूमि पर से बुनियादी हक समाप्त हो जायेगा। अत्याचारी जमींदार, जिन्होंने अन्तहीन अत्याचार किये तथा दमन की शिकार रैयत, जो लम्बे समय से यातना भोगती रही, दोनों ही खत्म होने को हैं, उनके स्थान पर 'किसान' उदय हो रहा है। एक झटके में शोषण को समाप्त कर दिया गया है तथा गांव के किसी भी आदमी को अपनी भूमि, घरबार, कुएं या पेड़ों के लिए किसी और का मोहताज नहीं रहना पड़ेगा। यू. पी. के विस्तृत गांवों में कहीं अब कोई जमींदार या रैयत या नम्बरदार नहीं रहा।"

यू. पी. में आर्थिक परिवर्तन की लहर चल पड़ी। ऐय्याशी जमींदारों की आर्थिक भूमिका समाप्त हो गई थी। किसान अपनी जमीन के मालिक बन चुके थे। उनमें आत्म विश्वास और आत्म सम्मान बढ़ गया था। लेकिन यह इतना आसानी से नहीं हुआ। सचिवालय में शिकायतों के अम्बार लग गये। फटेहाल किसान भाग भागकर चरणसिंह के पास पहुंचने लगे। कहीं बड़ी संख्या को राजस्व खातों में दर्ज नहीं किया गया तो कहीं धोखाधड़ी से बेदखल किया जा रहा था।

तब चरणसिंह ने तत्काल दो कदम उठाये। एक आदेश जारी कर बेदखल आसामी या अधिवासी के लिए जमीन की वापसी का दावा दायर करने की अवधि 6 महीने से बढ़कर एक साल कर दी। दूसरा, तहसीलदारों तक को यह अधिकार दिया गया कि मौका-मुआयना करने के बाद किसी व्यक्ति का नाम राजस्व खाते में दर्ज कर लें। इन उपायों से बेदखली पर रोक लगी। लाखों गरीब और बेसहारा लोगों को बिना किसी दिक्कत के अपनी अपनी जमीनों पर कब्जा मिला। फिर गरीबों को तंग करने से धूर्त पटवारी बाज नहीं आ रहे थे। कुछ मामलों में पटवारियों का निर्णय विवाद से परे था। इसका उन्होंने फायदा उठाया। तब उनके सारे अधिकार वापस ले लिए गए। उनका काम था, जो भी परिवर्तन देखें, उसकी रिपोर्ट अपने अधिकारियों को दे दें। खतौनी या खसरा में किसी नाम परिवर्तन की मनाही थी। इससे पटवारी तिलमिला उठे।

जमींदार परजीवी जोंक थे तो पटवारी खटमल। अवसर मिलते ही दोनों किसानों का खून चूसते। जमींदार पहले से नाराज थे, अब पटवारी भी उनके साथ हो गये। मंत्री मंडल के अनेक सदस्य चरणसिंह पर घात लगाये बैठे थे। अब एक अवसर हाथ लगा। चरणसिंह को 'सबक' सिखाने ये सब एक हो गये। पटवारियों की संख्या 27 हजार थी। राजस्व प्रशासन की महत्वपूर्ण कड़ी। समस्त पटवारी फरवरी 1953 में राज्यव्यापी हड़ताल पर चले गए। उनकी तीन प्रमुख मांगे थी-

प्रथम-अधिकार कटौति का आदेश वापस लिया जाये।

दूसरी-वेतनमान की दर व महंगाई भत्ता दुगुना किया जाये।

तीसरी-पेन्शन के अधिकार के साथ सरकारी कर्मचारियों का स्थायी दर्जा दिया जाये।

राजस्वमंत्री चरणसिंह का उत्तर था-अंतिम दोनों मांगें जायज हैं। एक दो माह का समय दिया जाये ताकि सरकार उचित विचार करे।" विरोधियों को लगा, चरणसिंह झुक रहे हैं। तब सामन्त और कांग्रेसी नेता पटवारियों को समझौता न करने को उकसाया। चरणसिंह को पूरी तरह नेस्तनाबुध करने की ठान ली गई। पटवारियों ने सामूहिक रूप से त्यागपत्र दे दिये, जो आगामी 4 मार्च से प्रभावी होने वाले थे।

इनमें से 2700 पटवारियों ने त्यागपत्र नहीं दिये थे तथा 2500 पटवारियों ने तुरन्त ही त्यागपत्र वापस ले लिये। बाकी बचे 21800, जिनके त्यागपत्र राजस्व मंत्री चरणसिंह ने एक झटके में स्वीकार कर लिये।

इससे पूर्व फरवरी के प्रथम सप्ताह में चरणसिंह ने एक वक्तव्य जारी किया था, ''राज्य पटवारी संघ ने कुछ समय पहले कुछ मांगें पेश की थी, जिन्हें स्वीकारने में सरकार ने कई कारणों से असमर्थता प्रकट की। फिर भी मैंने आश्वासन दिया था कि सकार सहानुभूतिपूर्वक विचार करेगी। इसी बीच जो राज्यव्यापी आम हड़ताल आयोजित की, उससे लाभ नहीं।''

''इसी बीच एक नई मांग जोर पकड़ने लगी थी कि नये लैंड रिकार्ड मैनअल को वापस ले लिया जाये, जो उन्हें उनके बहुत सारे अधिकारों से, जिनके व्यापक दुरुपयोग की हर वह आदमी पुष्टि करेगा, जिसे हमारे देहाती इलाकों के बारे में कुछ भी जानकारी है। पटवार संघ की यह प्रमुख मांग थी जिसके कारण सामूहिक त्याग पत्र की धमकी सामने आई।''

पटवारीगण उत्तर प्रदेश में जो नई लहर चली, उससे वे या तो अनभिज्ञ थे या जान बूझकर अपने संगठन के मद में समझना नहीं चाहते थे। कृषि सम्बन्धी इस क्रांति में उन्होंने रोड़ा बनने का दु:साहस किया। उनकी नजरें अपनी ताकत पर थी और किसान का शोषण करने का विशेषाधिकार बनाये रखना चाहते थे। उनका और उनके आकाओं का विश्वास था कि इतनी बड़ी संख्या से चरणसिंह निपटने में पूर्णतया असक्षम साबित होंगे। भूमि-रिकार्डों का रख रखाव उन्हीं के जिम्मे था। अंग्रेजों के समय से उन्हें विशेषाधिकार प्राप्त थे। स्वयं को वे सरकार का बुनियादी पाया समझते थे।

लेकिन चरणसिंह उनकी धमकी के आगे झुक जायें, तो फिर चरणसिंह कैसे? एक कर्मचारी संगठन का यह रास्ता, उनके लिए घोर अनुशासनहीनता का प्रमाण था। ऐसी मानसिकता वाले कर्मचारी सिर्फ अपना स्वार्थ साधने वाले होते हैं। अतएव चरणसिंह ने समस्त जिला अधिकारियों को आदेश जारी कर दिया कि वे तुरन्त त्याग पत्र स्वीकार कर लें। उन्होंने अपने आदेश में लिखा, ''पटवारी जो उपयोगी काम कर रहे थे, उनकी सराहना में सरकार कभी शिथिल नहीं रही, लेकिन नये ढांचे के तहत नये सिरे से काम शुरू करने का जो यह अवसर आया है, उसका सही उपयोग करने में हिचकेगी नहीं।''

यब सब, किसान-मसीहा चरणसिंह की ईमानदारी, कर्मठता, अनुशासन, लगन तथा पद को चुनौति थी। उनके किसान को सरेआम लूटने की मनमानी थी। सात साल से किसान के लिए रात दिन एक करने के परिश्रम को बिल्कुल नकारा करने की साजिश थी। एक भयानक प्रश्न चिन्ह सम्मुख था। तब वही किया, जो दबंग चरणसिंह को करना चाहिए था। तब न केवल यू. पी. में; बल्कि पूरे देश में भूचाल आ गया था। अखबारों में फिर चरण-चर्चा शुरू हो गई। राज्य भर के किसान, गांव के गरीब खुशी में झूम उठे। अन्य क्षेत्रों में भी इस कदम का व्यापक समर्थन किया गया। तब पटवारी तो क्या, समस्त कर्मचारी स्तब्ध रह गए। विधान सभा में 20 मार्च 1953 को इस सवाल पर जबरदस्त हंगामा खड़ा हो गया। लेकिन शीघ्र ही किसान विरोधी विधायकों ने देखा कि चरणसिंह को भारी बहुमत मिल रहा है तो उनकी बोलती बंद हो गई। इस कदम की प्रशंसा में हौड़ लग गई। एक अजीब माहौल बन गया। तब प्रस्ताव सर्व सम्मति से पारित किया गया। यह दिन चरणसिंह के लिए ऐतिहासिक था।

लेकिन कठिनाइयों का अंत यहीं न था। सामन्ती प्रवृत्ति के नेता और ईर्ष्यालू लोग पंडित नेहरू के पास पहुंचे। इस कदम को उन्होंने चरणसिंह की जिद्द के रूप में रखा। राजस्व प्रशासन को तहस-नहस करने का जिम्मेदार ठहराया। पंडित नेहरू को वे इस बात पर राजी करने में सफल हो गये कि मुख्य मंत्री पंत को इस सवाल पर पुनर्विचार के लिए लिखें। तब पंडित नेहरू ने 17 अप्रेल 1953 को मुख्य मंत्री पंत को लिखा, ''जहां लोगों की एक बड़ी तादाद से निपटना हो, वहां ऐसी नीति का अपनाया जाना अविवेक सा प्रतीत होता है जो किसी भी तरह के समाधान

पर रोक लगा दे तथा उन्हें ना उम्मीदी की तरफ धकेल देना अच्छी बात नहीं होगी। हमें भरसक यह कोशिश करनी चाहिए कि बाद में कटुता और क्षोभ की कोई लकीर न रह जाये।''

पंडित पंत ने राजस्व मंत्री चरणसिंह से बात की। नेहरू के पत्र का हवाला दिया। किन्तु चरणसिंह टस से मस होने को तैयार न थे। उन्होंने पंत से कहा, ''यदि हम अभी विचलित नहीं हुए तो अगले दस साल तक सरकारी कर्मचारी हड़ताल पर जाने या सरकार के नाम धमकियां जारी करने की बात सोचेंगे भी नहीं।''

उनकी यह भविष्यवाणी खरी उतरी। 10 साल ही नहीं, 13 साल तक। 1966 में जब उत्तर प्रदेश में मुख्यमंत्री श्रीमती सुचेता कृपलानी थी, राज्य कर्मचारियों ने हड़ताल की थी। एक समय तो ऐसा आया कि नौ सप्ताह की अवधि के लिए प्रशासन ठप्प हो गया था। वह भी चुनावों के ठीक पहले। उस समय हड़ताल से निपटने के लिए चरणसिंह ने जो सुझाव दिये, वे माने नहीं गये थे। आपसी द्वेषता के कारण मंत्री मंडल में उनकी आवाज लगभग अकेली पड़ गई। तब से कर्मचारियों में अनुशासनहीनता बढ गई और वे कामचोर हो गये। अवसर का फायदा उठाकर स्वार्थ हल करन की प्रवृत्ति घर कर गई थी। बाद में सुचेता कृपलानी ने पश्चाताप भी किया था। बहरहाल...

चरणसिंह झुके नहीं। पटवारियों को घर बैठा दिया था। उसी दिन से यू. पी. में 'पटवारी' नाम का अंत हो गया। पटवारियों की जगह काम करने को लेखपाल के पद का सृजन किया गया। उनके अधिकार सीमित रखे गये। लेकिन यह कितना दुरूह कार्य था। लेखपालों की नियुक्ति, प्रशिक्षण और काम संभालने में लगभग नौ महीने लगे। करीब 13000 लेखपाल नियुक्त किये गये। यह पहला अवसर था जब राजस्वमंत्री ने स्पष्ट निर्देश दिया कि अनुसूचित जातियों के लिए इनमें 18 प्रतिशत का आरक्षण किया जाये। यद्यपि योग्य उम्मीदवार नहीं मिलने से 5 प्रतिशत की ही नियुक्ति हो सकी। इससे पूर्व तो पटवारियों में एक भी हरिजन नहीं था। राजस्वमंत्री चरणसिंह ने भविष्य के लिए आदेश जारी किया कि 36 प्रतिशत रिक्त स्थान सावधिक रूप से हरिजनों को मिलेंगे ताकि आगे के लिए रास्ता बने।

सामन्त, पटवारी और उनके नेता, चरणसिंह से बहुत रुष्ट थे। उन्हें सपने में भी यह उम्मीद नहीं थी कि वे घर बैठ जायेंगे। तब निराश पटवारियों ने इस मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय में अपील की। कुछ नहीं हुआ। जैसा चरणसिंह चाहते थे, ग्राम प्रशासन के पुनर्गठन का काम जारी रहा।

विरोधियों की बौखलाहट बढ गई थी। मंत्री मंडल के सहयोगी चरणसिंह की प्रशासनिक क्षमता देखकर हीन-भावना से ग्रसित हो गये थे। सचमुच वे अत्य विक्षुब्ध थे हालांकि ऊपर से लेबल समाजवाद का लगाये थे। उन्हीं दिनों कुछ उप चुनाव सम्पन्न हुए थे और उनमें से कुछ सीटें कांग्रेस हार गई थी। ठाकुर हुकुमसिंह, जो चरणसिंह से पहले राजस्व मंत्री थे, इसके लिए सीधा चरणसिंह को जिम्मेदार माना। उन्होंने मुख्यमंत्री पंडित पंत को पत्र लिखा कि कांग्रेस के पराजय के मुख्य कारणों में पटवारियों के सम्बन्ध में कांग्रेस की नीतियां, भविष्य में जमीन बटाई पर देने पर लगाई गई रोक और जोतों की चकबन्दी योजना शामिल है। इससे साबित होता है कि ठाकुर साहब भूमि सुधार की नीति से नाखुश थे।

ठाकुर हुकुमसिंह के पत्र की जानकारी कांग्रेस के पराजित उम्मीदवारों को भी लगी। उनमें से एक भगवानदीन मिश्र ने चरणसिंह को पत्र लिखा, ''चौधरी साब, ज्यादातर ब्राह्मण, और ठाकुर, जिनमें से कुछ के पास तो 200 से 400 बीघा तक जमीन थी, कांग्रेस के विरोध में लगे हुए थे। वे अपने शिकमी काश्तकारों को बेदखल करने में लगे हुए थे जबकि सरकारी आदेश के तहत बेदखली रोकी जा चुकी थी। शिकमी काश्तकार या वास्तविक काश्तकार भी, जिनके नाम राजस्व रिकार्ड में दर्ज नहीं थे, कांग्रेस से नाराज थे क्योंकि उनका भविष्य अनिश्चित था। जबरन बेदखली का संकट सामने था तथा कुछ को बेदखल किया भी जा चुका था।''

चरणसिंह ने इस पत्र को मुख्यमंत्री पंत के पास अग्रसारित कर दिया। तभी पराजय के कारणों

पर विचार के लिए मंत्रीमंडल की बैठक बुलाई गई। बैठक में समाजवादी कहे जाने वाले मंत्री डा. सम्पूर्णानन्द ने अपना लिखित मूल्यांकन प्रस्तुत किया-

"मुख्यमंत्री, हाल के उपचुनावों में कांग्रेस को जो गंभीर पराजय झेलनी पड़ी, उसके बारे में, हरेक की तरह मैं भी सोचता रहा हूं। यह मानना अर्थातिरेक होगा कि हर जगह की घटना के लिए बिल्कुल एक ही कारण जिम्मेदार है। खास-खास परिस्थितियां हैं जिन्होंने परिणामों को स्पष्टत: प्रभावित किया है। इलाहाबाद और बदायूं के मामले इस सम्बन्ध में सहज ही दिमाग में आ जाते हैं। आम चुनावों के दौरान आम तौर पर मुसलमानों का जो व्यवहार देखने में आया, वह इतना महत्वपूर्ण है कि कोई उसे नजर अन्दाज नहीं कर सकता। आम मुसलमानों के सवाल को दर-किनार भी कर दें तो यह एक विवाद रहित तथ्य है कि 1937 से हम अंसारी समुदाय को हर तरह से मदद पहुंचाने के लिए प्रयत्नशील रहे हैं। हमने केवल उनके आर्थिक कल्याण के प्रति ही विशेष चिंता नहीं दिखाई बल्कि उनकी शिक्षा पर भारी रकम भी खर्च की। इस प्रयास में हद से बाहर जाकर हमने मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था मुस्लिम लीग को विरोधी बना डाला, जिसने हम पर आरोप लगाया कि हम अपने राजनैतिक उद्देश्यों के लिए मुस्लिम समुदाय में फूट डाल रहे हैं।

तब भी अंसारियों ने इलाहाबाद में लगभग एक होकर उस व्यक्ति के पक्ष में कांग्रेस के विरुद्ध वोट डाले, जो कभी जाना-माना मुस्लिम समर्थक नहीं रहा। यह एक ऐसा तथ्य है जिसका स्थानीय निकायों और विधान सभा के आगामी चुनावों में बढा-चढाकर महत्व दिया जायेगा। हमें इस पर पूरा ध्यान देना ही होगा। इसके सभी पहलुओं पर खुली बहस से भागना कर्तव्य के प्रति एक बहुत बड़ी चूक होगी।

सवाल के दूसरे पहलू भी हैं जिनकी देहाती क्षेत्रों में अधिक प्रासंगिकता है। जो निकट और दूर भविष्य में सार्वजनिक मामलों पर भारी प्रभाव डालने के लिए बाध्य है। हमने उस मनौविज्ञान की घोरतम उपेक्षा करते हुए अपना महान प्रयोग शुरू किया है जिसके नियम राजनैतिक पार्टियों की मर्जी पर कतई बदले नहीं जा सकते, उसी तरह जैसे समुद्र की लहरों ने राजा केन्यूट के हुक्म नहीं माने। चीन और रूस की भूमि सुधार योजनाएं थी, लेकिन उन्होंने उन्हें समाप्त करने की सावधानी बरती, जो बेदखल थे। रूस ने तो उन्हें एक मुश्त खत्म कर दिया। चीन में उसी तरह सुनियोजित ढंग से उन्हें खत्म नहीं किया गया, लेकिन नागरिक सुविधाओं और कुछ हद तक नागरिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया। इसने उन्हें विक्षुब्ध होने की स्थिति में भी आबादी का हानिकारक हिस्सा नहीं रहने दिया। भारत में जमींदारों की आर्थिक क्षति हुई है तथा प्रतिष्ठा और प्रभाव उन्होंने गवाया है। उनमें से जिन्हें गांवों में रहना है, वे कई मामलों में घोर यातना झेलने के लिए बाध्य हैं लेकिन हमने उन्हें वोट देने का अधिकार दे रखा है, यानी हमें सता से वंचित कर देने की शक्ति उनके पास है। ऐसा कोई कारण नहीं कि वे हमारी शासन सता के विरुद्ध एक वर्ग के रूप में एकजुट न हों।

एक अच्छी खासी तादाद उन मध्यमवर्गीय काश्तकारों की भी है जो हमारी भूमि सुधार नीति से प्रभावित हुए हैं और सोचते हैं कि जमीन और आमदनी का काफी बड़ा हिस्सा छिन जाने का खतरा उनके सिर पर है जिसके उपभोग करने की इजाजत कुछ साल पहले का कानून उन्हें देता था। यह हो नहीं सकता कि हमारे और उनके बीच कोई ज्यादा प्रेम-भाव रह गया हो। हमें यह जरूर याद रहे कि उनकी संख्या बहुत ज्यादा है और देहातों में आज भी उनका प्रभाव है। उनकी संख्या के लिहाज से ठीक ठीक जितना होना चाहिए, उसके अनुपात से शायद कहीं ज्यादा। हमने प्राथमिक स्कूलों के शिक्षकों को विरोधी बना लिया है। हम क्यों नहीं उनकी मांगें मंजूर कर सकते, इसकी वजह हमारे नजरिये से पूरी तरह जायज हैं लेकिन जैसा कि हम जानते हैं, किसी बहस का औचित्य आधार वाक्यों पर निर्भर करता है तथा जो हमारे आधार वाक्यों को स्वीकार नहीं करता जैसे कि अल्प वेतन भोगी सरकारी कर्मचारी निश्चित रूप से नहीं करते वह हमारे निष्कर्षों

को स्वीकार नहीं करेगा। हमने फिलहाल उनके विरोध को तो खंडित कर दिया है लेकिन भीतर पल रहे क्षोभ और गुस्से को दूर नहीं किया है जो अवसर पाकर कभी भी फूट पड़ने को तैयार है। यह हो सकता है कि पटवारियों को समाज का ऐसा कोई प्रतिष्ठित तबका जुटाने में सफलता नहीं मिले, जो खुले तौर पर उनकी हिमायत करे लेकिन उनका एक अच्छा खासा समूह है, देहाती स्तर के लिहाज से वे शिक्षित हैं और सामाजिक तथा आर्थिक बंदिशों के चलते एक जुट हैं। उनका अच्छा खासा प्रभाव है, खास तौर से उन समुदायों के सदस्यों पर जिनसे वे आते हैं। अभी हाल ही में चरणसिंह ने गाजियाबाद में कहा था कि उनकी दृष्टि में, दूसरे शब्दों में सरकार की दृष्टि में जो एक लक्ष्य है, वह है साहूकारों को समाप्त करना। इसका अर्थ विरोधियों का एक और वर्ग पैदा करना है, जो प्रभावशाली भी काफ़ी है। कुल मिलाकर स्थिति यह है कि व्यवहारत: हमने हर ऐसे वर्ग को अपना विरोधी बना लिया है, जिसके पास शिक्षा, सम्पदा व सामाजिक दर्जा है और फलत: जो प्रभावशाली है। प्रसंगवश यहां यह कतई भुलाया नहीं जाना चाहिए कि ये लोग ही शांति और व्यवस्था के संरक्षण में कभी जाहिर तौर पर शक्तिशाली तत्व थे।

सवाल का एक और पहलू है जिस पर अवश्य ही विचार किया जाना चाहिए, हालांकि इसका उल्लेख तक करने को प्रतिगामी कदम समझ लिया जा सकता है। विवेकी प्रशासक हर तत्व को आत्मपरक और वस्तुपरक परिस्थितियों में रखकर जांचता है, भलेही उसे यह चाहे जितना अरुचिकर लगे। जिन वर्गों का मैंने ऊपर जिक्र किया है वे मोटे तौर पर ब्राम्हण, राजपूत, भूमिहार, कायस्थ और वैश्य समुदाय से सम्बन्ध रखते हैं। इन जातियों और उपजातियों को आमतौर पर 'ऊंची जातियों' के समूह में रखा जाता है। जो उपाय हमने किये हैं, और स्पष्टत: करना चाहते हैं उनमें निश्चित रूप से ऊंची जातियों के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव डालने की प्रवृत्ति है। यहां यह याद रखना जरूरी है कि विगत काल में कांग्रेस आमतौर पर इन्हीं ऊंची जातियों के लोगों से बड़े पैमाने पर समर्थन जुटाती रही है। वे सांस्कृतिक रूप से हमारे नेतृत्व से जुड़े रहें तथा हम वस्तुत: उन्हीं के कंधों पर सता तक पहुंचते हैं।

अब हम देखें कि दूसरी तरफ हमारे लाभ क्या है? अनुमानत: हमारे सार्वजनिक कानूनों ने भूमिहीनों और बहुत ही कमजोत रखने वालों को लाभ पहुंचाया है। ऐसे लोगों में जो भारी संख्या में हैं, मोटे तौर पर पिछड़े वर्ग के हैं। सदियों के क्षोभ और दमित भावनाओं की उत्तेजना ने उन्हें औरों से अलग थलग कर रखा है। शोषित संघ जैसे संगठन के नेतृत्व द्वारा वे सक्रिय होते रहे हैं जबरदस्त कांग्रेसी नेतृत्व के प्रति अविश्वास की भावना उनमें घर किये हुए हैं। हम उन्हें चाहे जो भी सहूलियतें प्रदान करें, वे सामुदायिक तौर पर हमारे शिविर में आने वाले नहीं। पूरी संभावना है कि इलाहाबाद में अंसारियों के साथ जो हमारा अनुभव रहा, उसी की पुनरावृत्ति उनके साथ हो। जिस प्रकार का नेतृत्व आसानी से उन तक पहुंच सकता है, उनका प्रतिनिधित्व प्रजा समाजवादी पार्टी और कम्युनिस्ट पार्टी जैसे दल करते हैं।

इसका यह अर्थ नहीं कि स्थिति निराशाजनक है। इसमें यही अर्थ निकलता है कि हमें एक स्पष्ट निर्णय लेना है। स्थिति को हाथ से जाने देना न केवल उप चुनाव में पराजय को आमंत्रण देना और फलस्वरूप ग्रामीण क्षेत्र में प्रभाव खो देना है, बल्कि अनियोजित क्रांति को खुला छोड़ देना है जो पूरे सामाजिक ढांचे को ही उड़ा ले जायेगी। जातियों और वर्गों के बीच असली खूनी लड़ाई ठन जायेगी और अब तक हमने जो कुछ हासिल किया है, उसका बहुत सारा भाग यों ही नष्ट हो जायेगा। मैं कह नहीं सकता कि उस विध्वंस के बाद चीजें कि सक्ल में होंगी। अत: हम जुझारू शक्तियों को विकास की धाराओं में लगने का पक्का इरादा बना लें। पिछड़े वर्गों के उत्थान का काम रुक नहीं सकता। उन्हें मदद मिलनी है। वैसे लोगों के साथ सांस्कृतिक और बौद्धिक समानता हासिल करने में, जो अब तक इन सुविधाओं का उपयोग करते रहे हैं और फिर अवश्य ही उनकी आर्थिक स्थिति के विकास के उचित अवसर भी जुटाये जाने हैं। लेकिन इसके साथ ही, उच्च वर्गों को लुभाने का खेल भी जरूर खत्म होना है। हमें किसी भी तरह उनका विश्वास

फिर से जीतना है। अगर लेनिन के नेतृत्व में सोवियत लोग एन. ई. पी. को अपना सकते थे, तो कोई कारण नहीं कि हमारा नेतृत्व वर्ग उसी गरिमा से इस काम को अंजाम नहीं दे सके।

मैं इस टिप्पणी के साथ सुझाव नहीं पेश कर रहा हूँ कि क्या क्या कदम उठाये जाने चाहिए, लेकिन अगर स्थिति के मेरे पिछले विश्लेषण को सारत:सही समझकर स्वीकार किया गया तथा पिछले पैराग्राफ के अन्त में सुझाये गये सिद्धान्तों को अपनाया गया, तो उन्हें प्रयोग में लाने के लिए आवश्यक उपाय ढूंढ निकालना हमारे लिए संभव होना चाहिए। नेक इरादे रखने वाली कोई सरकार अधिक समय तक नहीं चलती अगर वह ऐसी नीतियां अपनाती है, जो नये मित्र दिये बगैर पुराने मित्रों को दूर कर देती है।

हस्ताक्षर
सम्पूर्णानन्द

तो यह थी लम्बी टिप्पणी डा. सम्पूर्णानन्द की। शायद चिंतन की मुद्रा ओढकर बौद्धिकता की ओर बढ़ने का प्रयास था। यह इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि सम्पूर्णानंद स्वयं-भू समाजवादी नेता थे और पंडित पंत के बाद यू. पी. के मुख्य मंत्री बने थे। तत्कालीन शिक्षा मंत्री सम्पूर्णानंद की यह टिप्पणी सता के कुरूप चेहरे को प्रकट करती है जो सफ़ेद लिबास में छुपाया जाता है। यह इस बात का प्रमाण भी है कि कांग्रेस के समाजवादी चेहरे, सामन्तों, पूंजीपतियों से मिलकर कितने विभत्स थे। समाज के वर्ग-भेद ढांचे को ज्यों का त्यों रखने वाले यही खुमैनी चरणसिंह के लिए जातिवादी होने का फतवाजारी करते थे। तब चरणसिंह को, ग्रामीण भारत के लिए कुछ करने हेतु कितनी मुशीबतें झेलनी पड़ी होंगी, इसकी कल्पत्रा की जा सकती है।

इसी प्रकार ठाकुर हुकुमसिंह का पत्र भी चरंणसिंह को दोषी ठहराता है। उनके ही क्षेत्र के पराजित उम्मीदवार भगवान दीन मिश्र का पत्र यह बतलाता है कि कांग्रेस को जमींदारों और ब्राम्हणों ने वोट नहीं दिये। किसानों ने कांग्रेस को इसलिए वोट नहीं दिये कि उन्हें आंवटित जमीन जमींदार वापस छीन रहे थे और उस जिले के प्रभारी मंत्री ठा. हुकुमसिंह थे। यह आजादी के सिर्फ छ: साल बाद की बात है। तब तक सिर्फ एक बार आम चुनाव हुए थे। यह कितना हास्यास्पद लगता है कि गरीब किसानों, पिछड़ों और हरिजनों के लिए लड़ने वाले चरणसिंह को 'कुलक' कहा गया और जातिवादी करार दिया गया।

डा. सम्पूर्णानंन्द की टिप्पणी का सीधा सा अर्थ निकलता है कि कांग्रेस ऊंची जातियों की जमात है, जिससे भूमि सुधार कार्यक्रम ने कांग्रेस को इन लोगों से दूर कर दिया है। सम्पूर्णानन्द का अभिजात संस्कार यह मानने को तैयार नहीं था कि ये भूखे लोग समाजवादी पार्टी या कम्युनिस्ट पार्टी को छोड़कर कांग्रेस के साथ आ जायेंगे। किन्तु ऐसा हुआ नहीं। इतिहास गवाह है कि कांग्रेस में रहते ही यह पिछड़ा वर्ग अटूट चट्टान की तरह चरणसिंह के पीछे खड़ा हो गया था। जब चरणसिंह को कांग्रेस छोड़ने को मजबूर किया गया और वे राजनैतिक रूप से मजबूत होते गये, समाजवादी और कम्युनिस्ट पार्टी का आधार ही समाप्त होता चला गया। लेकिन डा. सम्पूर्णानंन्द की राय में सारी मुशीबत की जड़ चरणसिंह थे, जिनकी वजह से कांग्रेस हार रही थी। डा. सम्पूर्णानन्द की भविष्यवाणी कितनी झूठी और हास्यास्पद थी, यह नीचे लिखी घटना से भी साबित हो जाता है।

पुराने बनारस राज्य में जुलाई 1953 से भूमि सुधार और जमींदारी उन्मूलन कानून लागू होना था। वहां के विधायक विद्रोही बन कर कांग्रेस छोड़ चुके थे। किन्तु अब एक सम्मेलन में वापस कांग्रेस में आना चाहते थे। इस सम्मेलन में चरणसिंह को आमंत्रित किया गया। चरणसिंह को बनारस राज्य में स्थित भदोही का सार्वजनिक सभा में भाषण देना था। बनारस जिला कांग्रेस कमेटी का नेतृत्व उच्च वर्ग के एक व्यक्ति के हाथ में था, जो चरणसिंह के कानून के विरुद्ध था। उसने डा. सम्पूर्णानन्द और पंडित कमलापति त्रिपाठी को पत्र लिखकर आग्रह किया कि चरणसिंह को इस सभा में ओने से रोका जाये। उसका तर्क था कि सभा गैर कांग्रेसी नेताओं ने बुलाई है। जबकि भदौही की यह सार्वजनिक सभा जमींदारी उन्मूलन और भूमिसुधार कानून लागू होने के सिलसिले

में थी।

पंडित कमलापति त्रिपाठी ने चरणसिंह को पत्र लिख कर न जाने का आग्रह किया। चरणसिंह ने यह आग्रह ठुकराते हुए स्पष्ट लिखा कि भूमि सुधार संबंधि सभा में उनका जाना आवश्यक है। एक नोट मुख्यमंत्री पंत को भी भेजा जिसके साथ पंडित कमलापति को दिये गए उत्तर की प्रति भी थी। पंत ने भदौही जाने की स्वीकृति दे दी। सप्ताह भर बाद ही जिला कांग्रेस कमेटी ने चरणसिंह के विरुद्ध निंदा प्रस्ताव पास कर प्रान्तीय कमेटी को अनुशासनात्मक कार्यवाही करने के लिए कहा।

इससे पूर्व भी वाराणसी में ऐसा ही हुआ था। राज्य व्यापी अभियान के तहत चरणसिंह सभी जिलों में सार्वजनिक सभाएं करके भूमि सुधारों के बारे में जनता को सम्बोधित कर रहे थे। इन सभाओं में ग्राम पंचायत प्रतिनिधियों, राजस्व अधिकारियों और कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं को आमंत्रित किया जाता था। जिला कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष पंडित श्यामधर मिश्र तो जले-भुने बैठे थे। उन्होंने चरणसिंह की सभा में प्रमुख कांग्रेसी नेताओं को भाग लेने से रोक दिया था। इन घटनाओं से यह समझा जा सकता है कि उपचुनावों में कांग्रेस की पराजय क्यों हुई?

चरणसिंह का विरोध कांग्रेस के भीतर बहुत था। सामन्ती वर्ग या उच्च वर्ग के विधायक प्रकट रूप में तो कानून का समर्थन कर रहे थे लेकिन अन्दर वे इसकी धज्जियां उड़ाने का षडयंत्र रचते रहते थे। कानून के अनुच्छेद 237 के अन्तर्गत कुछ सीमाएं थी जिसके द्वारा पूर्व जमींदार अधिवासियों को बेदखल कर सकते थे। इस अनुच्छेद का फायदा कुछ कांग्रेसी भी उठाना चाहते थे। चरणसिंह का कहना था कि इस अनुच्छेद का फायदा नहीं उठाया जाना चाहिए। उन्होंने पंडित पंत को एक नोट में लिखा, "मुझे जिस बात ने दु:खी किया है, वह तथ्य यह है कि सम्बद्ध सवालों पर बहस के दौरान जो विचार व्यक्त किये गए, वो उस वातारण के लिए बिल्कुल बेमेल थे, जिसमें कांग्रेसी कर्मी पिछले साढे तीन दशक से सांस लेते काम करते रहे हैं। समाज के खास-खास वर्गों और तबकों का उल्लेख किया गया है, बिना यह सोचे-समझे कि हम समग्र जनता का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह भुला दिया गया है कि हम लोग तेजी से बदलते गतिशील युग में रह रहे हैं। जहां तक भूमि सम्बन्धी मोर्चे का सवाल है, उत्तर प्रदेश में पहल का सूत्र अभी तक हमारे हाथों में है। इस बात को हमारे पुराने शत्रु भी स्वीकार करते हैं। जैसे ही यह सूत्र दूसरों के हाथों में जायेगा, कांग्रेस विगत की वस्तु हो जायेगी।...अगली कतार के हमारे कुछ नेताओं ने कांग्रेस के प्रतिक्रियावादी तत्वों को बाहर नहीं निकाला जो कार्यक्रम में रोड़ा अटका रहे थे बल्कि उनका सारा रोष तो मुझ पर उतार दिया। मैंने प्रशंसा की उम्मीद नहीं की थी लेकिन अकल्पनीय ढंग से भी मैंने उस निंदा की अपेक्षा नहीं की थी, जिसका मुझे सामना करना पड़ा था।"

चरणसिंह ने अनुच्छेद 237 को हटाने की वकालत की। पंत सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होंने इस बारे में सर्वेक्षण कराया। सर्वेक्षण रिपोर्ट में चरणसिंह के तर्कों की पुष्टि हुई। तब मुख्यमंत्री पंत ने आदेश जारी किया, "राजस्वमंत्री को उनके सूझ बूझ भरे नोट के लिए धन्यवाद।...मैं राजस्वमंत्री द्वारा की गई टिप्पणियों की प्रभाविता की भरपूर सराहना करता हूं।...यह विषय महत्वपूर्ण है और इसे मंत्रीमंडल के समक्ष रखा जा सकता है।"

डा. सम्पूर्णानन्द, ठाकुर हुकुमसिंह और ठाकुर हर गोविन्दसिंह अधिवासियों को स्थायी अधिकार प्रदान करने के बिल्कुल विरुद्ध थे। चरणसिंह ने बार बार प्रयत्न किया कि अधिवासियों के पक्ष में आदेश जारी किया जाये लेकिन सफलता नहीं मिली। सम्पूर्णानन्द जान बूझकर मंत्रीमंडल की बैठकों में अनुपस्थित रहने लगे। गरीब किसान के साथ होते अन्याय को देखकर चरणसिंह बहुत दु:खी हुए। वे मुख्यमंत्री पंत के पास गये और राजस्व विभाग छोड़ने की पेशकश कर दी।

"यह क्या कर रहे हो? यह कैसे हो सकता है?" पंत उलझन में पड़ गये। उन्होंने चरणसिंह के सामने ही तीनों मंत्रियों को बुला भेजा। लेकिन उनमें दो ही उपलब्ध थे. उनके आते ही मुख्यमंत्री पंत ने बात शुरू की-

"मैं खूब सोच विचार कर लेने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि अपने विधेयक या

प्रस्ताव के जरिये चरणसिंह जो उपलब्धि चाहते हैं, वह जनहित में है।''

मुख्यमंत्री के इस दो टूक निर्णय से दोनों मंत्री झटपट सहमत हो गये। मंत्रीमंडल की सहमति से एक अध्यादेश जारी करने का निर्णय लिया गया। अध्यादेश में प्रावधान था कि काश्तकार प्रमुख को चुकाये जाने वाले लगान का पांच गुना चुकाने पर सभी शिकमी काश्तकार सीरदार के दर्जे पर और सर्किल-दर का पंद्रह गुना जमींदार को चुकाने पर सीर जमीनों के सभी काश्तकार यानी सीरदार भूमिधर के दर्जे पर प्रोन्नत समझे जायेंगे।

इससे पहले कि अध्यादेश जारी हो, फिर एक संकट आ खड़ा हुआ। अलगूराय शास्त्री उस समय प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष थे। उन्होंने तुरन्त एक पत्र मुख्यमंत्री को लिखा कि अद्यादेश जारी करने से पूर्व उन्हें भी सुनने का अवसर दिया जाये। अध्यादेश पुन: टल गया। पंडित पंत के साथ शास्त्री की कई बार बातचीत हुई। चरणसिंह भी उपस्थित रहे। बहस लंबी चली। अंत में पंडित पंत ने शास्त्री को राजी कर लिया। तब अध्यादेश जारी हुआ। अलगूराय शास्त्री की आपत्ति थी कि पिछड़ी और अनुसूचित जातियों के किसानों को, जिनका प्रतिशत अधिवासियों में बहुत अधिक था, और अधिकार न दिये जायें। अध्यादेश को केन्द्रीय नेतृत्व ने भी सराहा। पंडित नेहरू ने अपने एक नोट में लिखा,

''यह भूमि समस्या है और हमने जमींदारी और जागीरदारी प्रथा के खात्मे के लिए बहुत कुछ करने का श्रेय अपने ऊपर लिया है, हालांकि भारत के कई हिस्सों में कुछ हद तक यह आज भी मौजूद है। लेकिन इस भूमि सुधार की प्रगति को लेकर हमारे मन में संदेह कुलबुलाता है। नि:संदेह हमने अच्छा किया है और एक खास तरह का बिचौलिया रुखसत हो चुका है। लेकिन कई बिचौलिये आज भी मौजूद हैं। हमारी यह दीर्घ घोषित नीति रही है कि सभी बिचौलिये समाप्त हों और जो किसान खुद जमीन जोतता है, वह उसका मालिक हो।...मुझे गहरा धक्का लगता है जब देखता हूं कि बहुत से किसान आज भी बेदखल हो रहे हैं।''

अधिवासियों से सम्बन्धित अध्यादेश को नियमित अधिनियम बनाने हेतु इसे विचारर्थ विधानसभा में पेश किया गया। तब चरणसिंह ने कहा,

''मौजूदा कानून के तहत अधिवासी 1952 में कानून लागू होने के बाद पांच साल बीत जाने पर ही भूमिधारी के अधिकार प्राप्त कर सकते थे। कई मामलों में जोतदार अधिवासी को बेदखल करके अपनी जोत 8 एकड़ तक बढा सकता था। इस प्रावधान को अब समाप्त किया जा रहा है। भविष्य में सिर्फ भूमिधर और सीरदार होंगे।...सदन को गर्व होना चाहिए कि वह इस प्रावधान को कानून रूप दे रहा है। ऐसा करके इसने देश में कृषि सुधार के क्षेत्र में अग्रणी होने के अपने दावे का औचित्य सिद्ध किया है।''

और तब, समस्त जिला कलेक्टरों को एक गोपनीय आदेश राजस्व विभाग की ओर से जारी किया गया। अन्य बातों के अतिरिक्त इसमें स्पष्ट रूप से कहा गया-''कुछ पूर्व-भूमिधारी जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कानून के अध्याय 9 ए द्वारा लाये गए सुधारों को विफल करने की कोशिश में लगे रहे हैं। उनमें से कुछ ने सुधार लागू होने से पूर्व ही अधिवासियों को अपनी जोत सौंप देने के लिए बाध्य किया है। कुछ ने 'भूल सुधार अभियान' का लाभ उठाते हुए बहुत से मामलों में यह प्रयास किया और शायद आज भी कर रहे हैं कि दर्जअधिवासी जोत पर अपना कब्जा होने की बात से मुकर जायें। राजस्व प्रशासन का दायित्व है कि जहां तक हो सके, वह ऐसे प्रयासों को प्रभावहीन कर दे।''

इस आदेश की अतिरिक्त प्रतियां कलेक्टरों को भेजी गई जो नायब तहसीलदार तक के अधिकारी को वितरित करनी थी। जिला प्रशासन को सख्त हिदायत दी गई कि समस्त राजस्व कर्मचारियों को कानून के प्रावधान समझायें जायें तथा सुनिश्चित करने के लिए इस आशय के हस्ताक्षर तहसीलदार से लिया जाये। जिला कांग्रेस कमेटियों को सलाह दी गई थी कि वे इस बात की निगरानी रखें कि किसी गरीब से जमीन न छीनी जाये।

इसके बाद होने वाले प्रान्तव्यापी दोरों के दौरान विशाल आम सभाओं में चरणसिंह घोषणा करते, ''यदि भूतपूर्व शोषक अधिवासियों को बेदखल करने की कोशिश करें तो किसान अपने अधिकारों के लिए लाठी लेकर खड़े हो जायें। आपके पैर अपने खेत से उखड़ने नहीं चाहिएं'' यह क्रांतिदूत का आह्वान था। क्योंकि उन्हें मालूम था कि कांग्रेस पार्टी में अधिकांश बड़े नेता इस अभियान में किसानों के विरुद्ध थे। तब सभा में तालियों की गड़बड़ाहट से आकाश गूंज उठता। 'चरणसिंह जिंदाबाद' के साथ ही किसान आत्मसाहस से भर उठते।

राजस्व सचिव भी, संयोग से चरणसिंह को ईमानदार और परिश्रमी मिला। पूरी मशीनरी को मुस्तैद कर दिया गया। भूमि रिकार्डों को ठीक करने का अभियान युद्ध स्तर पर शुरू किया गया। यह कार्य अत्यन्तजटिल था। कई क्षेत्रों में 100 साल से भी अधिक पुराना रिकार्ड था। अभियान सुनियोजित ढंग से शुरू किया गया। जिस गांव में जाना होता, वहां पहले छपे हुए पर्चे पहुंचा दिये जाते। किसानों को आमंत्रित किया गया था कि अपने रिकार्ड को नि:शुल्क ठीक कराने के अवसर से चूकें नहीं। खतौनियों की प्रविष्टियां लेखपाल सबके सामने पढकर सुनाता। इस अभियान से गांवों में जन जागरण की लहर चल पड़ी। सामन्ती सरदार या उनके चाटूकारों का प्रचार झूठा पड़ने लगा। आम आदमी का सरकार में विश्वास पैदा हुआ। पटवारियों का भ्रम था कि सरकार रिकार्ड को नहीं संभाल पायेगी, वह दूर होता गया।

तहसीलदार या नायब तहसीलदार को प्रत्येक गांव में जाकर किसानों से पूछताछ करनी आवश्यक कर दी गई थी। जो भी त्रुटियां पाई जाती, वहीं मौके पर उसे दुरस्त करने के आदेश थे। यह बहुत प्रभावशाली साबित हुआ। यह इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि लगभग 34 लाख 6 हजार गलत प्रविष्टियों को ढूंढ कर ठीक किया। यह कार्य विपक्षियों को भी चौंकाने वाला था।

लेकिन फिर भी विधान सभा के अधिवेशन के दौरान लेखपालों पर भ्रष्टाचार के गंभीर आरोप लगाये गए। चरणसिंह ने तत्काल जिला कलेक्टरों को आदेश जारी किया कि जिन विधेयकों को शिकायत थी, उन्हें अपने अपने विधान सभाई क्षेत्र के पांच गांव चुनकर विधायकों की उपस्थिति में ही रिकार्ड की जांच की जाये। कलेक्टरों से मिली रिपोर्टों के अनुसार जांच करने पर आरोप तथ्यहीन पाये गए। तब चरणसिंह ने मुख्यमंत्री को नोट भेजा, उसके मुख्य अंश इस प्रकार थे-

''हमने 1952 के अंतिम चरण में लैंड रिकार्ड्स मैन्युअल को इस कदर संशोधित रूप दिया है कि लेखपाल के पास कोई ऐसे अधिकार नहीं बचे हैं कि वे ऐसी प्रविष्टियां बनायें जो किसानों को बुरी तरह प्रभावित करें। इसीलिए तो पटवारियों ने इस्तीफे दिये थे।..

मुझे हैरानी हुई जब पिछले सितम्बर में कांग्रेस पार्टी के दो विधायकों ने, एक सीतापुर, दूसरे गोरखपुर से,सदन में आम लेखपालों के विरुद्ध अंधाधुंध आरोप लगाये। मैंने दोनों विधायकों को पत्र लिखकर तथ्य मांगे तो किसी ने भी ऐसा नहीं किया।...पार्टी की बैठक में भी मैंने इस बाबत आमचर्चा की थी तो पार्टी कुल मिलाकर संतुष्ट थी किन्तु मैंने जांच कराई। जो रिपोर्ट आई वह इस नोट के साथ संलग्न है।...''

रिपोर्ट में लिखा था, ''विधायक श्री राजाराम शर्मा की उपस्थिति में पांच गांव चुने गये।...श्री शर्मा और तहसीलदार द्वारा जारी हस्ताक्षरित प्रति संलग्न है- यह सचमुच वास्तविक संतोष का विषय है कि जिन छ: गांवों में छानबीन की गई उनमें से किसी एक में भी गलत प्रविष्टि नहीं पाई गई। अन्य दो विधायकों में से एक ने जांच करने का कष्ट नहीं उठाया। दूसरे ने तीन गांवों की जांच की लेकिन उन्हें कुछ भी गलत नहीं मिला।''

ईर्ष्यालू नेता चरणसिंह की नाक में दम किये हुए थे तो सुधार के कार्य से राजस्वमंत्री चरणसिंह देश भर में लोकप्रिय होते जा रहे थे। अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कृषि विशेषज्ञ बुल्फ लेद्जिंस्की ने इस संबंध में जो रिपोर्ट जारी की, उसके अंश इस प्रकार थे:-

''अनेक राज्यों में काश्तकारियां मौखिक आधार पर हैं तथा कोई काश्तकार अपने काश्तकारी के अधिकारों की सुरक्षा के प्रति आश्वस्त नहीं हो सकता, अगर वे लिपिबद्ध न हों। लिखित रिकार्ड

के बिना काश्तकार की सुरक्षा के किसी या सभी प्रावधानों को लागू नहीं किया जा सकता। जमींदारी उन्मूलन और भूमिसुधार कानून लागू किये जाने के क्रम में राज्य सरकार द्वारा आयोजित विशेष अभियान के दौरान उत्तर प्रदेश में लाखों रिकार्ड सुधारे गये या नये सिरे से लिखे गये। यही बात अन्य राज्यों, खासतौर से आन्ध्रप्रदेश, आसाम, बिहार, केरल, मद्रास, मैसूर और उड़ीसा के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता। स्पष्टत: काफी हद तक तत्कालीन राजस्वमंत्री चरणसिंह के संकल्पित नेतृत्व पर आधारित उत्तर प्रदेशीय पद्धति ऐसी नहीं थी कि अन्य राज्यों में अपना ली जाती।''

जमींदारों की पहुंच केन्द्रीय नेतृत्व तक थी। योजना आयोग ने द्वितीय पंचवर्षीय योजना में प्रस्ताव किया था कि कुछ शर्तों पर जमींदार को भूमि पुनर्ग्रहण की इजाजत दी जानी चाहिए। इस प्रावधान से अनेक राज्यों में जमींदारों ने नाजायज फायदे उठा लिये। इससे जो भूमि सुधार के कदम उठाये गये थे वे हमारे ग्रामीण समाज के लिए अभिशाप ही सिद्ध हुए। लेकिन देश के विभिन्न राज्यों के राजस्वमंत्रियों में चरणसिंह अकेले थे, जिन्होंने योजना आयोग की सलाह मानने से स्पष्ट इन्कार कर दिया। भूमि के रिकार्ड में एक भी शिकमी काश्तकार या अतिक्रमणकारी को दर्ज करने पर सहमत नहीं हुए। यही नहीं, एक आदेश जारीकर सभी काश्तकारों और शिकमी काश्तकारों की उनके कब्जे की जमीन से बेदखली पर रोक लगा दी।

जब तक यू. पी. में चरणसिंह राजस्वमंत्री रहे, ठीक चलता रहा, लेकिन बाद में ऐसा नहीं रहा. 1959 में इस्तीफा देने के बाद ठाकुर हुकुमसिंह को पुन: राजस्वमंत्री बनाया गया था। मुख्यमंत्री थे सम्पूर्णानंन्द। दोनों ही जमींदारों और उच्च वर्ग के कृपापात्र थे। तब जमींदारों ने मनमानी शुरू कर दी। राजस्व अधिकारियों ने गांवों में खुली लूट शुरू कर दी। परिणामत: जोतदारों के मुकाबले में श्रमिकों का अनुपात दो वर्षों की अल्पअवधि में ही तेजी से बढकर 8 प्रतिशत से 16 प्रतिशत हो गया था। यद्यपि चरणसिंह को बाद में मंत्रीमंडल में ले लिया गया था, लेकिन राजस्व विभाग उन्हें कभी नहीं दिया गया। ठाकुर हुकुमसिंह 1967 तक राजस्वमंत्री बने रहे। उस दौरान, गांवों के गरीब किसानों का जो शोषण हुआ, उससे चरणसिंह कांप उठे। शायद कांग्रेस छोड़ने के पीछे यह भी एक कारण रहा। बहरहाल....

हां; तो भूमिसुधार का महायज्ञ जारी था। तब यह कर्मयोगी, स्पष्टत: किसान मसीहा बन गया था। सता और जनता के केन्द्र बिन्दु बन गये थे। विरोधी हो या सहयोगी, सबकी जुबान पर चरणसिंह का ही नाम था। अखबारों, विधान सभा के जरिये वे आमजन के मानसपटल पर अंकित हो गये। और तब, चरणसिंह से चौधरी चरणसिंह कहलाने के वास्तविक अधिकारी बन गये। गांव का चौधरी, किसान का चौधरी, राजनीति में चौधरी। प्रत्येक जिले में की गई सार्वजनिक सभाओं में दिये गए उनके भाषण, रेडियो से प्रसारित वार्ताएं, विधानसभा में दिये गए भाषण और जवाब, सब कहीं तो चौधरी साब के नाम की धूम मची हुई थी। विधान सभा में वो हुआ, जो कभी नहीं हुआ। कई ऐसे अवसर आये, जब उनके बोलने का समय पूरा होने के कारण विपक्षी सदस्यों ने भी समय बढाने की मांग की। वे एक साथ खड़े होकर अध्यक्ष से अनुरोध करते कि चौधरी साब को और बोलने दिया जाये ताकि राजस्व अभियान सम्बन्धी अधिक जानकारी मिल सके। उनके मुंह से सदस्य अधिक से अधिक बातें सुनना चाहते थे। देश के संसदीय इतिहास में यह एक अपूर्व उदाहरण है। आज तो पक्ष-विपक्ष को न जाने क्या ग्रहण लग गया कि न कोई सुनना चाहता और न चरणसिंह की भांति कोई तथ्यवार ब्यौरा देने का कष्ट उठाता।

अखबारों में जिज्ञासा, विधान सभा में उत्सुकता और ग्रामीण भारत की श्रद्धा भरी नजरें, जैसे उन्हें घेरे रहती। प्रतिदिन दो कदम आगे बढ़ते, तो उनके नाम से ही भय खाने वाले सहयोगी नेता एक कदम पीछे खींचते। सचिवालय से लेकर गांव ढाणी तक के संघर्ष और हाड़ तोड़ परिश्रम से चरणसिंह पर अत्यधिक मानसिक दबाव बढ गया। परिणामत: उनका पेट बहुत खराब रहने लगा। शुरू में तो वे लापरवाह बने रहे लेकिन जब भूख बिल्कुल बन्द हो गई तो चिंता बढ गई। बेहद थकान महसूस करने लगे। गायत्री देवी को बहुत चिंता रहने लगी। वे पीछे पड़ गई, ''डाक्टर

को क्यों नहीं दिखाते?"

"भई, समय ही नहीं मिलता। देखती नहीं, कितना व्यस्त हूँ?"

"तो क्या अपनी जान ही दे दोगे?" वे क्रुद्ध हो उठी।

"देखो, मौत भी फुर्सत के क्षणों में आती है। अब तो मैं उसे मिलूंगा ही नहीं। क्योंकि मेरे चारों ओर मेरे किसान जुटे हुए हैं।"

लेकिन उन्हें डाक्टर को दिखाना पड़ा। डाक्टरों ने सलाह दी कि कुछ दिन बिल्कुल आराम किया जाये। खाने-पीने में परहेज की हिदायत दी। अभीतक चाय तो वे वैसे ही बहुत कम पीते थे, डाक्टरों ने अब दूध भी बन्द कर दिया था। घीया, पालक और छाछ या दही खाने की सलाह दी। संकल्प के धनी थे। कई दिनों तक दोनों समय घीया की सब्जी खाते रहे। मिर्च-मशाला नाम मात्र के थे। रात को भी दही खाते। डाक्टरों की सलाह पर खरे उतरे।

बाहरी दौरे स्थगित कर दिये थे। लेकिन मन को चैन नहीं था। राजस्व अभियान के दौरान और भूमिसुधार के विभिन्न विधेयकों को तैयार करने में और लागू करने में जो अड़चनें मंत्री मंडल के सहयोगियों से मिली, उससे चौधरी साब चकित थे। बाहर से सैद्धान्तिक रूप से वामपंथी दिखने वाले मंत्री हद दर्जे के प्रतिक्रियावादी थे। इससे वे कई बार बहुत दु:खी हो जाते। वरिष्ठ मंत्रियों द्वारा अपने अपने जिलों और अन्य स्थानों पर जातिवाद को हवा दी जा रही थी। बातचीत और व्यवहार के दोगलेपन को देखकर चौधरी साब कई बार टोकते भी, "हम लोग कांग्रेसी हैं। पूरे देश का हम नेतृत्व करते हैं। इसमें जातिवाद क्यों?" लेकिन वे अनुभव कर रहे थे कि अनेक वरिष्ठ मत्री चाहते थे कि बहुसख्यक समाज सिर्फ शोषित रहे। उन्हें किसी अवसर पर लुभावने नारों से ही बहलाया जा सकता है। ऊंची जातियां ही राज करने के लिए बनी हैं। यहीं उनका चरणसिंह से मतभेद था। आर्य समाज के संस्कार और कबीर की पुकार तब चुनौति बनकर खड़े हो जाते। डा. सम्पूर्णानंन्द द्वारा जो लिखित टिप्पणी मुख्यमंत्री पंत को लिखी गई थी, उससे इस वर्ग की असलियत उजागर हो गई थी। तब झूठी सैद्धान्तिक बहस से उन्हें चिढ़ हो गई थी। घर में लेटे लेटे ही गुनगुनाया करते-

"तेरा-मेरा मनुआं कैसे इक होई रे।
मैं कहता हूं आंखिन देखी, तू कहता कागद की लेखी।
मैं कहता सुरझावन हारी, तू राख्यौ उरझाई रे।
मैं कहता तूं जागत रहियो, तू रहता है सोई रे।
मैं कहता निर्मोही रहियो, तू जाता है मोही रे।
जुगन जगन समझावत हारा, कही न मानत कोई रे।
तू तो रंडी फिरै बिहंडी, सब धन डारे खोई रे।
सतगुरू धारा निर्मल बाहै, वा मैं काया धोई रे।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, तब ही वैसा होई रे।"

और एक दिन उन्होंने मुख्यमंत्री पंत को पत्र लिख ही डाला-

"काफी बड़ी संख्या में शैक्षणिक संस्थाएं हैं जिसके सदस्य इनको चला रहे हैं। उन्होंने इन संस्थाओं के नाम जातीय आधार पर रखे हुए हैं। इन्हें राज्य से मान्यता और आर्थिक सहायता भी मिल रही है। यह नाम हमारे भविष्य के राष्ट्रदीपों के मन-मस्तिष्क को संकुचित बनाते हैं। नये विद्यार्थियों को बलात् प्रतिदिन इस बात की याद दिलाई जाती है कि वह जाति विशेष से सम्बन्धित हैं-एक जाति दूसरी जाति से इन गुणों में अच्छी है या उन गुणों में अच्छी है। और यहीं से उनकी दृष्टि पर सारे जीवन भर के लिए पर्दा पड़ जाता है।

अगर हमारी राजनैतिक दासता के किसी एक कारण को ढूंढकर उसे आरोपित किया जाये तो मैं समझता हूं कि कठोर एवं गहराई तक छुपी जन्म पर आधारित जाति-व्यवस्था ही होगी। इसी व्यवस्था ने कुछ जातियों, उपजातियों को उनकी मातृभूमि की रक्षा के लिए कंधे से कंधा

मिला कर देश के अन्य नागरिकों के साथ साथ मिलकर शत्रु से लड़ने, तलवार खींचने के अधिकार तक से वंचित करके रखा। हिन्दूमत के पुराने सात्विक पाठों से इसे कुछ अधिक लेना-देना नहीं है। जातीय व्यवस्था हमारे समाज में इतने गहरे तक पैठ गई है कि यहां के मुसलमान और ईसाई, जिनके पूर्वज मूलत: हिन्दू ही थे, वह भी इससे अछूते नहीं हैं। हमें यह जानकर और भी दु:ख होता है कि बालिग मताधिकार और आजादी प्राप्ति के बाद इन कीटाणुओं का विष और भी बढ़ता जा रहा है।

सन् 1947 के पूर्व राजनैतिक एवं प्रशासनिक सता जिन व्यक्तियों के हाथों में थी, उनमें जातीय व्यक्ति नहीं थे, या इस देश भर से उनके कोई खून के रिश्ते भी नहीं थे। मत देने का अधिकार नगण्य लोगों तक ही सीमित था।

जैसी, जन्म पर आधारित जातियां चल रही हैं, भूतकाल में इसकी क्या उपलब्धियां थी, क्या नहीं थी, निश्चय ही संकुचित विचार है। लोकतंत्र में इसका स्थान नहीं होना चाहिए। दोनों एक साथ नहीं रह सकते। इनमें से केवल एक ही पनपेगा। यह मनुष्य की सहानुभूति को सीमित और समाज को एक इकाई मानकर उसकी सेवा करने में अयोग्य घोषित कर देती है। यह एक ऐसा वातावरण तैयार कर देती है, जिससे एक जाति को निष्ठावान, कर्मठ व्यक्ति के कार्यों का दूसरी जाति के व्यक्तियों द्वारा कोई सम्मान ही नहीं हो पाता। जातीय भावनाओं पर आधारित आरोप-प्रत्यारोप, अधिकतम असत्य होते हैं, लेकिन अनेक बार आधारहीन नहीं होते, जब फैल जाते हैं, तो पूरा वातावरण ही धीरे धीरे दुषित हो जाता है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि विधायकगण इससे अलग हैं। कई बार जातीयता प्रमुख भूमिका निभाती है। इस प्रकार जनहित द्वितीय स्थान पर चला जाता है। यह भावना, मुझे डर है कि धीरे धीरे राज्य सेवाओं में भी अपना जंग लगाने लगी है।

विदेशी आधिपत्य चला गया है। हमारे विरोध ऊपर उभर कर आने लगे हैं। कोई संयुक्त शत्रु जिससे लड़ा जाये, न बचने से, हम शत्रु के अभाव में अपने बीच में ही शिकार खेलने लगे हैं। (भाषाई सवाल को छोड़कर) जाति सबसे बड़ी केन्द्रीय शक्ति है जिससे हमारी अखण्डता को खतरा है। मेरी तो यह मान्यता है कि यह जन्म पर आधारित जातयीता राष्ट्र विभाजन का प्रमुख कारण थी। यह समय है, जब हम इसके बारे में गंभीरता से विचार करें।

मैं समझता हूं कि सरकारी स्तर पर हमारे सामने दो खुले उपाय हैं। प्रथम तो यह है कि हम इस बात की व्यवस्था कर सकते हैं कि केवल वह व्यक्ति ही विधायिका या राजपत्रित सेवाओं में चाहे राज्य को हों या केन्द्र की, प्रविष्ट किया जायेगा जो एक निश्चित तिथि के बाद अपनी जाति के बाहर विवाह और यदि वह अविवाहित है, तो ऐसा करने का प्रस्ताव करे। हम किसी को बाध्य नहीं कर रहे हैं। केवल इस बात से निश्चित होकर ठोस प्रमाण प्राप्त कर रहे हैं कि जो विधायिका या उच्च सेवाओं में प्रवेश पा रहे हैं, वे अपनी दृष्टि की व्यापकता और अपनी सेवाओं की पूर्ति में जातीय भावनाओं से संचालित नहीं होंगे। मेरे विचार में, आजकल के नौजवान और पढी लिखी लड़कियां इस बात के लिए सहमत हैं।

हमारा पिछला इतिहास अन्य जातियों में विवाह के उदाहरण, प्रतिलोम प्रकार से भी प्रस्तुत करता है। लेकिन यह तो मेरी समझ में भूतकाल का रोना ही होगा। हममें से बहुत से तो इतनी दूर तक जाने को सहमत नहीं होंगे। इसके लिए संविधान में संशोधन की आवश्यकता पड़ सकती है। इसलिए आज हमारी सरकार को इस प्रस्ताव को लागू करने का प्रश्न उठाने का सवाल ही नहीं है। दूसरा कदम जो बहुत सामान्य है, हम यह ले सकते हैं कि, कोई शैक्षणिक संस्थान आदि उसका नाम जाति पर है तो उसे मान्यता नहीं दी जायेगी। मैंने यह सवाल लगभग चार वर्ष पूर्व उठाया था, लेकिन कुछ कानूनी अड़चनें बताई जाने के कारण मामला ताक में रख दिया गया था। मेरे विचार में इसे पुन: उठाया जाना चाहिए। कानूनी अड़चनें साफ की जायेंगी, उन्हें किया भी जाना चाहिए।''

-ह. चरणसिंह 29.9.53

मुख्यमंत्री पंत ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। शायद यह उनके काबू के बाहर था। कांग्रेस के अगली कतार के प्रान्तीय नेता इसे चौधरी साब की सनक मान रहे थे। सिर्फ सता के लिए राजनीति करने वालों को समाज-सुधार से मतलब ही क्या था? एक नेता ने अपनी गतिविधियों से शीघ्र ही इसका जबाब भी दिया। एक दिन चौधरी साब ने अखबार में पढा तो खिन्न हो गये। 'नेशनल हेराल्ड' में समाचार छपा था-

''कानपुर, रविवार। श्री पुरुषोत्तमदास टंडन, भूतपूर्व कांग्रेस अध्यक्ष नवम्बर 21 को कानपुर पधारेंगे। वे उसी शाम बिरहाना रोड़ पर नवनिर्मित खत्री धर्मशाला का उद्घाटन करेंगे।''

उसके कुछ दिन बाद ही पंडित कमलापति त्रिपाठी से सम्बन्धित समाचार आया। उन्होंने एक जिले की ब्राम्हण सभा में भाषण दिया। चौधरी साब हैरान थे। पार्टी स्तर पर किये गये फैसले को जिम्मेदर नेता ही तोड़ रहे थे। चौधरी साब जैसे प्रश्न पूछते, 'यह देश कहा जायेगा? आजादी आये दस साल भी नहीं हुए थे। गांधी की कांग्रेस की यह हालत! और एक दिन उनसे रहा नहीं गया। प्रधानमंत्री पंडित नेहरू को एक पत्र लिखा-

''प्रिय पंडित जी,

काफी समय तक असमंजस में रहने के बाद आपकी सेवा में यह पत्र लिख रहा हूं।

जैसा कि आपने अपने भाषणों में कहा है कि भारत विदेशी आक्रणकारियों का शिकार केवल अपने अन्दर पाई जाने वाली सामाजिक बुराइयों के कारण हुआ, न कि विदेशियों की संख्या, वैभव या सभ्यता की परतरी के सबब। एक अंग्रेज लेखक ने अपनी पुस्तक 'इंग्लैंड का विस्तार' में यह स्वीकार किया है। चाहे ये वास्तविकता आम लोगों की जानकारी में हो या न हो, लेकिन जो लोग सार्वजनिक जीवन से सम्बन्धित रहे हैं, उनके लिए यह रोजमर्रा का एक अहम मसला है, धार्मिक और भाषायी मतभेद और जन्मजाति पर आधारित जातिवाद। मैं आखिरी विषय को अकेला सबसे बड़ी बुराई मानता हूँ, क्योंकि वे हमारी राजनीतिक दासता का कारण बनी और भारत के विभाजन की भी।

जब ऊंची जाति के हिन्दू खुद अपने धर्म को मानने वाले देशवासियों के साथ समानता का व्यवहार नहीं कर सकते, इसलिए कि वो सामाजिक रूप से गिरे हुए हैं तो मुसलमानों का यह सन्देह बिल्कुल उचित और न्यायसंगत था कि अंग्रेजों के चले जाने के बाद हिन्दू बहुमत उन्हें न्यायपूर्वक व्यवहार नहीं दे सकेगा। लेकिन खैर अब तो यह कहानी पुरानी हो चुकी है।

लेकिन अफसोस इस बात का है कि जैसे हमने इससे कोई सबक नहीं सीखा है। जाति-बिरादरी का द्वेष कम होने की बजाय बढ रहा है। शायद बड़े नेता ही नहीं, बल्कि नौकरशाही भी इसका शिकार बन चुकी है। ये बातें पक्षपात और अन्याय की ओर ले जाती हैं। इन्सान के दिलो-दिमाग को संकुचित और अंधा बनाती हैं, दोषारोपण और प्रत्यारोपण, अविश्वास और शंका फैल रही है और अब तो ये बातें राजनीति का एक और-हथियार बनती जा रही हैं।

सवाल कायम है कि इसे कैसे मिटाया जाये?

गौतम बुद्ध के जमाने से अनेकों सुधारक व शिक्षक प्रयत्नशील रहे हैं, लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली। मैं आपकी सेवा में एक सुझाव पेश करने का साहस कर रहा हूँ जिसे पिछले छः साल से अपने तौर पर अपने क्षेत्र में तजवीज करता रहा हूं।

वर्तमान दौर में जाति-बिरादरी, इन्सान की जिन्दगी में शादी के समय ही सामने आती हैं। इसलिए इस बुराई पर वाकई काबू पाना है तो ऐसे कदम उठायें जो जाति-बिरादरी के सम्बन्ध को उसके महत्वपूर्ण सम्बन्ध के मौके पर या शादि-ब्याह के सवाल पर तबाह कर दिया जाये। गोया बुराई को उसके मूल स्रोत पर ही निपटा जाये। नौकरी पाने के लिए हम कई कानूनी सुधार प्रस्तावित करते हैं, ताकि सिर्फ वही लोग नौकरी पा सकें, जो सबसे उतम हों। ये सुधार केवल

उनके शरीर और मस्तिष्क का होता है। लेकिन उसके दिल को नापने का कोई पैमाना नहीं होता, ये पता लगाने के लिए कि उसके दिल की हमदर्दियों का क्षेत्र कितना बड़ा है। उसमें हर वो व्यक्ति समा सकेगा जिनसे उसको अपनी अफ़सरी के कार्यकाल में वास्ता पड़ेगा। मेरी समझ से हमारे देश की जो स्थिति है, उसमें यह जांच तभी पूरी उतर सकती है जब हम कम से कम राजपत्रित नौकरियों में केवल ऐसे लोगों को भरती करें जो अपनी जाति और बिरादरी के संकुचित दायरे से बाहर आकर विवाह करें। इस कानून को बनाकर हम किसी आदमी को उसकी मर्जी के विरुद्ध विवाह करने पर बाध्य नहीं करेंगे, जैसे कि किसी को मजबूर नहीं किया जा सकता कि वो ग्रेजुएट हो जाये। यह बिल्कुल कठिन नहीं होगा कि ऐसे नौजवान उपलब्ध कर लिया जायें।

आज हमारे लड़के और लड़कियां काफी संख्या में कॉलिजों में पढ रहे हैं और वे इस प्रकार के कदम उठाने के लिए तैयार हैं। मैं जन प्रतिनिधियों के लिए भी यही शर्त रखना पसंद करूंगा, बेशक जाति-बिरादरी और विवाह के विषय का यह कानून एक निश्चित तिथि के बाद से ही लागू किया जायेगा जैसे जनवरी 1955। एक अविवाहित व्यक्ति नौकरी पा सकेगा या जन प्रतिनिधि चुना जा सकेगा, लेकिन बाद में यदि वह अपनी ही जाति-बिरादरी में शादी कर लेगा, तो उसे नौकरी अथवा पद से इस्तीफा देना पड़ेगा। विशेष रूप से केन्द्र की नौकरियों के लिए हम विभिन्न भाषाओं के बोलने वालों के बीच विवाह की शर्त पर किसी प्रत्याशी को अधिकारी बना सकते हैं। यह बहुत आवश्यक इसलिए भी हो गया है कि भाषा के विषय में प्रान्तों की अलग स्थापना की बात साफ-साफ चल पड़ी है। ये गुंजाइश किसी संकीर्ण और मुनासिब युक्ति को भी नुक्शान नहीं पहुंचाती है। क्योंकि हमारे शास्त्रों में अनुलूमा शादियों को पवित्र घोषित किया गया है। वास्तविकता यह है कि हम आज के युग की जातियों को विभिन्न गौत्र घोषित करके किसी व्यक्ति को अपने पिता के गोत्र में विवाह करने के लिए हतोत्साहित करते हैं।

अगर संविधान में इस तरह की कोई धारा बढा दी जाये तो भारत की सबसे बड़ी सामाजिक बुराई जिसे राजाजी ने अपने शब्दों में भारत का दुश्मन नम्बर एक कहा है, दस वर्ष के अन्दर उसे मौत की नींद सुलाया जा सकता है। देश कभी शक्तिशाली नहीं हो सकता अगर जाति-बिरादरी उसी तरह अपनी जड़ें जमाये रही। यह मसला उस समय तक हल नहीं हो सकता जब तक सरकार इसमें हस्तक्षेप न करे और हस्तक्षेप करके उसकी जड़ें न काट दे, नहीं तो एक न एक दिन आपसी सन्देह और घृणा की यह आग जो जातियों और बिरादरी के निजामों ने सदियों से जला रखी है, इस मुल्क को जलाकर खाक कर देगी....जिस प्रकार दिन के बाद रात का होना निश्चित है, उसी प्रकार।

मुझे उम्मीद है कि मेरा यह सुझाव आपको केवल मेरी दिमागी उड़ान नहीं लगेगा। मेरे जैसे व्यक्तियों को व्यक्तिगत अनुभव से यह एहसास है कि ऊंची जातियों के अतिरिक्त किसी और जाति में पैदा होने का क्या अर्थ है? वो जातियां जिन्हें विशेष समझा जाता है या जो अपने आपको विशिष्ट समझती हैं, केवल किसी जाति में पैदा हो जाने के कारण जो घृणा का व्यवहार और अपमानजनक सामाजिक भेदभाव से किसी व्यक्ति से जुड़ जाती है, वही इस बात का कारण बना है कि व्यापक स्तर पर लोगों ने उन्हें (हिन्दू धर्म को) छोड़-छोड़ कर दूसरे धर्मों को अपनाने पर विवश कर दिया। सिर्फ वही लोग नहीं जो जाति-पांति के लोग हैं (हरिजन) बल्कि अन्य लोगों ने ऐसा किया है। मसलन पंजाब में केवल 40 वर्षों के अन्दर यानि 1891 से 1937 तक 56 प्रतिशत लोगों ने जो जाट थे, यह देखकर कि उनके धर्म के लोग उन्हें हिकारत की नजरों से देखते हैं जबकि इसका कोई नैतिक आधार नहीं है, अपने पुरखों की परम्परा पर लानत भेजकर छुटकारा पा लिया।

बेशक मेरे इस सुझाव और संशोधन के प्रस्ताव की खूब मुखालफत होगी, लेकिन अगर हम इसको पूरा करने पर उतारू हो जायें तो विरोधी कुछ समय बाद पिघल जायेंगे। मेरा अनुमान है कि इसका शिक्षित वर्ग में हिन्दू कोर्ट बिल से कहीं अधिक स्वागत किया जायेगा। चाहे जो भी रोड़े होंगे, अगर संविधान में इस तरह का संशोधन कर दिया जाये तो यह इस देश की एक ऐसे

ही स्तर की सेवा होगी जैसा कि स्वराज्य हासिल करना था, तभी वास्तविक रूप से हमारे देश में स्थायित्व की बुनियाद पड़ सकती है, इससे पहले नहीं।

मैं हूं आपका
ह. चरणसिंह

सेवा में,
पंडित जवाहरलाल नेहरू
प्रधान मंत्री, भारत सरकार
नई दिल्ली।

कर्मयोगी, चिंतक और युगपुरुष चौधरी साब ने अपने दिल की बात नेहरू जी के सामने रख दी। एक प्रान्त के राजस्वमत्री की देश के भविष्य की चिंता करना एक असाधारण बात थी। यह भी तब, जब वे यू. पी. में इन दिनों लोकप्रियता की शिखर पर थे। किसी भी राजनेता के लिए यह एक संतोष की बात थी। किन्तु चौधरी साब की लड़ाई एक मोर्चे पर तो नहीं थी। राजनीति करके कुर्सी पर बैठना ही तो उद्देश्य नहीं था। इसीलिए तो वे चलते-चलते कभी स्वामी दयानन्द, कभी विवेकानन्द, कभी राजा-राम मोहन राय बन जाते। उनके भीतर का कबीर उन्हें कभी चैन से बैठने ही नहीं देता था। तभी, कुछ दिनों बाद ही प्रधानमंत्री का पत्र मिला-

''प्रिय चरणसिंह जी,

22 मई के पत्र के लिए धन्यवाद!

आप जानते हैं कि मैं जाति व्यवस्था समाप्त करने को अत्यधिक महत्व देता हूँ। मेरा ख्याल है कि निश्चित रूप से यह हमारे समाज को कमजोर बनाने वाली सबसे बड़ी अकेली वजह है। मैं आपकी इस बात से भी सहमत हूं कि जब तक अन्तर्जातीय विवाह सामान्य नहीं माने जायेंगे तब तक जाति व्यवस्था समाप्त नहीं होगी। मैं तो इससे बढ़कर यह मानता हूं कि जब तक हम विभिन्न धर्म के लोगों में होने वाले विवाहों के प्रति अपना पूर्वाग्रह नहीं त्यागेंगे, तब तक इस देश में वास्तविक एकता स्थापित नहीं होगी।

किन्तु आपकी बात मानकर संविधान के द्वारा लोगों को अपनी जाति से बाहर विवाह करने के लिए बाध्य करना व्यक्तिगत स्वतंत्रता के खिलाफ होगा। विवाह अत्यधिक व्यक्तिगत मामला है। हम इसे और अधिक व्यक्तिगत बनाने तथा पुराने रीति-रिवाजों और परम्पराओं से मुक्त करने की कोशिश कर रहे हैं। यद्यपि आपका सुझाव वांछित प्रवृति को प्रोत्साहित करने वाला है किन्तु निश्चित रूप से यह विवाह सम्बन्धी हमारे प्रयासों के प्रतिकूल है।

हमें अन्य प्रकारों से परिस्थितियां बनानी पड़ेंगी। विशेष विवाह बिल इस पर्कार का एक कदम होगा। इसी प्रकार के अन्य कदम भी उठाये जायेंगे। लोग विवाह वहीं करते हैं जहा विचारधारा तथा जीवन स्तर में साम्य होता है। इस प्रकार के विवाहों के अतिरिक्त विवाह अनुपयुक्त होते हैं। ऊपर से लादी गई कोई भी जबरदस्ती दम्पत्ति के लिए विनाशकारी होगी। मैं विवाह को कानून या लालच द्वारा नियंत्रित करने के सम्बन्ध में सोच भी नहीं सकता।

आपका
ह. जवाहरलाल नेहरू

सेवामें,
श्री चरणसिंह,
मंत्री, उत्तर प्रदेश सरकार,
लखनऊ''

पत्र पढकर चौधरी साब को कैसा लगा होगा? गांधी, पटेल या चरणसिंह को छोड़कर इस देश के नेताओं की कथनी और करनी में बहुत अन्तर रहा है। नेहरू जी के पत्र से स्पष्ट है कि वे जाति प्रथा को समाज को कमजोर करने वाली सबसे बड़ी वजह मानते हैं। अपने कर्मचारियों के

चयन में भी इस बुराई को दूर नहीं कर सकते। फिर उनका यह कैसा तर्क था कि लोग विवाह वहीं करते हैं जहां विचारधारा तथा जीवन स्तर में साम्य होता है। प्रश्न पैदा होता है कि विचारधारा तथा जीवन स्तर क्या स्वयं की जाति में ही मिलता है। उनका यह तर्क अपने आप में जाति प्रथा के पक्ष में ही है।

विवाह को कानून या लालच द्वारा नियंत्रित करना नेहरू जी पसन्द नहीं करते, ऐसा उन्होंने लिखा। लेकिन चौधरी साब का सुझाव तो विवाह को नियंत्रित करना नहीं, कम से कम राजपत्रित नौकरियों और जन प्रतिनिधियों को चुने जाने वाले नियमों को नियंत्रित करने का था। राजपत्रित सेवाओं के लिए अन्य नियम भी तो सरकार ने बना रखें हैं। यदि विवाह वाली एक शर्त और जोड़ दी जाये तो यह व्यक्तिगत स्वतंत्रता का मामला कहां बनता है? और वह भी उस अवस्था में जब यह स्वीकार कर लिया गया कि जाति प्रथा ही हमारी मातृभूमि की सदियों से पराधीनता का कारण है और देश के बंटवारे के रूप में सामने आ चुकी है। नेहरू जी जाति प्रथा को कितना गंभीर मानते थे, यह इस बात से जाना जा सकता है कि वे बारबार कश्मीरी पंडितों की सभाओं में जाया करते थे। महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने नेहरू जी के जीते जी एक लेख लिखा था-"तुम्हारी जांत-पांत की क्षय!" उसमें उन्होंने आंकड़े देकर इस बात को प्रमाणित किया था कि पंडित नेहरू के समय मंत्री, राजदूत और ऊंची नौकरियों में ब्राह्मण, विशेष कर कश्मीरी पंडित अनुपात से बहुत अधिक थे। बहरहाल, लौट आइये चौधरी साब के पास।

कुछ दिन आराम करने के बाद वे पुन: सक्रिय हो गये। जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार के साथ ही समाज सुधार का अभियान भी शुरू कर दिया था। उन्हीं दिनों ऋषिकेश में छुआछूत विरोधी सेमीनार का आयोजन किया गया था। इसके समापन सत्र को संबोधित करते हुए उन्होंने छुआछूत और जातिवाद की महामारी को समाप्त करने के उद्देश्य से एक तीन सुत्री योजना प्रस्तुत की थी। प्रथम, राज्य सरकारों के अन्तर्गत राजपत्रित पद ऐसे योग्य नवयुवकों को दिये जायें जिन्होंने अन्तर्जातीय विवाह किया है या जो अन्तर्जातीय विवाह करने को तैयार हों। यदि कोई अविवाहित अधिकारी अपनी जाति के बाहर शादी नहीं करता तो उसे अपने पद पर रहने की इजाजत नहीं देनी चाहिए।

द्वितीय-केन्द्र सरकार में ऐसे लोगों को नौकरियां देनी चाहिए जो ऐसे लोगों में शादी कर चुके हैं या करने को तैयार हैं जिनका उनके भाषा समूह से सम्बन्ध नहीं है।

तृतीय-शिक्षण संस्थाओं को अपने नाम के साथ किसी जाति, समुदाय या धार्मिक सम्प्रदाय का नाम जोड़ने की इजाजत नहीं होनी चाहिए। इस तरह की बातों से छात्रों का झुकाव संकीर्ण मनोवृत्ति की ओर जाता है। ऐसी क्षिण संस्थाओं को नियमानुसार दी जाने वाली आर्थिक सहायता सरकार द्वारा रोक दी जानी चाहिए।

उन्होंने अपने भाषण में कहा, "प्रशासनिक सेवाओं में भर्ती करते समय प्रत्याशी के मानसिक स्तर एवं शारीरिक-क्षमता की परीक्षा ली जाती है। उसकी इस सम्बन्ध में भी परीक्षा ली जानी चाहिए कि जाति अथवा समुदाय के विषय में उसके क्या विचार हैं। अपनी जाति के बाहर विवाह-सम्बन्ध स्थापिन करने को तैयार होना ही उसके विचारों का स्वस्थ परीक्षण है।"

आगे बोलते हुए उन्होंने कहा, "छूआछूत की बीमारी को कम करने के और भी उपाय हैं जैसे की तथाकथित हरिजनों के शैक्षिक और आर्थिक स्तर को ऊंचा उठाना। किन्तु बुराई को समूल नष्ट करने में यह अधिक सहयोगी नहीं होगा। हिन्दुओं में 13 भाषाएं और 3400 जातियां और बिरादरी हैं जो एकता की वृद्धि में और राष्ट्रीयता की भावना में बाधक हैं। इसी कारण हिन्दू समाज में लचीलेपन का अभाव एवं संकीर्णता व्याप्त रही, यद्यपि हिन्दू धर्म के समान सहिष्णुता एवं लचीलापन अन्य किसी धर्म में नहीं है।"

उन्होंने भूमि सुधारों की चर्चा करते हुए कहा कि हरिजनों को उन सभी बंधनों से मुक्त कर दिया गया है जो उनके विकास में बाधक सिद्ध हो रहे हैं। उन्हें अपने घरों, पेड़ों और कुओं का

पूर्ण स्वामित्व प्राप्त हो चुका है, जो कि पहले नहीं था तथा अब वे अपनी इच्छाओं के स्वयं मालिक हैं। उन्हें गांव समाज में निहित सम्पदाओं का उपयोग करने की सुविधा अन्य लोगों के समान प्राप्त हो चुकी ही।

भूमि आवंटन के बारे में उन्होंने भाषण देते हुए बताया कि भूमि-व्यवस्था समिति द्वारा भूमिहीन श्रमिकों को प्राथमिकता दी गई तथा इस के लिए कोई राशि वसूल नहीं की गई। उन्होंने बताया कि यद्यपि कहीं कम हो सकती है लेकिन 60 प्रतिशत हरिजनों के पास जमीन है। भूमिहीन हरिजनों को कुटीर उद्योग लगाने चाहिए। इसमें सरकार पूरी मदद करेगी। किसी हरिजन को जमीन से बेदखल किया जावे तो वह सीधा मेरे पास आ जाये या एक पोस्ट कार्ड ही डाल सकता है।

सुधार तो हमेशा ऊपर से चलता है। इसके लिए उन्होंने नेताओं को तैयार किया। मंत्री मंडल की बैठक में वे बार बार कहते, "मंत्रीगण तड़क-भड़क एवं दिखावे से बचकर रहें ताकि उनके एवं सड़क के अंतिम व्यक्ति के बीच खाई कम से कम हो सके। अंतिम व्यक्ति की मुक्ति जब तक नहीं होगी, हमारी भी मुक्ति नहीं होगी।"

ऐय्याशी और सत्ता लोलुप मंत्रियों के लिए तो यह आग में घी के समान था। अहं भाव से त्रस्त मंत्रियों को उनसे चिढ़ हो गई। "कैसा व्यक्ति है यह? स्वयं ने कुछ नहीं देखा तो औरों को भी पीछे धकेल रहा है।" जिन मंत्रियों ने जमींदारों का पक्ष लिया था, यो जा भ्रष्टाचार में लिप्त थे, वे चौधरी साब से नजर मिलाने की हिम्मत नहीं कर पाते थे। प्राय: ही उनसे बचकर निकलते। अक्सर वे आपस में मजाक करते, "यदि हमने गरीब आदमी का भला नहीं किया तो यह जनता एक दिन हमें पकड़ लेगी। जमींदारों, पूंजीपतियों, सूदखोंरों और अधिकारियों को भी हमारे साथ जेलों में डालेगी। इसलिए बन्धुओं, काम करो और नजर गरीब पर रखो।"

मुख्यमंत्री पंत को उन्होंने राजी कर लिया। उनका आह्वान था कि मंत्रियों का वेतन घटाकर 1000 रुपये प्रतिमास किया जाये। मंत्रियों को बड़ी गाड़ी 'शेवरलेट' के स्थान पर छोटी कार 'अम्बेसडर' का इस्तेमाल करना चाहिए। मंत्रियों की गाड़ियों और निवास स्थान पर निरन्तर राष्ट्रीय ध्वज फहराने की परम्परा बन्दहो। रेल यात्रा के समय पी. ए. सी. की एक पूरी स्कवायड चलनी बन्द की जाये। ज्यों ही यह आह्वान उन्होंने मंत्री मंडल की बैठक में पढ़ा, वरिष्ठ मंत्री बिदक उठे, जैसे कांटा चुभो दिया था। चौधरी साब पर व्यंग्य बाणों की बौछार शुरू हो गई। उन्हें रूढिवादी और 'गांव का गंवार' तक की संज्ञा दी गई।

तब भीतर का कबीर उग्र हो उठा। अपने फक्कड़पन की अक्खड़ता से उन्होंने लताड़ा, "श्रीमान, हम सब जनता के प्रतिनिधि हैं, उनका दिया खाते हैं। अंग्रेजों और जमींदारों को इसलिए नहीं भगाया था कि उनकी जगह हम ले लें। शहर के फुटपाथ और खेत की मेंढ पर बैठा गरीब हमारे परिवार का ही सदस्य है। जरा कल्पना तो करो, परिवार के अन्य सदस्य तो कमायें, और उनका मुखिया उनके परिश्रम से ऐय्याशी करे तो गांव में उसकी भला क्या इज्जत होगी? मुझे एक वरिष्ठ मंत्री के मुंह से इतनी घटिया भाषा की उम्मीद नहीं थी। इसके विरोध में मैं बैठक का बहिष्कार करता हूं।"

और वे बैठक से तुरन्त चले गये। मुख्यमंत्री पंत और मंत्री स्तब्ध रह गये। मुख्यमंत्री पंत को आभास हो गया कि अब चौधरी साब का इस्तीफा ही आयेगा। इससे पूर्व भी कई बार भूमि सुधार एवं जाति प्रथा के मामले में उनकी अन्य वरिष्ठ मंत्रियों से झड़प हो चुकी थी। सार्वजनिक हित में उनकी बात को अनसुनी नहीं की जा सकती थी। आत्म सम्मान को बचाने का एक ही रास्ता उनके पास था-पद से इस्तीफा। पंडित पंत ने कहा, "यह ठीक नहीं हुआ। जहां तक मैं समझ पाया हूं, चौधरी साब की जेब में हमेशा इस्तीफा पड़ा रहता है।" तब क्या हो? वहीं हुआ, जो होना था। चौधरी साब की अनुपस्थिति में ही उनकी वे सारी मांगे मानली गई जो वे मंत्रीमंडल के सहयोगियों पर लागू करना चाहते थे।

उन्हीं दिनों, एक दिन की घटना ने उनकी आंखों में आंसु ला दिये। वे अपने निवास से चलने

की तैयारी कर ही रहे थे कि पहाड़ी क्षेत्र के एक पटवारी की पत्नी, गोद में लिये बच्चे के साथ उनके पैरों में गिर पड़ी। वह फूट-फूट कर रो रही थी। चौधरी साब करुणा और विस्मय से भर गये।

"बात क्या है?" उन्होंने पूछा।

"मेरे पति पटवारी थे जिन्हें आपने हटा दिया है। हमारे और कोई साधन नहीं है। मैं और बच्चे भूखे मरेंगे। आप मेरे पति को वापस नौकरी पर रख लीजिए।" यह कहकर वह फिर रोने लगी।

तब चौधरी साब की आंखें भी भर आई। "यह क्या हो गया?" वे मन ही मन बुदबुदाये। क्षण भर में वे संभले। महिला को चुप करा बैठाया। निजी सचिव को उसका घर का पता नोट करने को कहा। फिर बोले,

"तुम अब घर जाओ। कानून तो सबके लिए समान है। नौकरी पर तो मैं वापस नहीं ले सकता लेकिन तुम्हें घर बैठे रुपये मिलते रहेंगे। किसी महिने पैसे नहीं मिलें तो खबर करना।"

वह महिला चली गई। प्रतिमाह स्वयं की तनख्वाह में से उसे रुपये भेजते रहे। यह आर्थिक सहायता कई वर्षों तक चलती रही। घटना के समय परिवार के अन्य सदस्य भी एकत्रित हो गये थे। जब उन्होंने सुना कि चौधरी साब, स्वयं की तनख्वाह में से रुपये भेजेंगे तो उन्हें चिंता हुई। पहले से ही कई निर्धन छात्रों को आर्थिक सहायता स्वयं की तनख्वाह में से कर रहे थे। श्रीमती गायत्रीदेवी ने टोका, "इसे पटवारी में नहीं रख सकते थे तो और कोई नौकरी दिला देते। घर का खर्चा पहले से ही मुश्किल से चल रहा है?"

"नौकरी कहां से दिलाऊ? जो मेरे वश में था, वही किया है?" कहकर वे गाड़ी में जा बैठे। यहां आश्चर्य होता है और सोचना पड़ता है, वे कैसे राजनेता थे? राजनीति उनके लिए क्या थी?

3.

किसी भी मंत्री से, यहां तक कि मुख्यमंत्री से भी अधिक व्यस्त रहते। एक कदम पूरा होते ही अगले की तैयारी हो जाती। पूरा प्रदेश जैसे उनका स्कूल बन गया था और विभिन्न जिले अलग अलग कक्षाएं। उन कक्षाओं में पहुंचकर गांव के अनपढ किसान को पढ़ाना होता था। उसे अपने अधिकारों बाबत समझाना पड़ता। तब चौधरी साब स्वयं एक आंदोलन, एक विचार बन गये। गांवों के लोग उन्हें देखने-सुनने को आतुर रहते। तभी उनके दिमाग में चकबन्दी की आई।

भूमि का बेहतर उपयोग होना चाहिए। अलग अलग बिखरे खेतों में प्रत्येक में कुआ नहीं खोदा जा सकता था। नहर द्वारा सिंचाई होने पर भी पानी की बर्बादी थी। खेत इधर-उधर बिखरे हुए थे। उनकी जमीन मेडों की वजह से व्यर्थ में रुक जाती थी। दौरे करते समय वे देखते भी और बातें भी करते। तब सारी कठिनाइयां स्पष्ट होती गई। जमीन एक जगह होती तो चारों ओर जानवरों से रक्षा करना आसान था। टिड्डी, किटों या बिमारी पर आसानी से काबू पाया जा सकता था।

उन्होंने बैलों को इधर-उधर हांकते हुए देखा, एक खेत से दूसरे खेत ले जाते हुए देखा। इससे समय की बर्बादी और व्यर्थ की मेहनत थी। यहीं तो इस किसान मसीहा को सोचना था। चकबन्दी के बाद किसान को खेती के सारे औजार अपने चक या जोत पर एक बार ले जाना काफी था। किसान वहीं एक जगह रहने का मकान बना सकेगा। पशुओं को बाँधने की जगह बनवा लेगा। भूसा और चारा एक स्थान पर रहेगा। एक ही खाद का गड्ढा रखेगा। एक कोल्हू गन्ने का रस निकालने

का होगा। पूरी जमीन की एक साथ निगरानी। किसान और बैलों के श्रम का बेहतर उपयोग होगा। इस तरह की खेती इंग्लैंड और दूसरे देशों की आवासीय क्षेत्र वाली खेती की तरह होगी और उपज भी कहीं अधिक होगी। यह सब चरणसिंह नहीं देखें तो कौन देखे?

जमींदारी उन्मूलन के बाद चकबन्दी दूसरा प्रभावशाली कदम था। वास्तविक रूप से भूमिसुधार का फायदा चकबन्दी के बाद ही मिलने लगा। चौधरी साब ने इस कार्य के लिए पूर्णकालिक कर्मचारियों की भर्ती की और उन्हें प्रशिक्षित किया। यह भी युद्ध स्तर पर किया जाने वाला अभियान था। कर्मचारियों के लिए यह आवश्यक था कि सम्बन्धित गांव के पास ही वे निवास करें। प्रत्येक गांव में चकबन्दी समितियां नियुक्त की गई, जो ग्राम पंचायत की उपसमितियां थी। चकबन्दी कर्मचारियों को कदम कदम पर इन समितियों के साथ सलाह-मशविरा करना आवश्यक था। जिला स्तर पर चकबन्दी के लिए कलेक्टर की अध्यक्षता में एक जिला सलाहकार समिति भी थी। इसके सदस्य अन्य लोगों के अतिरिक्त विधान सभा के क्षेत्रीय प्रतिनिधि और सैंटलमैंट अधिकारी थे।

एक और क्रांति का बिगुल बजने लगा। उत्तर प्रदेश के तत्कालीन योजना सलाहकार सर अलबर्ट मायर ने विकास आयुक्त, उत्तर प्रदेश को इस सम्बन्ध में लिखा था-"खेतों की चकबन्दी का प्रयास जारी देखकर मुझे लगता है कि एक बहुत ही महत्वपूर्ण और लगभग क्रांतिकारी कार्य सम्पन्न किया जा रहा है और जैसा कि उन्नाव में मैंने लक्ष्य किया, कर्मचारीगण अच्छा काम कर रहे हैं, विशेषतौर से यह गौर करते हुए कि उनमें से कितने ही नये रंगरूट हैं।"

तो यह था चौधरी साब का अभियान। उनका नियंत्रण अभूतपूर्व था। चकबन्दी योजना में भ्रष्टाचार की गुंजायश बहुत अधिक थी। भूस्वामियों के पास अलग अलग भूखण्ड थे और उनसे लगाव था। यही भृष्टाचार का कारण था। चकबन्दी कर्मचारियों को नाजायज लाभ कमाने का अवसर था। किन्तु चौधरी साब की इस पर पैनी दृष्टि थी। हर पहलू का अध्ययन और चौकसी बरती गई। भ्रष्टाचार को पनपने नहीं दिया। उस समय की विधान सभा की कार्यवाही इस बात का प्रमाण है। विपक्ष ने भी जी खोलकर चौधरी साब की भूरि भूरि प्रशंसा की।

चकबन्दी के लाभकारी प्रभाव के बारे में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कृषि विशेषज्ञ लैंडजिंस्की इस जादू से अत्यंत प्रभावित हुए। अलीगढ़ जिले का दौरा करने के बाद अपनी रिपोर्ट में लिखा था, "अलीगढ़ में भूमि की चकबन्दी का जोरदार कामयाब कार्यक्रम है। गांवों में 75 प्रतिशत काम पूरा हो चुका है। जिन गांवों में यह काम दो वर्ष पूर्व पूर्ण हो गया था, वहां इस कार्यक्रम का प्रभाव हमारे लिए बिल्कुल स्पष्ट था। इसके सबसे महत्वपूर्ण परिणाम का पता उन नये कुओं से चलता है, जो किसान अपनी चकबन्द जमीन पर बनाते जा रहे हैं। एक गांव में इस कार्यक्रम के पूरा होने पर 28 कुए बनाये जा चुके थे। वे कुए 1200 से लेकर 2000 रुपये तक की लागत आने के कारण महंगे हैं लेकिन ऋण, सिमेंट और ईंटों की समस्या नहीं रही तो आने वाले वर्षों में ही पूरा जिला पट जायेगा। किसान के लिए यह 'अनुभूत आवश्यकता' है। हमने एक किसान से प्रश्न किया,

"मानलें कि हम आपको 1500 रुपये देते हैं। उन्हें आप अपनी बेटी के विवाह में खर्च करेंगे या कुए की खुदाई पर?"

किसान का उत्तर था, "मैं एक कुआं खोद लूंगा। मेरे खेत में कुआ होगा तो मुझे अपनी बेटी के लिए वर नहीं ढूंढना पड़ेगा, वही खुद उसे ढूंढ लेगा।"

किन्तु यह उतना आसानी से नहीं हुआ था। चौधरी साब के विरोधियों ने इसे अलोकप्रिय करार दिया। इनमें समाजवादी पार्टी प्रमुख थी। मंत्रीमंडल के कई सहयोगियों ने प्रलाप किया था कि कांग्रेस सरकार के नाम पर इससे बट्टा लग गया। पंडित पंत के दिल्ली में गृह मंत्री बन जाने और समाजवादी विचारों के लिए चर्चित सम्पूर्णानन्द के मुख्य मंत्री बन जाने के बाद विरोध और भी तेज हो गया था। जब अप्रेल 1959 में चौधरी साब ने राजस्वमंत्री पद से इस्तीफा दिया तो

ऐसे लोगों की बन आई थी। तब डा. सम्पूर्णानन्द ने जमींदारों के प्रवक्ता ठाकुर हुकुमसिंह को राजस्वमंत्री बना दिया था। तब मुख्यमंत्री डा. सम्पूर्णानन्द ने अपने राजस्वमंत्री का यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया था कि इस योजना का संचालन स्थगित कर दिया जाये।

तब पूरे प्रान्त में विरोध का जबरदस्त तूफान उठा। किसानों में हाहाकार मच उठा। उन्होंने मुख्यमंत्री और राजस्वमंत्री का घेराव करने का निश्चय किया। गांवों में प्रशासन ठप्प हो गया था। असंतोष की इस लहर की खबर समाचार पत्रों से पूरे देश में फैल गई थी। तब राष्ट्रीय योजना आयोग ने तुरन्त इस योजना को पुनः चालू करने का आग्रह किया था। एक महीने के अन्दर ही सता की ये बड़ी तोपें परास्त हो गई। अपने फैसले को रद्द करना पड़ा। जन बल के सामने तथाकथित समाजवादी विचारों वाले मुख्यमंत्री और सामन्ती सरदार हुकुमसिंह की हार हुई थी। तभी, चौधरी साब हीरो बन गये थे। उनके निवास स्थान पर आने जाने वालों का तांता लगा रहता। उनका निवास प्रान्त के किसानों का निवास बन गया था। उस समय सता से वंचित रहने पर भी इतनी भीड़ थी कि किसी भी मंत्री के बंगले पर भी नहीं थी। सचमुच कांग्रेस सरकार के नाम बट्टा अब लगा था। लेकिन यह बाद की बात है। बहरहाल...

यह भी एक विडम्बना है कि मंत्री मंडल के सहयोगी जब उनकी आकाश छूती लोकप्रियता से जल भुन रहे थे, विपक्षियों तक ने उन्हें अपने जिलों में भूमि सुधार विधेयक के बारे में, सार्वजनिक सभाओं में भाषण करने हेतु आमंत्रित किया। वाराणसी के कम्युनिस्ट विधायक उदल और बांदा जिले के बबेरु के समाजवादी विधायक जोगेश्वार यादव इनमें प्रमुख थे। चौधरी साब उनके आमंत्रण को टालते रहे लेकिन वे माने नहीं। जैसी उनकी आदत थी, उन्होंने विधायकों से स्पष्ट कहा, "लेकिन मेरे भाषण तो राजनैतिक रूप से आप लोगों को कमजोर ही करेंगे। कांग्रेस का ही प्रचार होगा। तब आप लोग क्यों मुझे बुला रहे हैं?"

विधायकों का उत्तर था, "राजनैतिक लाभ-हानि कुछ भी हो, लेकिन हमारे क्षेत्र में इन सभाओं से दलित जनता को नई रोशनी तो मिलेगी। जनता को यह तो अहसास होगा कि अब वे अपने पैरों पर खड़े हो सकते हैं।"

चौधरी साब निरुत्तर हो गये। अब क्या कर सकते थे? उन्हें याद आया कि कामरेड उदल तो वाराणसी जिले से थे। उसी जिले से डा. सम्पूर्णानन्द और पंडित कमलापति त्रिपाठी थे। दोनों के ही आंकड़े चौधरी साब से 36 के थे। किसी विपक्षी के निमंत्रण पर जाने से दोनों को पुनः मुद्दा मिल जाता। उन्होंने कामरेड उदल से कह दिया, "ना भाई, मैं आपके यहां न आ सकुंगा"

भूमि सुधार सम्बन्धी कार्यक्रम कांग्रेस का अंग्रेजों के समय से ही था। चरणसिंह ने उसे लागू किया था। इससे प्रत्येक कांग्रेसकर्मी को खुश होना चाहिए था। प्रदेश की जनता कांग्रेस से जुड़ गई थी। विपक्षी पार्टियां बौखला गई थी। कम्युनिस्ट पार्टी का किसान आधार समाप्त होने लगा था। किन्तु जातिवाद के कट्टर विरोधी और गरीबों के हिमायती चरणसिंह को, उनके दुश्मनों ने जातिवादी और 'कुलक वर्ग' का नेता घोषित करने में लगे थे। मुख्यमंत्री से प्रधानमंत्री तक को जातिवाद के विरुद्ध लिखने वाले चरणसिंह के लिए उनके पास कोई उतर नहीं था। चौधरी साब ने जो सवाल उठाये थे, उन्हें न निगलते बनता था, न उगलते। तभी बौद्धिक कसरत करते हुए एक जमात ने चरणसिंह को ही जातिवादी, रूढिवादी कहकर नया युद्ध शुरू कर दिया था। श्रीमती इंदिरा गांधी के वक्त तो यह हमला और तेज हो गया था। इसके दो कारण थे। एक तो, इंदिर गांधी झूठ बोलने में तनिक भी संकोच नहीं करती थी। दूसरा, कम्युनिस्ट पार्टी का जनाधार, विशेष रूप से ग्रामीण भारत चरणसिंह के पीछे लामबंध हो गया था। कम्युनिस्ट स्वयं सोवियत रूस या इंदरा गांधी के परजीवि हो गये थे। तभी रूस से कामरेडों ने एक नये शब्द का आयात किया था।-'कुलक', और इसको चौधरी साब पर चिपका कर पानी पी पी कर गालियां देने लगे थे।

बहरहाल...

प्रदेश कांग्रेस कमेटी के साथ साथ, बनारस, गौंडा, बहराईच, बाराबांकी, लखनऊ, बरेला, हमीरपुर और वाराणसी की जिला कमेटियां चरणसिंह से अत्यधिक रुष्ट थी। भूमिसुधार कार्यक्रम में वे या तो तटस्थ रहते या आलोचना करते। अनेक अवसरों पर चौधरी साब की सार्वजनिक सभाओं में इन नेताओं ने पत्थरों की बौछार शुरू करवादी थी। प्रमुख कांग्रेसी नेता उनकी खुली आलोचना करते और सभाओं में जनता को जाने से रोकने का प्रयास करते। इस विद्रोह को मंत्री मंडल के सहयोगी हवा देते रहते। यह सब झेलना, चरणसिंह के ही बुते की बात थी। कबीर, गांधी या स्वामी दयानन्द को समाज के ठेकेदारों ने कहां चैन से रहने दिया। यही सोच चरणसिंह का अक्खड़पन भी बढ़ जाता। उनके सामने तो राज्य का निर्बल वर्ग खड़ा था जो उन्हें सुनने-देखने को बैचेन रहता। इसी से इस धरापुत्र को नित्य नई शक्ति मिलती रहती।

4.

ये कितने संघर्षमय दिन थे। विपक्षियों से अधिक अपने लोगों के साथ। ज्यों ज्यों लोकप्रियता के शिखर पर चढते जा रहे थे, सहयोगी नेता और मंत्री टांग खींचने में अधिक व्यस्त हो गये थे। पुरे राज्य के केन्द्र बिन्दू बन गये थे चौधरी साब। विभिन्न जिलों से आन जाने वालों का क्रम कभी रुकता ही नहीं था। ऐसा नहीं था कि शिकायत उने विभाग के सम्बन्ध में ही होती, अन्य विभागों से सम्बन्धित भी शिकायत उनके पास ही लेकर लोग आते। तब दूसरे विभागों को वे प्रेषित करवा देते।

और इस जन शक्ति को देख, चौधरी साब सब दुःख भूल जाते। उन्हें इस बात का संतोष था कि गरीब जनता का विश्वास दिन प्रतिदिन उनमें बढता जा रहा था। जब तक यह शक्ति साथ रहेगी, काम करते रहेंगे। चाहे सता रहे या न रहे। इन थका देने वाली व्यस्तताओं में, रात को परिवार के साथ जब अकेले होते तो उनका दूसरा ही रूप होता। खाने के बाद लान में घूमते समय बेटियां पूछती, "पिताजी थक जाते होंगे?"

तब वे उन्मुक्त हंसी हंसते। अक्सर ही गाकर उत्तर देते-

"कबीरा जब हम पैदा हुए, जग हंसे हम रोये।
ऐसी करनी कर चलो, हम हंसे जग रोये॥"

अथवा

"जैसी करनी, वैसी भरनी, फिर चिंता किस बात की।
अपने डगर पर चलता चल, घड़ियां कट जायेंगी रात की॥"

साथ में घूमती किसी बेटी को इंगित कर वे गाते-

"बुन्देले हर बोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वो तो, झांसी वाली रानी थी।"

तब वे बेटियों को भी साथ गाने को कहते। उस समय का चरणसिंह निहायत ही कबीर बनकर दुनियांदारी के झंझटों से हटकर अपने 'साहिब' में खो जाता। गांव का वाशिंदा और भारत जैसे उनके इष्ट देव थे। अपनी मंजिल पर पहुंचने के लिए काली रात उनके लिए रुकावट नहीं थी। उनका विश्वास ही उनका सहारा था। एक और व्यक्ति का उन्हें सहारा था कि वे उनका साथ नहीं छोड़ेंगे; वे थे मुख्यमंत्री पंत। उन्हें भरोसा था कि पंडित पंत उनकी सहायता अवश्य करेंगे। पंडित पंत उनकी योग्यता, कर्मठता और ईमानदारी से बहुत प्रभावित थे। मंत्रीमंडल की बैठकों में वे चौधरी साब की प्रशंसा करते। राजस्व अभियान और चकबन्दी में उत्तर प्रदेश ने देश को नेतृत्व

दिया। यद्यपि पंत को वरिष्ठ मंत्री घेरे रहते। कई अवसर ऐसे भी आये जब वे पंत को रोकने में सफल भी हो जाते। यह स्थिति दुविधाजनक होती। चिंतित पंत को देख चौधरी साब कहते, ''यदि मेरी वजह से आपको परेशानी है तो कृपया मुझे पदमुक्त करने में क्षणभर की भी देरी न करें।'' तब पंडित पंत चरणसिंह का हाथ थाम लेते। ऐसे भावुक क्षणों में दोनों की आंखें सजल हो उठती। यह कैसे हो सकता है? उन्हें चरणसिंह के सुझाव मानने ही पड़ते। जैसे हाथ थामें कह रहे हों- ''एक साधै, सब सधै, सब साधै सब जाय।''

और एक दिन, चौधरी साब का यही सहारा भी जैसे खतम हो रहा था। पंडित पंत को नेहरू जी ने दिल्ली बुला लिया। उन्हें केन्द्रीय गृह मंत्री बना दिया गया। मुख्यमंत्री बन गये डा. सम्पूर्णानन्द। वही सम्पूर्णानन्द जो चौधरी साब के पीछे हाथ धोकर पड़े थे। आदर्शवादी निबन्ध लिखकर वे समाजवादी विचारक तो बन गये थे किन्तु वास्तविक रूप से वे रुढिवादी, ईर्ष्यालु, और यथास्थितिवादी थे। यही खुन्नस चौधरी साब और उनके बीच थी। जहां चरणसिंह एक खुली किताब थे, सम्पूर्णानन्द के व्यक्तित्व पर परत दर परत आवरणों का ढेर था। चरणसिंह काम में विश्वास करते तो सम्पूर्णानन्द कहने में। एक कागज की बात कहने वाला था तो दूसरा भोगे हुए यथार्थ की। सम्पूर्णानन्द के उपदेश होते अन्य के लिए तो चरणसिंह सबसे पहले स्वयं पर लागू करते। इनका परिणाम था कि बौद्धिक विलाशिता में घिरे सम्पूर्णानन्द को, धरातल पर खड़े चरणसिंह हमेशा चुनौति का पर्वत नजर आते। यह डा. सम्पूर्णानन्द की नींद हराम करने के लिए यथेष्ट था। वे इस बात को पचा ही नहीं पा रहे थे कि यह देहाती व्यक्ति इतना लोकप्रिय और योग्य हो सकता है। दरअसल डा. सम्पूर्णानन्द चरणसिंह के प्रति खुंदक, व्यक्तिगत अहं और अभिजात्य बड़प्पन का भ्रम पाले हुए थे। उनके मूल्य, विचार और सिद्धान्त सब किताबी थे जबकि चरणसिंह यथार्थ की जमीन पर डट कर खड़े थे। गांव की चौपाल और खेत की मेड़ पर दृष्टि गड़ाये थे। देश की 80 प्रतिशत जनता उनका आराध्य थी। डा. साहब महानगरीय सभ्यता और उच्च वर्ण के प्रतीक थे। देहाती जनता को कभी कभार टुकड़े डालना ही उनका आदर्श था। उनकी मेहनत और डा. साहबकी कुर्सी पर जैसे कोई बदलाव की आवश्यकता न थी। वे इस जन-समूह को महत्व नहीं दे सकते थे। डा. सम्पूर्णानन्द शहरी चकाचौंध से ग्रस्त थे तथा विशिष्ट वर्ग का होने के नाते बड़प्पन से त्रस्त थे। वे ग्रामीण भारत को नैतिकता और परिश्रम का उपदेश तो दे सकते थे लेकिन उन्हें दो जून की रोटी मुहैया कराने का कर्तव्य नहीं समझते थे।

पंडित पंत के समय ही चरणसिंह के प्रत्येक प्रस्ताव का विरोध करना जैसे सम्पूर्णानन्द ने अपना दायित्व समझ लिया था। उनका प्रत्येक वाक्य फतवा होता था और चाहते थे कि चरणसिंह जैसे देहाती मंत्री उनके सामने बोलने की जुर्रत न करे। जब जमींदारी उन्मूलन और चकबन्दी के कार्यक्रम से चरणसिंह लोकप्रियता के शिखर पर पहुंच गये तो सम्पूर्णानन्द ईर्ष्या की आग में दिन रात तपने लगे थे। अपार जन समूह के नायक चरणसिंह, उनकी नजरों में खलनायक थे। और अब, जब वे मुख्यमंत्री बने, चरणसिंह से हिसाब चूकता करने का अवसर प्राप्त कर लिया।

डा. सम्पूर्णानंन्द ने अपने मंत्रीमंडल की सूची बनाई और पंडित नेहरू के समक्ष स्वीकृति हेतु प्रस्तुत की। पंडित नेहरू ने सूची पर एक दृष्टि डाली और चौंक कर पूछा, ''इसमें चौधरी चरणसिंह का नाम कहां है?''

''उन्हें शामिल नहीं किया गया है।'' सम्पूर्णानन्द का उतर था।

''क्यों?'' पंडित नेहरू ने तीक्ष्ण दृष्टि सम्पूर्णानन्द पर डाली। उन्होंने तुरन्त सूचि सम्पूर्णानन्द की ओर फेंकते हुए कहा, ''यू. पी. में कोई भी सरकार नहीं चल सकेगी, यदि उसमें चरणसिंह शामिल नहीं होंगे।''

तब डा. सम्पूर्णानन्द ने मंत्रीमंडल की दूसरी सूची बनाई। चरणसिंह को राजस्व एवं यातायात मंत्री बनाया गया। कृषि विभाग नहीं दिया गया। शायद सम्पूर्णानंन्द राजस्व विभाग भी छीन लेते लेकिन पंडित नेहरू ने ऐसा नहीं होने दिया। विभिन्न माध्यमों के द्वारा चरणसिंह के कार्य की रिपोर्ट

पंडित नेहरू के पास पहुंचती रही थी। विदेशी विशेषज्ञों ने भी चरणसिंह के कार्य की प्रशंसा की थी। सम्पूर्णानन्द को कड़वा घूंट पीना ही पड़ा।

मुख्यमंत्री बदलते ही सामन्तों की बन आई थी। विशेषकर राज्य के पूर्वी और मध्यवर्ती भागों में वे गरीब किसानों को बेदखल करने लगे। इसे मुख्य मुख्यमंत्री ने 'स्वैच्छिक सुपुर्दगी' का मामला माना था। मुख्यमंत्री का जिला वाराणसी सबसे आगे था। शिकायतों का अम्बार लग गया। तब राजस्वमंत्री चरणसिंह ने मुख्यमंत्री सम्पूर्णानन्द को एक नोट लिखा,

"मुख्यमंत्री,

इन आवेदन पत्रों पर नजर डालना चाहेंगे। इनमें से दो कम्युनिस्ट समर्थित किसान सभा से आये हैं, इसलिए अतिरंजित हो सकते हैं। लेकिन अपने कर्त्तव्य से चूक जाऊंगा अगर मैं अपनी इस भावना को अभिव्यक्ति नहीं दूं कि भूतपूर्व शिकमी काश्तकारों को, खास तौर से बनारस जिले के उस भाग के जो कभी बनारस राज्य था, उनको कानूनी अधिकार दिलाने में हम कामयाब नहीं हुए हैं।...

30 अक्टूबर 1954 को सीरदार के रूप में स्थायी अधिकार दे दिये थे। इस तारीख से अब तक गरीब काश्तकारों से 48 हजार से अधिक सुपुर्दगियां प्राप्त की गई हैं, मेरा दिमाग इस मामले में बिल्कुल साफ है कि इन सुपुर्दगियों में से ज्यादातर जोर-जबरदस्ती से हासिल की गई हैं। जमीन पर कानून द्वारा प्रदत अधिकार का दावा सामान्यत: कोई नहीं छोड़ता। मेरे विचार का सहभागी वह कलक्टर है जो दलितों की सहायता के लिए बहुत कुछ कर रहा है। मैं यह भी बताना चाहूंगा कि राज्य का सिर्फ यही एक टुकड़ा है, जहां इतने बड़े पैमाने पर शिकमी काश्तकार अधिकारों से वंचित किए गए हैं या किये जा रहे हैं।

इन हालत के लिए एक से ज्यादा कारण जिम्मेदार हैं। एस. डी. ओ. और कुछ पुलिस अधिकारियों के रवैये निश्चित रूप से इसके दो कारण है। राजस्व उपमंत्री भी, जो हाल ही में उस क्षेत्र का दौरा कर चुके हैं, समस्या के प्रति एस. डी. ओ. के रवैये के बारे में ऐसी ही धारणा रखते हैं। मुख्यमंत्री को काश्तकारों की बेदखली की समस्या के बारे में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी और प्रधानमंत्री के दृष्टिकोण का पता है, जिसे उन्होंने परिपत्र में अभिव्यक्ति दी है।

गलतफहमी नहीं हो, इसलिए मैंने उस क्षेत्र में जाने या वहां सभा में भाषण करने या दूसरे कदम सुझाने से अपने आपको रोके रखा है। मुख्यमंत्री जैसा उचित समझें, करें।

चरणसिंह

22 अक्टूबर 1955"

इस टिप्पणी पर मुख्यमंत्री ने कोई गौर नहीं किया। वास्तविकता तो यह थी कि उनके प्रोत्साहन से ही उनके ही जिले में सबसे अधिक बेदखली के मामले हो रहे थे। इसके अतिरिक्त प्रथम एवं द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं में 'जमींदारों के पवित्र' पुनर्ग्रहण के अधिकार' के तहत काश्तकारों की बेदखली का प्रावधान था। इससे जमींदार और उनके पोषक नेता फायदा उठाते रहे। ये बेदखलियां नेहरू के समय में और बाद में भी जारी रही। लेकिन इस सम्बन्ध में मुख्यमंत्री के नाम पंडित नेहरू का एक पत्र दिलचस्प है, जिसमें पंडित नेहरू काश्तकारों की बेदखली रोकने का आह्वान करते हैं। भारतीय राजनीतिज्ञों के दोगलेपन का यह एक उदाहरण है:-

गोपनीय

संख्या 1713-पी. एम. ए. 57

नई दिल्ली

5 सितम्बर 1957

प्रिय मुख्य मंत्री,

हाल ही में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में भूमि समस्या पर लम्बी बहस चली थी। आप में से बहुतों ने उनमें भाग लिया ही होगा। मैं फिलहाल इस समस्या के अनेक पहलुओं

का जिक्र नहीं कर रहा हूं। हालांकि वे महत्वपूर्ण हैं। लेकिन मुझे लगता है कि जो सबसे ज्यादा अर्थपूर्ण और महत्वपूर्ण है, वह है काश्तकारों की बेदखली को रोकना। समय समय पर कई राज्यों में बेदखलियां जारी रहने की और कभी कभी बड़े पैमाने पर ऐसा होने की सूचनाएं आती रहती हैं। दरअसल जो उपाय सुझाये गए होते हैं, वे ही इस तरह की बेदखली के सबब बन जाते हैं।

मैं सोचता हूं कि हर राज्य को इस स्थिति से तत्काल और प्रभावी ढंग से निपटना ही चाहिए। अगर कानून में खामी है तो उसे दुरस्त करने के लिए अभी ही कुछ किया जाना चाहिए। लेकिन कानून के अतिरिक्त यह प्रशासनिक ढांचा है जो मामले को प्रभावी ढंग से निपटा सकता है। अगर वह ऐसा ठान ले। मेरा ख्याल है कि जिला मजिस्ट्रेट और दूसरे लोग इस मामले में लापरवाह हैं। मुझे यकीन है कि वे काफी कुछ कर सकते हैं, अगर उन्हें बेदखली पर रोक के अनिवार्य महत्व के बारे में बताया जाये।

कांग्रेस अध्यक्ष ने खास तौर से इस तरफ मेरा ध्यान खींचा है। इस विषय को मैं उन्हीं की तरह काफी गंभीरता से लेता हूं।

सद्भावनाओं सहित,

आपका जवाहरलाल नेहरू

सेवामें,

डा. सम्पूर्णानन्द

मुख्यमंत्री उत्तर प्रदेश, लखनऊ।"

जैसा कि कहा जा चुका है, दो वर्ष पूर्व चरणसिंह द्वारा लिखे पत्र का उत्तर मुख्यमंत्री ने देना आवश्यक नहीं समझा था। पंडित नेहरू का उपरोक्त पत्र चरणसिंह के पास प्रेषित करते हुए मुख्यमंत्री ने जानकारी मांगी कि पिछले सात वर्षों के दौरान उत्तर प्रदेश में बेदखलियां हुई हैं या नहीं, और अगर हुई हैं तो क्या आंकड़े मिलने संभव हैं? राजस्वमंत्री चरणसिंह ने उसी दिन अपना जबाब देते हुए पत्र लौटा दिया–

"मुख्यमंत्री,

हमारे राज्य में उल्लेख योग्य या गिनाने लायक बेदखलियां सिर्फ बनारस जिले के भदोही में हुई हैं। जैसाकि मुख्यमंत्री को याद होगा, मैंने इसकी सूचना 1954 के आखिरी चरणों में उनके पूर्ववर्ती तथा 1955 के शुरू में कभी खुद मुख्यमंत्री को भी दी थी। लेकिन अपने नियंत्रण के बाहर के कुछ तत्वों के चलते मैं खामोश रह गया था। अगर मुख्यमंत्री चाहते हैं तो आंकड़े जुटाए जा सकते हैं।

हमारे कानून काफी सक्षम रहे हैं। हमने शिकमी काश्तकारों, घरेलू फार्मों के बेदखली काश्तकारों सहित सभी काश्तकारों को सुरक्षा दी है और बिना तस्फिया लागू के रूप में दाखिला लेने वाले तक को कानून की निगाह में अतिक्रमणकारी ठहराया है। योजना मंत्री श्री गुलजारीलाल नंदा ने अपने भाषण और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्यों के बीच प्रचारित नोट में भी हमारे उपायों के कारगर ढंग से लागू किये जाने का उल्लेख किया। अपने नोट में उन्होंने उत्तर प्रदेश को प्रथम श्रेणी में रखा।

प्रधानमंत्री, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी या योजना आयोग द्वारा काश्तकारों की जिस बेदखली का जिक्र अक्सर किया जाता है, वह उत्तर प्रदेश की अपेक्षा कुछ अन्य राज्यों में हुई है। मैं मुख्यमंत्री का ध्यान श्री गुलजारी लाल नन्दा के नोट के बगल वाले हिस्से की तरफ ले जाना चाहूंगा। दूसरे राज्यों में काश्तकार ज्यादातर जमींदारों और काश्तकार प्रमुखों या प्रशासन की ढिलाई के चलते बेदखल हुए हैं। हमने अपने राज्य में पुनग्रहण के अधिकार को मान्यता नहीं दी है और पूरे प्रशासन तंत्र को पता है कि अपनी नीतियों को अमली रूप देने और भूमि सुधारों के अपने इरादों को वास्तविकता प्रदान करने के मामले में सरकार कितनी सजग है।

चरणसिंह

10 सितम्बर 1957 "

और तब, मुख्यमंत्री डा. सम्पूर्णानन्द ने जिस चालाकी से प्रधानमंत्री को उत्तर दिया, उसकी भी बानगी देखिये-

डी. ओ. ने. ए/534/57

लखनऊ

1/4 अक्टूबर 1957

प्रिय प्रधानमंत्री,

कुछ समय पहले आपने उन शिकायतों की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए एक पत्र मुझे भेजा था। जो काश्तकारों की बेदखली के बारे में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की पिछली बैठक में और अन्यत्र भी चर्चा का विषय बनी थी। आपको याद होगा कि राष्ट्रीय विकास परिषद की स्थायी समिति की पिछली बैठक में भी यह सवाल उठा था। जैसा कि वहां की बहसों से स्पष्ट होगा, उत्तर प्रदेश में काश्तकारों की बेदखली का सवाल ही नहीं उठता, क्योंकि हमारा काश्तकारी कानून किसी भी स्तर पर पूर्व-बिचौलियों द्वारा पुनर्ग्रहण का कोई प्रावधान नहीं रखता। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की पिछली बैठक में प्रचारित भूमि सुधारों से सम्बन्धित नोट में जैसा कि उल्लेख किया गया था, उत्तर प्रदश भारत के उन दो राज्यों में एक है, जहां सभी काश्तकारों को राज्य के साथ सीधे सम्पर्क में लाया गया है और पुरी सुरक्षा दी गयी है। 1954 में तथाकथित स्वैच्छिक सुपुर्दगी के कुछ मामले भदोही में हुए थे, जो पुराने बनारस राज्य का एक भाग है और अब वाराणसी जिले में मिल चुका है। तबसे ऐसा कोई मामला सामने नहीं आया है।

सद्‌भावनाओं सहित,
आपका
सम्पूर्णानन्द

सेवा में,
श्री जवाहरलाल नेहरू
प्रधानमंत्री

नई दिल्ली।

राजस्वमंत्री चरणसिंह ने 1955 में जो नोट मुख्यमंत्री को प्रस्तुत किया, उसे वे छुपा गये। भूमिहीनों, दलितों और पिछड़ों के प्रति सिर्फ लिपा-पोती का कार्य केन्द्रीय नेतृत्व से लेकर प्रान्त स्तर तक चल रहा था। इसी कागजी-कार्यवाही से चौधरी साब को चिढ थी। इस कागज की लेखी और आंखिन देखी के भेद ने ही अन्ततः चौधरी साब को कांग्रेस से अलग होने को मजबूर किया था।

उन्हीं दिनों राज्य स्तर का पिछड़े वर्ग का सम्मेलन फैजाबाद जिले में हो रहा था। यह सम्मेलन सभी पार्टियों के कार्यकर्त्ताओं के लिए खुला था। किंतु बोलबाला कांग्रेस का ही था। चौधरी साब को इस सम्मेलन को सम्बोधित करने हेतु आमंत्रित किया गया था। उन्होंने अपनी स्वीकृति भेज दी थी। तब पार्टी और मंत्रीमंडल में कानाफूसी शुरू हो गई थी। तब मठाधीश नेता सक्रिय हो गये थे। चौधरी साब के विरुद्ध ताल ठोंकी जाने लगी थी। तत्कालीन प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष मुनीशरत उपाध्याय ने एक लिखित आदेश जारी कर चरणसिंह को उक्त सम्मेलन में भाग लेने से मना कर दिया।

यह चौधरी साब के सम्मान पर सीधी चोट थी। उन्होंने अध्यक्ष को लिखा, ''मैं तो सम्मेलन में जाने की स्वीकृति दे चुका हूँ। इसलिए भाग न लेने का सवाल ही पैदा नहीं होता। यदि मेरा यह कदम अनुशासन हीनता माना जाये या किसी भी तरह जनहित या काग्रेस हित के विरुद्ध आचरण साबित हो जाये तो मैं अनुशासनात्मक कार्यवाही झेलने के लिए तैयार हूं।''

उन्होंने सम्मेलन में भाग लिया। कांग्रेस अध्यक्ष का फतवा धरा का धरा रह गया। उन्होंने

कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही नहीं की। यहां यह उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं होगा कि पार्टी के फैसले के बावजूद अन्य नेताओं का जातिवादी सम्मेलनों में शिरकत करना अनुशासनहीनता नहीं थी, और एक पिछड़े वर्ग के सम्मेलन में, जिसमें अधिकांस कार्यकर्त्ता कांग्रेसी थे, चौधरी साब का भाग लेना अनुचित समझा गया।

अभिजात्य वर्ग के नेता आखिर क्यों चरणसिंह के पीछे हाथ धोकर पड़े थे? क्यों भूमि सुधार कार्यक्रम में रोड़ा अटका रहे थे? इसका कारण स्पष्ट था। राज्य सरकार द्वारा और जिसके अगुआ चरणसिंह थे, भूमि सुधारों के उपाय किये जाने के परिणामस्वरूप, पिछड़ा वर्ग अब समाज में दोयमदर्जे की भूमिका स्वीकार करने को तैयार नहीं था। कोई भी उन्हें 'छोटी जात' या 'नीची जात' का कहकर बुला नहीं सकता था। पहले ऐसा, विशेषकर पूर्वी उतर प्रदेश में पुकारा जाता था। रुपया-पैसा ब्राह्मणों और ठाकुरों के पास ही था। उन्हीं के पास बड़ी-बड़ी जोतें थी। जब भूमि सुधार लागू हुआ तो इन लोगों की नजरों में चरणसिंह खटकने लगे। यह कार्यक्रम कांग्रेस का होने के कारण इसे रोका भी नहीं जा सकता था। ज्यों ज्यों चरणसिंह अधिक लोकप्रिय होते गये, ये लोग उन्हें ही एकमात्र दुश्मन मानने लगे थे। यह पार्टी और सरकार दोनों स्तर पर हो रहा था। यही शायद उन्हें जातिवादी बनाने का कारण था।

5.

यह सच है कि उत्तर प्रदेश में भूमि सुधार का कार्य मुख्य मंत्री पंत के सहयोग के बिना संभव नहीं था। चौधरी साब को आगे बढते रहने में उन्होंने भरपूर सहयोग दिया था। किसानों की कठिनाइयों और समस्याओं का उन्हें अनुभव था। इसलिए जब चौधरी साब अपनी राह पर चल रहे थे तो पंडित पंत उनका हौसला बढा रहे थे। विशिष्ट वर्ग के मंत्रियों की घौंस-पट्टी से वे विचलित नहीं हुए। लेकिन यह भी सत्य है कि उनके अपने ही कुमायूं क्षेत्र में इन सुधारों को लागू नहीं करना चाहते थे। उनके दिल्ली जाने के बाद ही चौधरी साब कुमायूं में जमींदारी उन्मूलन के लिए विधेयक पेश कर पाये थे।

कुमायूं में आश्रित काश्तकारों में आधे अनुसूचित जातियों से सम्बन्ध रखते थे। कुमायूं में भूमिसुधारों के सवाल पर चर्चा के विचार से पंडित पंत ने चरणसिंह को तीन बार दिल्ली बुलाया था। पहले दो बार में वे स्पष्ट रूप से चरणसिंह से कुछ नहीं कह पाये थे। तीसरी बार उन्होंने चरणसिंह से कहा, ''कुमायूं में जोतें इतनी छोटी छोटी हैं कि जमींदारों के अधिकारों को समाप्त करना आवश्यक नहीं है।''

चरणसिंह ने विनम्रता से मजबूरी प्रकट की, ''मैदानों में अधिवासियों के बारे में जो तर्क दिये जाते हैं, वे समान रूप से पर्वतीय क्षेत्रों में भी लागू होते हैं। यदि मैं कुमायूं में लागू नहीं करूंगा तो मेरी बदनामी होगी।'' पंडित पंत कुछ अनमने हुए लेकिन बोले नहीं।

यह सही है कि उस समय तक देश में कहीं भी पर्वतीय क्षेत्रों में भूमि सुधार लागू करने के प्रयास नहीं हुए थे। विधान सभा में प्रस्ताव पर बहस के दौरान उपमंत्री जगमोहनसिंह नेगी और प्रजा समाजवादी पार्टी के नेता नारायणदत्त तिवारी ने विधेयक के विरोध में जबरदस्त भाषण दिये। दोनों पर्वतीय क्षेत्र से आते थे। तिवारी का तर्क था कि मध्यस्थता के लिए विधेयक को पंडित पंत को सौंप दिया जाये। इस तर्क का कारण स्पष्ट था। पंडित पंत भी नहीं चाहते थे। चरणसिंह का तर्क था कि प्रवर समिति ही इस बारे में अपनी रिपोर्ट दे सकती है कि क्या बाहरी शक्ति को विधेयक सौंपा जाये? प्रवर समिति की रिपोर्ट वैसी ही आई, जैसा राजस्वमंत्री चाहते थे। और तब, शोषितों

का पक्ष लेने के कारण पंडित पंत उनसे रुष्ट हो गये। बाद में सहकारी खेती प्रकरण में पंडित नेहरू नाराज हो गये थे। सम्पूर्णानंन्द से कभी बनी नहीं। इस कारण चौधरी साब को आगे के घटना चक्र में बहुत हानि उठानी पड़ी थी। उन्हें योग्य होते हुए भी दो-तीन अवसर पर मुख्यमंत्री बनने से रोका गया। तब उत्तर प्रदेश का राजनैतिक नक्शा ही बदल गया था। बहरहाल...

उन्हीं दिनों राजस्व मंत्री चरणसिंह ने उस कृषि आयकर कानून को निरस्त कर दिया था जो बड़ी जोतों पर 1948 में लागू हुआ था। जमींदारी उन्मूलन के बाद यह कानून प्रभावहीन हो गया था। फायदा नहीं हो रहा था। चौधरी साब हमेशा छोटे फार्मों के पक्ष में रहे थे। अत: यह अपेक्षा की गई कि चरणसिंह अब हदबंदी लागू करेंगे। फालदू जमीन का पुनर्वितरण करेंगे। लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया। विधानसभा में जब विपक्षी दलों ने इस तरह के प्रस्तावों पर जोर दिया तो उन्होंने विरोध किया। इससे तीव्र प्रतिक्रिया हुई। राजनीति में केन्द्र-बिन्दु बने चरणसिंह पर अखबारों की विशेष नजर थी। उनके प्रत्येक कदम और भाषण का विश्लेषण होता। लखनऊ से निकलने वाले दैनिक अखबार 'नेशनल हेराल्ड' में उनके विरुद्ध सम्पादकीय छपा,

''राज्य सरकार के भूमि-सुधार के रिकार्ड के प्रशंसक होने के नाते हम सोमवार को उत्तर प्रदेश विधानसभा में भूमि के पुनर्वितरण के सिद्धान्त का चरणसिंह द्वारा किये गए विरोध को समझ नहीं पा रहे हैं।''

दूसरे दिन राजस्वमंत्री चरणसिंह ने एक लम्बा पत्र सम्पादक को लिखा जो 'नेशनल हेराल्ड' में प्रकाशित हुआ था-

''प्रिय सम्पादक,

कल के अपने सम्पादकीय में आपने भूमि के पुनर्वितरण से सम्बन्धित मेरे विचारों पर गौर किया, इसके लिए आभारी हूं।

भूमि पुनर्वितरण का सवाल कुछ सदस्यों द्वारा उस समय यों ही प्राय: आकस्मिक रूप से उठाया गया था, जब वे एक कटौति प्रस्ताव पर बोल रहे थे। मैंने इसलिए उसका संक्षिप्त उत्तर दिया था। मुझे अपने विचार व्यक्त करने का अवसर उस समय मिला था जब अगस्त 1954 में श्री गेंदासिंह ने इसी विषय पर एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव पेश किया था। मैंने 14 मार्च को पिछले अवसर की भांति ही साफ-साफ कहा था कि मुझे भूमि पुनर्वितरण के सिद्धान्त पर कोई आपत्ति नहीं है। यही नहीं, मैं 1942 से ही, जब मैंने जेल में 'जमींदारी उन्मूलन' पर एक पुस्तक लिखी थी, यह मानता रहा हूं कि हमारे देश की परिस्थितियों के अनुसार बड़ी जोतों के लिए यहां कोई जगह नहीं है। मैं हमेशा से बेझिझक यह विचार फैलाता रहा हूं कि छोटी जोतों की अपेक्षा बड़ी जोतें प्रति एकड़ कम उपज देती हैं तथा रोजगार भी कम लोगों के लिए उपलब्ध कराती हैं और यह कि आर्थिक इकाई, चाहे वह सामूहिक रूप से काम करने वालों की हो या निजी स्वामित्व की और किराये के श्रमिकों द्वारा चलाई जाने वाली हो अथवा कृषि क्षेत्र की या निर्माणकारी उद्योग की हो, जितनी ही बड़ी होगी, उतनी ही कम वहां काम करने वालों की स्वतंत्रता और पहलकदमी होगी। इसलिए हमारे देश में, जहां हमें गरीबी और बेरोजगारी जैसी बुनियादी समस्याओं से जूझना है और जहां हमने जीवन के लोकतांत्रिक मार्ग पर आगे बढ़ना शुरू किया है, बड़ी जोतों को खत्म होना ही है। मेरे विचार से हमारे देश में भूमि पर कृषकों का मालिकाना अधिकार होना चाहिए, जिन्हें वास्तविक उत्पादन के अतिरिक्त अन्य सभी आर्थिक गतिविधियों में सहयोग के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। मेरा विचार जिस पर केन्द्रित है, वह है कृषक सहकारियों की ऐसी प्रणाली जिसमें भूमि और श्रम संसाधनों का एकीकरण नहीं होता, क्योंकि वैसी स्थिति में सहकारी फार्म विकृत होकर मशीनीकृत 'कोल खोज' या रूसी शैली का सामूहिक फार्म बन जायेगा। हमारे अनेक अर्थशास्त्री भले ही आज इससे सहमत हों या नहीं, अगर वैसा प्रयास किया गया तो विफल होगा ही और कम से कम हमारे देश की परिस्थितियों में तो नुक्सान देह ही सिद्ध होगा।

विधानसभा में जब भी भूमि के पुनर्वितरण का सवाल उठाया गया है, मेरा तर्क सिर्फ यही

रहा कि जहां तक उत्तर प्रदेश का सम्बन्ध है, इसका कोई व्यावहारिक महत्व नहीं है। जैसा कि सम्भवत: आप सहमत होंगे, कृषि-प्रधान हमारा देश औद्योगिक दृष्टि से विकसित देशों की अपेक्षा कहीं ज्यादा गरीब है। दुनियां भर में कृषक वर्ग हमेशा आर्थिक रूप से कमजोर रहा है, अर्थात् औद्योगिक, व्यापारिक और समुदाय के अन्य वर्गों की अपेक्षा निर्धनतर। इसी कारण दुनियां की हर वह सरकार जो अपनी जनता के हितों के प्रति सजग है, पिछले कोई 80 वर्षों से यह प्रयास करती रही है कि लोग खेतों का मोह छोड़, दूसरे व्यवसायों का आश्रय लें। कृषि पर आधारित किसी देश की आबादी का प्रतिशत जितना ही अधिक होगा, उतनी ही अधिक होगी वहां की गरीबी। हम उससे अधिक लोगों को भूमि पर नहीं लगायें, जितना आवश्यक हो। उत्तर प्रदेश में भूमिहीन लोग उन लोगों के 8.4 प्रतिशत हैं जिनके पास जमीनें हैं, जबकि देश के बाकी हिस्सों में उनका प्रतिशत 26.30 प्रतिशत है।

इस तथ्य पर विवाद नहीं हो सकता कि पूर्वी जिलों की आबादी का जोरदार प्रतिशत खेती में लगा हुआ है और इस क्षेत्र की गरीबी का कारण है। अगर हम इने-गिने जोतदारों से फालतू जमीन नहीं ले लेते और उस पर ज्यादा लोगों को स्थापित नहीं कर देते तो देवरिया या बस्ती खुशहाल नहीं बन पायेंगे। हमने लाखों अधिवासी परिवारों को, सीरदार के दर्जे पर प्रौन्नत किया, महज इसलिए कि उनके लिए रोजगार का कोई जरिया नहीं था, उनकी बेदखली से राज्य में सामाजिक और राजनैतिक समस्याएं सिर उठातीं। स्थिति यदि भिन्न होती तो मैंने आर्थिक रूप से अत्यंत कमजोर उन जोतदारों को स्थाई अधिकार दिये जाने की वकालन न की होती। इस तथ्य से कि इस राज्य में भूमिहीम व्यक्तियों के लगभग 7 लाख परिवार हैं, हमें भूमि पुनर्वितरण के अपेक्षाकृत आसान तरीके के बजाय देहाती उद्योगों की स्थापना के लिए प्रेरित होना चाहिए। जर्मनी में यह अधिकार वंचित किए गए उत्तराधिकारियों की समस्या थी जिसे वहां के उद्योगीकरण का एक कारण माना गया। कामगारों को भूमि से हटाकर दूसरे व्यवसायों में लगाने के कांग्रेसी कार्यक्रम को इस तरह लागू करना अजीब होगा कि जिनके पास आज जमीन नहीं, उन्हें पहले जमीन से बाँध दें और उसके बाद उन्हें दूसरे व्यवसायों की ओर ले जाने का प्रयास करें। मैंने 'बांधना' शब्द का प्रयोग किया है, क्योंकि भूमि में एक अजीब आकर्षण होता है। भूमि की एक पुकार होती है, ठीक वैसे ही जैसे कि समुद्र की पुकार होती है। बूरे वर्ष यद्यपि आते रहते हैं, मगर भूमि जोतदारों का कभी मोह भंग नहीं होने देती, क्योंकि भविष्य में अच्छी पैदावार होने की उम्मीद हमेशा बनी रहती है।

फिर भी, इस सम्बन्ध में वास्तविक विचारणीय प्रश्न यह उठता है कि उत्तर प्रदेश में उस तरह की अधिक या फालतू भूमि का पर्याप्त क्षेत्र उपलब्ध है भी या नहीं। पुनर्वितरण के लिए उपलब्ध भू क्षेत्र किसी भी हालत में 7.5 लाख एकड़ से अधिक बड़ा नहीं हो सकता। चूंकि बड़े किसान अपनी जोतों के वास्तविक दखलकार और उपभोक्ता हैं, उन्हें प्रतिएकड़ उससे कहीं ज्यादा मुआवजे का भुगतान करना होगा जितना कि हमने बिचौलिए जमींदारों को संविधान (चौथा-संशोधन) विधेयक के बावजूद उनके स्वामित्व अधिकार का अधिग्रहण करने के लिए किया था। उत्तर प्रदेश सरकार के सामने जो सवाल है, वह है कि मुआवजा कहां से आयेगा? राज्य का बजट हमेशा घाटे का चल रहा है, भावी जोतदार भुगतान करने की स्थिति में नहीं होंगे। दूसरा सवाल है, भूमि किन्हें आवंटित की जाये? अनार्थिक (निर्धन) जोतदारों को या भूमिहीनों को? तीसरा सवाल इस बारे में है, क्या इससे कृषि की स्थिति में भौतिक दृष्टि से कोई सुधार होगा? क्या इतना सारा जो समय, धन और श्रम इसमें लगेगा, उससे किसी भौतिक उपलब्धि की प्राप्ति होगी? राज्य में पहले से ही 85 लाख कृषक परिवार मौजूद हैं, उनमें आधे ऐसे हैं, जिनमें से प्रत्येक के पास 5 एकड़ से कम जमीन है। फिर, ये विचार सैद्धान्तिक रूप से असंगत हो सकते हैं, लेकिन अन्य नीतियां रुपायित करते समय प्रशासन द्वारा इन्हें यह सोचकर अनदेखा नहीं किया जा सकता कि उनका कोई महत्व ही नहीं।

अन्तत: हमने पुरी सावधानी से यह गौर किया है, कि वे बड़े जोतदार जो अयोग्य कृषक साबित हुए हैं, उनके हाथ में राष्ट्रीय परिसम्पति यों ही बेकार पड़ी रहने दी जाये। इस मामले में सरकार हस्तक्षेप करेगी और वह भूमि मामूली लगान पर लम्बी अवधि के लिए असामियों को बन्दोबस्त कर दी जायेगी। दूसरे मामले में, ए. आई. टी. (एग्रीकल्चरल इन्कम टैक्स) जिसे जोतों के आकार के मुताबिक निर्धारित किया गया, जोतदारों पर एक बड़ा बोझ साबित होगा।

मैंने निश्चित रूप से विनोबा भावे के बारे में सुना है। यहीं नहीं, इस श्रद्धेय संत ने मुझे संदेश भेजा कि सम्भवत: सारे 'अल्पकालिक सताधारी' व्यक्तियों में वह अकेले मुझे ही लघु पैमाने, बड़े पैमाने की कृषि, मशीनी बनाम बैलों से चलने वाली खेती और सहकारी या सामूहिक बनाम निजी खेती से सम्बन्धित विचारों के मामले में अपने निकटतम पाते हैं। इन सवालों को लेकर मैं पिछले 15 वर्षों से, उपहास और मिथ्यारोप के अवसर आते रहने के बावजूद, अपने विचारों पर दृढ़ता से जमा रहा हूं। ये विचार, धन्यवाद आचार्य विनोबा भावे को कि, अब देश में व्यापक रूप से स्वीकृति पाने लगे हैं। मैं विनोबाजी से पूरी तरह सहमत हूं, सिवाय इस बात के कि मैं छोटे जोतदारों या 25 एकड़ से कम जोत रखने वालों से यह अपील नहीं करूंगा कि वे अपनी जोतों का 1/6 भाग दान कर दें। आचार्यजी उत्तर प्रदेश की यात्रा शुरू कर चुके हैं और मैं कुछ छिपा नहीं रहा। मैं कहता हूं कि 'भूदान-यज्ञ' के लिए दान की गई भूमि खेती के लिए अनुपयुक्त है।

मैं यहां यह भी जोड़ना चाहूंगा कि मैं पहली पंचवर्षीय योजना को ज्यादा महत्व नहीं देता। वस्तुत: यह योजना जहां तक जाती है, उत्तर प्रदेश उससे आगे निकल गया है या सम्भवत: उससे भी आगे, जहां तक किसी दूसरे राज्य को पहुंच पाने में अभी तक सफलता मिल गई है। आशय यही कि इस विषय में निश्चित रूप से वही आवाज उठाता रहा हूं, जो आज सरकार की नीति है और जिन्हें यथार्थ स्थिति का ज्ञान है तथा सार्वजनिक मामलों की सही समझ है, वे कम से कम भूमि सुधारों के मामले में मुझे प्रतिक्रियावादी करार नहीं दे पायेंगे।

आपका विश्वस्त

चरणसिंह''

किसान मसीहा चौधरी साब द्वारा जो आंकड़ों की लंबी सूचि अपने पत्र में सम्मिलित की गई थी, वह जानबूझकर यहां नहीं दी गई। आम पाठक के लिए उनके विचार जानने ही काफी हैं, नहीं तो यह बोझिल विषय बन जाता। उनका जबाब दो टूक था और अकाट्य तर्कों के साथ साबित किया कि वे यथार्थ की जमीन पर खड़े हैं। उन्हें खेत-खलिहान की विशिष्ट जानकारी है। सिर्फ लोकप्रियता के लिए झूठे नारे और भाषणों से परहेज था। उन बुद्धिजीवियों और मठाधीशों को यह करार उतर था जो राजधानियों में बैठकर किसान की निर्धनता पर घड़ियाली आंसु बहा रहे थे। सरकारी संत विनोबा भावे और योजना आयोग की खिल्ली उड़ानी चौधरी साब की ही हिम्मत हो सकती थी और यह स्पष्टवादिता उन्हें मंहगी पड़ी थी।

उनके पत्र के प्रकाशित होने के बाद तहलका मच गया था। समाजवादियों और कम्युनिस्टों ने चरणसिंह का यह लेख ठेठ दक्षिणपंथी बताया। सोवियत रूस से नेहरू तो प्रभावित थे ही, कम्युनिस्ट तो इतने खुश थे कि जैसे लेनिन का नाम लेने से ही भारत में क्रांति हो जायेगी। आज तो विश्व कम्युनिज्म को दफनाने का श्रेय गोर्बाचोफ को है, लेकिन भारत के कम्युनिस्टों ने अपनी करतूतों से पहले ही कम्युनिस्ट आंदोलन को सिर्फ अखबारों और कॉफी हाउसों तक ही सीमित कर दिया था। केन्द्रीय नेतृत्व पर कुंडली मारे रूढिवादी बुढे नेताओं ने नये नेतृत्व का गला घोंट कर रख दिया। नीरस भाषणबाजी और अर्थहीन शब्दों की जुगाली करके जैसे इन नेताओं ने इतिश्री समझ ली थी।

रुस में बड़े बड़े कृषि फार्म थे और राज्य के अधीन थे और इन पर किसान, मजदूर बनकर कार्यरत थे। ये कृषि फार्म असफल हो रहे थे। चरणसिंह ने पहले ही घोषणा कर दी थी कि रुस की कृषि नीति कभी सफल नहीं होगी। खेती की छोटी जोत और नीजि खेती के हिमायती थे।

अब, जब वे हदबन्दी के पक्ष में नहीं थे, तो कम्युनिस्टों और बुद्धिजीवियों को अवसर मिला कि वे चरणसिंह पर प्रहार करें। अखबारों में लेख लिखकर चरणसिंह को इसी बात पर बड़े किसानों का हिमायती और कुलक कहा जाने लगा।

'नेशनल हेराल्ड' में छपे सैंकड़ों पत्रों में से दो का उन्होंने जबाब देना आवश्यक समझा। ये दो पत्र थे-उत्तर प्रदेश किसान सभा के संयुक्त सचिव पी. के. टंडन और लखनऊ विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र के प्रोफेसर बी. बी. सिंह के। चरणसिंह ने लिखा-

''कृषि सम्बन्धी आंकड़ों से निष्कर्ष निकालने में इन दोनों ही महानुभावों ने गलती की है, जैसाकि पहले भी बहुत से लेखक और सार्वजनिक कार्यकर्ता करते रहे हैं। भूमिखातों में दर्ज व्यक्तियों की संख्या और परिवारों तथा जोतों की संख्या को एक समझना इसका उदाहरण है। श्री टंडन का यह कहना कि खेतिहर आबादी के 81.2 प्रतिशत के पास कृषि क्षेत्र का सिर्फ 38.8 प्रतिशत है तथा श्री बी. बी. सिंह का यह निष्कर्ष कि उत्तर प्रदेश के 55.8 प्रतिशत किसानों में से प्रत्येक के पास 2 एकड़ से भी कम भूमि है, दोनों ही को उत्तरप्रदेश जमींदारी उन्मूलन समिति की रिपोर्ट के भाग-2 पृष्ठ 6 पर दी गई तालिका संख्या 5 से समझा जा सकता है। इस तालिका के अनुसार फसली वर्ष 1352 या 1944-45 के दौरान खतौनी के भाग 1 में दर्ज 1, 22, 78,000 व्यक्तियों में से प्रत्येक व्यक्ति एक परिवार का प्रतिनिधित्व करता है, ऐसे गलत निष्कर्ष की ओर ले जाता है कि जिन मुट्ठीभर लोगों का विशाल क्षेत्र पर स्वामित्व है, उसकी तुलना में किसानों के बहुत ही ज्यादा प्रतिशत के पास बहुत ही कम भूमि है। वस्तुत: हमारे राज्य के किस क्षेत्र से 1, 22, 78,000 किसानों का यह आंकड़ा सम्बद्ध है, वहां फसली वर्ष 1352 में 70 लाख खेतिहर परिवार से अधिक नहीं रहे होंगे। इसका मतलब है कि ज्यादातर परिवारों के दो या अधिक सदस्य जोतदार के रूप में दर्ज किये गए। चार वर्ष बाद अर्थात् फसली वर्ष 1356 में काश्तकारी जोतों की संख्या सिर्फ 32 प्रतिशत कृषि क्षेत्र में चलाये गए जेड. ए. एफ. अभियान के तहत ही भूमि सुधार कमिश्नर द्वारा जुटाए गये आंकड़ों के अनुसार 160 लाख से अधिक हो गई।

अब ग्राम्य जीवन के अनुभव हमें बतायेंगे कि अपेक्षाकृत छोटे यानी पांच एकड़ या उससे कम जोत वाले किसानों ने एक से अधिक नाम राजस्व के खातों में, दर्ज कराये और अपनी जमीन एक से अधिक पट्टे या लीज के तहत रखी, जबकि बड़े किसानों के पास आम तौर पर सिर्फ एक जोत रही।

श्री टंडन ने उत्तर प्रदेश में पिछले कुछ वर्षों के दौरान 'बड़े किसानों' द्वारा किसानों के निर्धनतम तबके के विरुद्ध जबरदस्त बेदखली अभियान की हवाई बात उठाई है। उन्होंने अपनी धारणा की पुष्टि के तौर पर तथ्य और आंकड़े नहीं दिये हैं, इसलिए उनके बच निकलने की पूरी गुंजाइश है। फिर भी, प्रत्येक वेतनभोगी या अन्य लोक सेवी को विदित ठोस तथ्य यह है कि जमींदारों को ऐसा कोई अभियान छेड़ने की इजाजत नहीं दी गई है, क्योंकि अवैध बेदखली या बेदखली की धमकी-भर की महज सूचना मिलते ही सरकार हमेशा राजस्व विभाग की पूरी मशीनरी को गतिशील बनाती रही है, ताकि गरीब आदमी का न्याय सम्मत् अधिकार सुरक्षित रहे।

यह सिद्ध करने के लिए कि इन वर्षों के दौरान निर्धन किसानों का स्वत्वहरण बड़े पैमाने पर जमींदारों द्वारा बेरोक-टोक होता रहा है, श्री टंडन ने सबूत के तौर पर भूमि रिकार्डों में 29 लाख गलत प्रविष्टियों की मौजूदगी का जिक्र किया है। दरअसल ये गलत प्रविष्टियां 1942 से ही जमा होती रहीं, क्योंकि राजस्व अधिकारियों को इस या उस विशेष अभियान के अन्तर्गत लगातार व्यस्त रखा गया और उन्हें इतना पर्याप्त समय नहीं मिला कि रिकार्डों को नियमित रखने पर ठीक से ध्यान दे पाते। फिर भी इन गलत प्रविष्टियों में से 80 प्रतिशत विवाद रहित हैं और उत्तराधिकार से सम्बन्धित कागजात आदि नहीं प्रस्तुत किये जाने के कारण गलत दर्ज हुए हैं। विवाद केवल 20 प्रतिशत को लेकर है और ऐसा नहीं लगता कि हर मामले में धनी जमींदार ही निरपवाद रूप से जमीन हथियाने वाला है, बल्कि अधिकतर विवाद एक ही स्थिति के खेतीहरों के बीच होने

का संकेत मिलता है। फिर 20 लाख गलत प्रविष्टियों के 20 प्रतिशत के दायरे में कुल कृषि योग्य क्षेत्र का एक प्रतिशत से भी कम क्षेत्र आता है, जिन्हें सुधारे जाने पर सही व्यक्ति को उसका हक मिल जायेगा।

जहां तक परती जमीन पर जमींदारों के दखल की बात है, इस बारे में बहुत सी शिकायतें सामने आई हैं। लेकिन जमींदारी उन्मूलन और भूमि-सुधार कानून के तहत नियम 115 को जोड़ने और द्वितीय संशोधन कानून द्वारा अनुच्छेद 212ए का अधिनियम हो जाने से इस तरह की जमीनें भूमि प्रबन्धन समिति द्वारा आसानी से बरामद की जा सकती हैं। ऐसी बरामदगी के लिए काफी लम्बी अवधि का प्रावधान किया है और समितियां धीरे धीरे इस ओर अग्रसर हो रही हैं। अपनी दृढ़ इच्छा के प्रमाण के तौर पर मैं यह

उल्लेख कर सकता हूं कि सचिवालय में उपलब्ध सूचना के अनुसार 24 जिलों की समितियों ने 30 जून 1954 तक 13, 895 एकड़ भूमि भूमिहीन व्यक्तियों में वितरित की है। हमने अभी तक यह जांच नहीं की है कि हथियाई गई कितनी भूमि बरामद की जा चुकी है या कितने मामले इस दृष्टि से अभी स्थगित हैं।

श्री टंडन का आगे यह आरोप हैं कि गिरती कीमतों और प्राकृतिक आपदाओं के चलते गरीब तबके द्वारा भूमि बड़े पैमाने पर धनी जमींदारों को हस्तांतरित की गई है। मैं अवश्य माफी चाहूंगा और अगर कहूं कि श्री टंडन ने यह वक्तव्य देते समय लगभग पूरी तरह कल्पना का सहारा लिया है। जमींदारी उन्मूलन 30 जून 1954 को लागू हो जाने तक 82 प्रतिशत भूमि सीर या खुद काश्त जमीन खरीदने के लिए तैयार नहीं थे, क्योंकि स्वत्व खोने के साथ-साथ जमींदारी हस्तांतरित की गई भूमि का स्वामित्व रहित असामी बन गया था और हस्तांतरित की भूमि को वास्तविक कब्जा नहीं मिल पाया था। यही नहीं, असामियों द्वारा जोती जा रही भूमि पर भी जमींदारों के स्वामित्व-अधिकार को हस्तांतरित किये जाने पर भारी बंदिश लगा दी गई थी जिसके लिए मैं जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधा कानून के अनुच्छेद 23(1) की ओर श्री टंडन का ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा।

वे सिर्फ भूमिधर हैं जिनका आज कृषि योग्य क्षेत्र के 37.50 प्रतिशत पर अधिकार है और जो अपनी भूमि हस्तांतरित कर सकते हैं। जमींदारी उन्मूलन के बाद एक वर्ष के दौरान उनके द्वारा हस्तांतरित कुल क्षेत्र, अद्यतन यानि 1 अक्टूबर, 1952 से 30 सितम्बर, 1953 तक के उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार सिर्फ 93859 तक पहुंचता है। (यहां तालिका देकर चौधरी साब ने डीविजन अनुसार आंकड़े प्रस्तुत किये थे)

यह 93859 एकड़ का क्षेत्र भी जमींदारों के हाथ में नहीं आ सकता था, क्योंकि मौजूदा कानून के तहत कोई इतनी जमीन अपने या अपनी पत्नी या अपने नाबालिग बच्चों के नाम से नहीं खरीद सकता कि उसकी सारी जोत 30 एकड़ से बड़ी हो जाये। किसी को भी यह देखकर संतोष होगा कि मध्यवर्ती और पूर्वी जिलों में, जहां के किसान अपेक्षाकृत गरीब हैं, सचमुच बहुत ही कम हस्तांतरण हुआ है। श्रीटंडन के दावे का इससे बड़ा प्रतिवाद नहीं हो सकता।

जहां तक जमींदारों के मित्रों और सम्बन्धियों के बीच फर्जी बंटवारे की बात है, श्री टंडन यह भूल जाते हैं कि मैंने 50 एकड़ से ऊपर की ऐसी बड़ी जोतों के आंकड़े उद्धत किये थे जिन्हें कृषि आयकर के लिए छांटा गया था और कृषि आयकर कानून अपने अनुच्छेद 4ए, 8, 9 और 10 के जरिये यह सुनिश्चित करता है कि बड़े जोतदार की फर्जी लिखा पढी द्वारा अपनी जोत बंटी हुई दिखाकर बच निकलने की छूट नहीं दी जायेगी।

अन्त में उन 114655 व्यक्तियों में, जिनमें से प्रत्येक के पास 25 एकड़ से ज्यादा की जोत थी और जिनके बारे में शायद श्री टंडन की कल्पना है कि वे सब के सब धनी जमींदार थे, केवल 32,555 ही जमींदार थे और बाकी 82, 100 काश्तकार थे। अस्तु, धनी जमींदार द्वारा जबरदस्त बेदखली अभियान छेड़ा जाना और सार्वजनिक भूमि पर कब्जा तथा बड़े पैमाने पर उनके हित में

हस्तांतरण किया जाना-वे तत्व जिन्होंने श्री टंडन के विचार से जमीन हड़पने वालों को इतनी ज्यादा मदद पहुंचाई गई कि उत्तराधिकार कानून द्वारा किया गया उनकी जोतों का विभाजन भी रद्द हो गया-अगर वस्तुत: सच भी हो तो वह 1, 14, 655 में से केवल 32,555 व्यक्तियों के लिए होगा।

अब, वह भूमि जो वितरण के लिए उपलब्ध होगी, जमींदारी उन्मूलन समिति की रिपोर्ट-भाग 2 में दी गई विविध तालिकाओं और वक्तव्यों को देखने पर किसी को भी पता चल जायेगा कि 1, 14, 655 में 32,555 बड़े जोतदारों के पास जो जमींदार थे, 16, 69, 474 एकड़ क्षेत्र था या मोटे तौर पर 51 एकड़ प्रत्येक के पास और 82, 100 के पास जो कि काश्तकार थे, 3641098 एकड़ या मोटे तौर पर 4405 एकड़ प्रत्येक के पास थी। स्वामित्व वाली 32,555 जोतों में से, रिपोर्ट में जिन्हें अलग अलग दर्शाया गया है, 22 प्रतिशत जोतें 25-30 एकड़ वाले समूह में आती हैं, इनमें से 19 प्रतिशत जोतों वाला 12 प्रतिशत क्षेत्र बुंदेल खंड में पड़ता है। चूंकि स्वामित्व वाली जोतों की अपेक्षा काश्तकारी जोतें क्षेत्रफल में 12.75 कम हैं, अत: अनुमान लगा सकते हैं कि बुंदेलखंड में स्थित स्वामीत्व और गैर-स्वामित्व वाली 25-50 एकड़वाली निम्नतर समूह की जोतों का प्रतिशत अधिक से अधिक 21 बैठेगा यानी अनुमानत: 24, 078 जोतें।

बुंदेलखंड का 2 एकड़ का क्षेत्रफल राज्य के शेष भागों में एक एकड़ के बराबर माना जाता है। इसलिए हम मान लेते हैं कि पूरे राज्य में 25 मानक एकड़ से अधिक वाली सिर्फ 90,600 जोतें हैं। फिर इनमें से भी बुंदेलखंड की 50 एकड़ से अधिक वाली जोतों का सही रकबा निकालने के लिए आधा करना पड़ेगा जो कि पुनर्वितरण के लिए उपलब्ध हो सकती है। रिपोर्ट का वक्तव्य-12 देखने पर पता चलेगा कि बुन्देलखण्ड में स्वात्वि वाले समूह की ऐसी बड़ी जोतें कुल 7.5 प्रतिशत हैं। काश्तकारी जोतें क्षेत्रफल में छोटी होने और राज्य की सभी बड़ी जोतों का 71 प्रतिशत होने के कारण हम मजे में बुन्देलखण्ड की 50 एकड़ से अधिक वाली जोतों की संख्या को कुल का 6.25 प्रतिशत कह सकते हैं। कुल 90,800 जेतों जो हमारे पास रह जाती हैं, उनसे 1, 14655 का 3.125 प्रतिशत या 13,583 जोतें घटा देने पर हम कुल 43,52,000 मानक एकड़ क्षेत्र 87,000 जोतों की संख्या तक पहुंचते हैं जो हमें बुन्देलखण्ड की 25-50 एकड़ वाले समूह की 24,00 जोतों के चलते 6,64000 और बड़े समूह की 3,600 जोतों के चलते 2,95,000 एकड़ घटा देने पर हमें प्राप्त होती है। इस क्षेत्र का भी लगभग छठा हिस्सा शिकमी काश्तकारों और गैर दखलकार काश्तकारों को दे दिया गया, जो स्थायी अधिकार प्राप्त कर चुके हैं। इसलिए इन बड़े जोतदारों के हलकी नोक तले जो क्षेत्र वास्तव में रह गया है, यह सिर्फ 36,27,000 एकड़ तक पहुंचता है। प्रत्येक के लिए 25 एकड़ आरक्षित रखने पर हमारे पास मोटे तौर पर 14,52,000 फालतू जमीन रह जाती है। यह स्थिति फसली साल 1352 में थी। इसलिए फसली वर्ष की इन 87,000 जोतों में आधी से अधिक का अवश्य ही उत्तराधिकार कानून के चलते ऊब तक उप विभाजन हो चुका होगा। मेरा यह कथन गलत नहीं होगा अगर मैं कहूं कि प्रत्येक बड़े जोतदार के लिए 30 एकड़ सुरक्षित रखने पर वितरण के लिए उपलब्ध भूमि आज 7.5 लाख एकड़ होगी। (यहां भी तालिका पेश की थी जिसमें कृषकों, खेतिहर मजदूर और लगान पाने वाले (जमीदारों) आदि की आबादी बताई गई थी-लेखक)

कम से कम उत्तर प्रदेश में भूमि कुछ ही लोगों से और भी कुछ लोगों के हाथों में सिमटती नहीं गई और न ही किसानों को उनकी जोतों से वंचित कियां गया अथवा मार्क्सीय अर्थशास्त्र के 'वृतिभोगी दासों' की जमात खड़ी होने दी गई, जिसकी कल्पना में अनेक भद्रजन सुख का अनुभव किया करते हैं।

मैंने अपने पत्र में सुझाव दिया था कि छोटी जोतें, बड़ी जोतों की अपेक्षा प्रति एकड़ अधिक उपज देती हैं। मुझे पता है कि मेरा यह विचार आर्थिक और राजनैतिक वैचारिकता के अनुगामियों के लिये अभिशाप है, श्री टंडन और अखबार में प्रकाशित वक्तव्य के आधार पर मैंने लक्ष्य किया

है कि श्री बी. बी. सिह के साथ भी यही बात है। श्री सिंह कहते हैं कि दोनों प्रकार के फार्मों के उत्पादन की तुलना करते समय मैंने शायद पाउन्ड (मुद्रा) और पाउन्ड (वजन) केभेद को समझने में भूल की है। श्री बी. बी. सिंह विभिन्न देशों के कृषि उत्पादन से सम्बन्धित कोई भी विश्वस्त अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशन देखें और वे पायेंगे कि जापान, चीन, जर्मनी, डेनमार्क, बेल्जियम और अन्य ऐसे देश जहां छोटी जोतों का प्रचलन है, केवल कपास और मूंगफली जैसी नगदी फसलें ही नहीं, बल्कि गेहूं, जौ, मकई आदि खाद्यान्न भी अमेरिका, सोवियत संघ और आस्ट्रेलिया जैसे देशों की अपेक्षा ज्यादा उत्पादित करते हैं, जहां बड़ी बड़ी जोतों चाहे जैसी भी संचालित का प्रचलनहै। फिर जैसा कि वी. बी. सिंह स्वीकार करते हैं, छोटे किसान भी अगर न केवल प्रति एकड़ खाद्यान्न उपजा कर बल्कि मुर्गी पालन और व्यावसायिक फसलें उगाकर अपनी आमदनी बढा सकने में समर्थ हों तो कोई कारण नहीं कि बड़े फार्मों की जगह छोटी फार्मों को प्राथमिकता नहीं दी जाये, खास तौर से जबकि हमें इतनी बड़ी आबादी का पेट भरना है और जमीन इतनी कम है।

बड़े पैमाने पर कृषि फार्मों की वकालत करने वाले यह यकीन कर रहे प्रतीत होते हैं कि जैसे निर्माणकारी उद्योग में सम्पत्ति का एकत्रीकरण लगाई गई पूंजी के प्रति इकाई के उत्पादन को बढाने में सहायक होता है, वैसा ही कृषि क्षेत्र में भी होगा। लेकिन कृषि विज्ञान की प्रगति ने यह दिखा दिया है कि औद्योगिक उत्पादन के नियम कृषि उत्पादन के लिए लाभकारी नहीं होते। कारण स्पष्ट है। एक अर्थशास्त्री ने बताया है "वस्तु निर्माण की प्रक्रिया एकयांत्रिक प्रक्रिया है जिसमें खास ढांचे की वस्तुएं उसी मशीन से लगातार उत्पादित होती रहती हैं. दूसरी तरफ कृषि प्रक्रिया एक जैविक प्रक्रिया है और इसके उत्पादन मानव द्वारा चालित यांत्रिकी (मशीनों) के परिणाम नहीं, बल्कि मानव में ही निहित विकासशीलता के गुणों की देन है।"

अतएव महज मशीनों के इस्तेमाल और सम्पति के एकत्रीकरण से कृषि के उत्पादनों में वृद्धि नहीं होती। यह भरपूर पानी, खाद, बेहतर जैवखाद का प्रयोग, आधुनिक रसायनों का इस्तेमाल, उन्नत किस्म के बीज, कीटों और बीमारियों पर नियंत्रक के उपाय तथा किसान की क्षमता है जो प्रति एकड़ वास्तविक उत्पादन को प्रभावित करते हैं और यही नहीं, कि जमीन कैसे जोती गई, बड़े बड़े चकों में ट्रोक्टर से या छोटे छोटे खेतों में मवेशियों के श्रम से यदि हम मान भी लें कि बड़े फार्म तकनीकी तरीकों का बेहतर इस्तेमाल कर लेते हैं या पानी, खाद, उन्नत बीज और कीटनाशी जैसी कृषि सम्बन्धि आवश्यकताएं आसानी से पूरी कर सकते हैं, तो छोटे किसान भी सहकारी प्रयास से यह सब उपलब्ध कर सकते हैं, जहां वे विशाल उपक्रमों की सारी तकनीकी सुविधाओं का लाभ उठा सकेंगे तथा फिर भी निजी भू-सम्पति अपने पास रखने की आजादी और साथही साथ काम करने की आजादी उन्हें सुलभ रहेगी। ये इसी प्रकार की कृषक सहकारियां हैं, सहकारी कृषि नहीं, जिनके बारे में मैंने अपने पत्र में कहा था कि वे हमारी समस्याएं अच्छी तरह सुलझा सकेंगी। यह पद्धति व्यक्तिगत देखभाल और ध्यान को सुनिश्चित करेगी जिनकी मानवजीवन और पशु-जीवन की तरह ही पौद्यों के जीवन के लिए भी सख्त जरूरत रहती है तथा जिन्हें किसान परिवार पारिश्रमिक लिए बिना सुलभ कर सकता है।

श्री टंडन इससे इनकार नहीं कर सकते कि उनके वास्तविक मतानुसार किसान एक बदतर किस्म का पूंजीपति है। क्योंकि, लेनिन ने घोषणा की थी, "छोटे उत्पादन से पूंजीवाद और बुर्जुआ मध्यम वर्ग उत्पन्न होते हैं, लगातार दिन प्रतिदिन, घंटा-प्रतिघंटा, सहज स्वाभाविक रूप से और बड़े पैमाने पर।" तो फिर कोई पूछ सकता है कि श्री टंडन क्यों उस मार्ग की वकालत करते हैं जो पूंजीवादी बुर्जुआ की तादाद को बढाता है। फिर, उनका अनुसरण करते हुए यह भी नहीं माना जा सकता कि छोटे पैमाने की खेती से अधिक समृद्धि आती है और प्रति एकड़ ज्यादा रोजगार उपलब्ध होता है। तो फिर क्यों वह बड़े फार्मों को छोटे छोटे टुकड़ों में बांटने की वकालत करते हैं? चौकस पाठक, यह लक्ष्य करेंगे कि श्री टंडन अपनी मौजूद बात से पीछे हटने का मार्ग सुरक्षित रख छोड़ने की चतुराई भी दिखाते हैं जब मेरे तर्क के साथ इस समय जोड़ते हैं और कहते हैं,

'श्री चरणसिंह खुद स्वीकार करते हैं कि बड़ी जोतों में खाद्यान्न का उत्पादन इस समय छोटे फार्मों की अपेक्षा निम्नतर है।'

इससे श्री टंडन की मानसिकता का आभास भर मिलता है लेकिन श्री वी. बी. सिंह ज्यादा खुले हुए हैं। वह प्रत्येक भूमिहन को दो-दो एकड़ बांट देंगे क्योंकि जैसा कि उनका कथन है, इस तरह के पुनर्वितरण से सहकारी खेती के विकास में मदद मिलेगी जहां आवश्यकतानुसार पहले तो श्रम और मवेशी आदि मूल संसाधनों को एक जगह इकट्ठा किया जायेगा और फिर अन्तत: भूमि को भी जिसका पुनर्वितरण वह आज कर देना चाहते हैं-सच तो यह है कि उनकी ललक रुसी ढांचे के सामुहिक फार्मों के लिए है और पुनर्वितरण की बात के किसानों को खुश करने के लिए कर रहे हैं। एक बार वे किसी तरह उनकी सद्भावना प्राप्त कर लेते हैं और उन्हीं का सहारा ले सता हथियाने में कामयाब हो जाते हैं तो फिर नियोजित ढंग से वे उन्हें यांत्रिकी 'कोलखोजी' में धकेलेंगे जहां वे मजदूर -'खेतीहर मजदूर' होकर रह जायेंगे। यह पहली बार नहीं है जैसा कि पाठकों ने 8 अप्रेल 1955 के नेशनल हेराल्ड में अवश्य देखा होगा, रूस के देहाती इलाकों में 30,000 नगर प्रशिक्षित विशेषज्ञों का एक 'शॉ-ब्रिगेड' भेजा जा रहा है जिन्हें कृषि में मार्ग दर्शन सुनिश्चित करने के लिए 'सामुहिक फार्मों के अध्यक्ष के रूप में अनुशंसित' किया गया है। उन्होंने 1930 में भी कोलखोजी गठित करने और उनके प्रथम अध्यक्ष बनने के लिए 25,000 औद्योगिक कामगारों की भर्ती की थी।

कम्युनिस्टों ने यूरोप में दशकों के कड़वे अनुभव के बाद अपना सबक सीख लिया है जहां राज्य द्वारा संचालित कृषि के मार्क्सवादी सिद्धान्तों या इन्हीं के अनुरूप किसी भी शैली की बड़े पैमाने पर की जाने वाली कृषि को लागू किया गया तो वे समाजवादी खेमे के किसानों का दिल जीत नहीं पाये। तभी उन्होंने किसानों के साथ सख्ती से पेश आने का निश्चय किया।

श्री वी. बी. सिंह आंकड़ों से बहुत आतंकित हैं, एक अर्थशास्त्री के लिए यह एक बड़े अचरज की बात है। आंकड़े तभी प्रवंचना लगते हैं, जब लेखक अन्य बातों में चाहे वह जितना भी सक्ष्म हो, पूर्वकल्पित नारों के औचित्य को सिद्ध करने के लिए उनका उपयोग करता है। अगर हम आंकड़ों पर निर्भर नहीं करते तो सारी योजना का आधार ही गायब होता। वस्तुत: जीवन के किसी भी क्षेत्र या प्रशासकीय विभाग के किसी बहुसदस्यीय निकाय के लिए कोई भी योजना तैयार करना सम्भव नहीं होता।

सिर्फ दो उदाहरण हैं कि आंकड़ों की कैसे गलत व्याख्या होती है और वे श्री वी. बी. सिंह के ही पत्र से! मेरे द्वारा पहली पंचवर्षीय योजना के पृष्ठ 199 से लिये वक्तव्य के आखिरी कॉलम में क्षेत्र का प्रतिशत, शीर्षक स्पष्टत: 'सम्बद्ध राज्य के सारे कृषित क्षेत्र में बड़ी जोतों के क्षेत्रफल का प्रतिशत' का अर्थ देता है। लेकिन श्री बी. बी. सिंह ने 'क्षेत्र का प्रतिशत के साथ कोष्ठक के अन्तर्गत' पुनर्वितरण के लिये उपलब्धा जोड़कर बिल्कुल भिन्न और भ्रामक अर्थ दे दिया है। फिर, वक्तव्य में दिये गये बड़ी जोतों के आधार को इनके द्वारा राज्य के लिए निश्चित की गई हदबंदी समझ लिया गया है, ईश्वर ही जानता है कि कैसे और क्यों इस तरह की व्याख्या और कहीं नहीं बल्कि गलत निष्कर्ष तक ले जाती है।

मैंने कहीं कहा है, जैसा कि श्री वी. बी. सिंह का आरोप है कि भूमि के पुनर्वितरण से अनार्थिक लोगों की संख्या बढेगी। क्योंकि मेरा विश्वास है कि अगर पुनर्वितरण होना ही है तो या तो भूमि उन्हें भी दी जायेगी जिनके पास अनार्थिक जोते हैं, अथवा अगर भूमिहीनों को सौंपी जाये तो वह आर्थिक आकार की जोतों के रूप में हो।

विवाद को और आगे घसीटने की मेरी इच्छा नहीं है। भूमि पुनर्वितरण का सिद्धान्त राजनीतिक संगठन द्वारा अजमेर में पिछली जुलाई में स्वीकार कर लिया गया है, जिसमें उत्तर प्रदेश सरकार के सदस्यों को भी शामिल होने का सुयोग मिला था। हमारा सिर्फ यही अभिमत है कि उत्तर प्रदेश में हमारी जो परिस्थितियां हैं, उनमें यह समस्या कुछ ही या बिल्कुल महत्व

नहीं रखती। बल्कि हमें तो सब कुछ छोड़ अपने देहातों के लघु उद्योगों को बढावा देना है और राज्य के सभी हितैषियों का ध्यान इस तरफ खींचना है तथा सभी सरकारी सेवारत कर्मचारियों की ऊर्जा को इसी में सुनियोजित रूप से लगाना है। भूमि और इसकी समस्याएं हो चुकीं, और अभी भी उनके लिए बहुत कुछ हो रहा है।

–चरणसिंह"

पी. के. टंडन और वी. बी. सिंह के पत्र यहां प्रकाशित नहीं हुए हैं लेकिन चरणसिंह के जबाबी पत्र से समझा जा सकता है कि उन्होंने क्या लिखा होगा? एक किसान सभा के नेता, तो दूसरे विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र के प्रोफेसर। विज्ञान में स्नातक, इतिहास से एम. ए. फिर एल. एल. बी. चरणसिंह का उत्तर, 'एक तीर से दो शिकार' है। सम्पादक को पहले और बाद में इन नेताओं को दिये उत्तर से बहुत कुछ स्पष्ट होता है। पाठकों को अब यह स्पष्ट हो गया होगा कि चौधरी साब पढने लिखने में इतने व्यस्त क्यों रहते थे। यूरोप, अमेरिका, रूस, जापान और चीन की अर्थव्यवस्था का निचौड़ उन्होंने निकाल लिया था। तब उनकी दृढ़ धारणा अपने विचारों के प्रति और भी पुख्ता हो गई थी और वे बड़े से बड़े अर्थशास्त्री से टक्कर लेने को तैयार थे। दूसरा, अखबारों में उस समय अन्य बनाम चरणसिंह की एक तूफानी बहस शुरू हो गई थी। लेकिन क्या मजाल कि कहीं वे परास्त हुए हों। उनका मस्तिष्क, जबान और आंकड़े गिनाती अंगुलियां जैसे एक दूसरे से गुंथ गये थे। वे एक सजीव कम्प्यूटर थे, जिनके मस्तिष्क में विज्ञान की प्रामाणिकता, इतिहास का ज्ञान और कानून के तर्क हर समय मौजूद रहते। यह तो उस समय था जब केन्द्रीय नेतृत्व से लेकर प्रान्तीय नेतृत्व तक अपनी तोपों का मुंह उनकी ओर साधे हुए थे। जरा कल्पना कीजिए, इस महामानव चौधरी साब को यदि नेतृत्व पूरा सहयोग देता तो वे और कितना रचनात्मक कार्य आसानी से कर सकते थे? चरणसिंह के उतर को पढ़कर पी. के. टंडन और वी. बी. सिंह अभिभूत हो गये थे। तब उन्होंने पत्र लिखकर चौधरी साब के प्रति आभार और सम्मान प्रकट किया।

राजस्वमंत्री चरणसिंह ने कृषि आयकर के स्थान पर बड़ी जोतबंदी-कर को रखा जो जुलाई 1957 से प्रभावित हुआ। 30 एकड़ तक की जोतों को इस कर से मुक्त रखा गया था। यह कानून दोनों तरह के किसानों के लिए वरदान साबित हुआ। इसे इस तरह तैयार किया गया था कि इसमें कहीं कोई खामी नहीं थी जिससे भ्रष्टाचार पनपता या किसानों को परेशान किया जाता। कोई बदनीयत किसान अपनी आय को छिपा नहीं सकता था। इस कानून ने चूंकि क्रमिक कर को लागू किया था जिसकी दर जोत के आकार के साथ बढती भी जाती थी, इसलिए वह अपनी जोत का एक हिस्सा बेचकर उसे 30 एकड़ कर ले और ज्यादा कुशलता से उसका उपयोग एवं उपभोग कर सके। फलस्वरूप राजस्व रिकार्ड के अनुसार बड़ी जोतबंदी करके सिर्फ दो ही वर्ष लागू रहने के बाद उत्तर प्रदेश के 1,00,000 मैदानी और 12,000 पर्वतीय गांवों वाले विस्तृत ग्रामी क्षेत्र में 30 एकड़ से अधिक रकबे की जोतों की संख्या घटकर 8000 रह गई।

इस कानून के अन्तर्गत बगीचों को कराधान से छूट दी गई थी, ताकि किसान ज्यादा से ज्यादा भूमि पर पेड़ लगाने के लिए उत्साहित हों। 1960 में चरणसिंह मंत्री मंडल के बाहर थे और इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा इस कानून को अवैध घोषित कर दिया। लेकिन किसी ने अपील नहीं की। जब कुछ ही समय बाद चरणसिंह को वापस मंत्रीमंडल में लिया गया तब उन्हें जान बूझकर राजस्व विभाग नहीं दिया। उस समय जो सरकार ने हदबन्दी कानून बनाया उसमें इतने छिद्र रख दिये गए कि जमींदारों ने खूब फायदा उठाया। पुनर्वितरण के लाभ उठाने वालों में 90 प्रतिशत हरिजन थे लेकिन यह फायदा कागजों पर ही था। ठाकुरों और ब्राम्हणों ने राजस्व विभाग के अधिकारियों से मिलकर अधिकतर भूमि पर कब्जा कर लिया था। उस समय राजस्वमंत्री ठाकुर हुकुमसिंह थे।

जब चरणसिंह बाद में मुख्यमंत्री बने तो उन्होंने इस कानून के प्रभाव का सर्वेक्षण कराया तो पता लगा कि यह एक निष्क्रिय कानून है। राज्य के बड़े जोतदारों द्वारा बड़े पैमाने पर और लगभग

पूरी तरह से हदबन्दी कानूनों का उल्लंघन किये जाने का उल्लेख किया। सरकारी एजेंसी ने रिपोर्ट दी थी, ''लगता है कि जहां तक ग्राम भूमि के अधिकारों के रिकार्ड दर्ज किये जाने और कृषि योग्य भूमि के उपयोग का सम्बन्ध है, एक पूरा दुष्चक्र काम कर रहा है।''

यह सर्वेक्षण जब पूरा हुआ तब अधिकांश फालतू भूमि या तो विवाद के घेरे में थी या भूमिहीनों को वितरित किये जाने की प्रक्रिया में थी।

बड़े जोतदारों ने हदबन्दी कानून के प्रावधानों से बचने के लिए बड़े बड़े भूखण्ड सीमित दायित्व वाली संस्थाओं, सहकारी कृषि समितियों और धर्मार्थ न्यासों को हस्तांतरित कर दिये थे। भूमि का रिकार्ड तैयार कने वाले लेखपालों को नाजायज तरीके से प्रभावित किया गया था। कुछ जमींदारों के पास 5000 एकड़ तक जमीन थी जिसे फर्जी न्यास और समितियां स्थापित करके, झूठे हस्तांतरण दिखाकर खेती कर रहे थे। ढेर सारी जमीन अपने नौकरों के नाम कर दी थी। कब्जा स्वयं का ही था तथा नौकरों से 20-25 हजार के बौंड भरवा लिये थे जिससे वे सचमुच कब्जा न कर बैठें। हदबन्दी के बाद जो जमीन निकली थी, उसे प्रकट रूप में ऐसे लोगों के नाम कर दी थी जो बाहर पटना, बंबई, कलकत्ता आदि में रहते थे। यह सब भी फर्जी था। लेकिन मुख्यमंत्री या राजस्वमंत्री सभी जमींदारों के पक्ष में ही थे। सस्ती लोकप्रियता के लिए उन्होंने कानून तो बनाया लेकिन रिसने के लिए छेद भी रख दिये थे। तब मंत्री मंडल से बाहर चरणसिंह यह सब देख रहे थे।

एक बड़े जोतदार भानुप्रताप सिंह ने हदबन्दी कानून की आलोचना में एक लेख लिखा था। चौधरी साब उस समय न तो राजस्व मंत्री थे, न कृषि मंत्री। फिर भी उन्हें लगा कि यह उनकी स्वयं की आलोचना है। तब उन्होंने प्रत्युतर में 'नेशनल हेराल्ड' में लिखा-

''भानुप्रताप सिंह कृषि समस्याओं की गहरी जानकारी रखने वाले एक व्यवहार कुशल किसान हैं। विधान सभा में उन्हें हमेशा बड़े सम्मान से सुना जाता है। खाद्य मोर्चे पर कांग्रेसी सरकार के कार्यों का आंकलन उन्होंने किया है, उस पर विचार करने और उत्तर देने का काम अधिक योग्य व्यक्तियों के लिए छोड़ते हुए मैं सिर्फ भूमि हदबन्दी कानून (उत्तर प्रदेश) के सवाल पर उनके साथ अपने मतभेदों को जाहिर करना चाहूंगा।

राज्य में लागू कानून के तहत सभी मौजूदा जोतें काटकर 40 से 80 एकड़ की कर दी गई हैं या कर दी जायेंगी तथा भविष्य में कोई भी उतनी जमीन हासिल नहीं कर पायेगा। जिसे जोड़ने पर कुल जमीन 12.5 एकड़ से अधिक हो जाये। श्री भानुप्रताप सिंह कहते हैं कि कृषकों द्वारा उस जीवन स्तर को प्राप्त करने के मार्ग में एक बड़ी बाधा है जो समुदाय में दूसरों के लिए सुलभ है। इसके चलते कृषि-क्षेत्र से प्रतिभा और पूंजी का पलायन हो गया और चूंकि अन्य व्यवसायों में आय पर कोई सीमा निर्धारित नहीं है, इसलिए नतीजन व्यवसाय के रूप में कृषि का स्तर नीचे चला गया है। उनता मत है कि जब तक इस कानून को रद्द नहीं किया जाता तब तक भारतीय कृषि के आधुनिकीकरण की कोई उम्मीद नहीं।

लेकिन भूसम्पति और भूम्येतर सम्पति के बीच तुलना जैसी कोई बात नहीं आती। भूमि एक ऐसी सम्पति या उपभोग सामग्री है जिसे मनुष्य ने नहीं बनाया अथवा न ही उसके बनने में सहायक होता है, जैसा कि कृषि से भिन्न सम्पत्ति के स्वामी के साथ होता है। इसके अतिरिक्त हमारी परिस्थितियों में भूमि एक सीमाबद्ध करने वाली वास्तविकता है, जबकि पूंजी और कृषि, से भिन्न सम्पति हर कहीं की तरह यहां भी वैसी नहींहै। फिर भी यह आसान और व्यावहारिक नहीं कि भूमि पर जैसी हदबंदी है, वैसी ही कृषि से भिन्न आप पर भी लागू की जाये।

जहां तक जीवन स्तर की बात है, हदबन्दी को हटाने की बजाय उसे लागू नहीं करने से निश्चय ही कृषकों के लिए उच्चतर जीवन स्तर प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त होगा, लेकिन सवाल है कि कुल मिलाकर राज्य की अर्थव्यवस्था पर कितना और क्या प्रभाव पड़ेगा? हदबंदी कानून, 1960 से प्रभावित व्यक्तियों की संख्या नगण्य थी, यानी एक हजार से भी कम। जहां तक भावि अर्जितों

पर हदबंदी लागू किये जाने की बात है, यह भुला दिया जाता है कि हमारे राज्य में प्रति खेतिहर परिवार की औसत जोत भूमि मुश्किल से 4.0 एकड़ या इसी के आसपास आती है। इस हदबन्दी को हटाने का अर्थ यह होगा कि भूमि धीरे धीरे एकत्र होकर गिने-चुने लोगों के हाथों में आ जायेगी और आज के ज्यादातर किसान खेतिहर मजदूर होकर रह जायेंगे या उनकी जोतें छोटी होते होते और भी अनार्थिक आकार की हो जायेंगी। इससे आगे चलकर हमारे लोगों की आमदनियों में असमानताएं, जो आज भी कम नहीं और भी बढेगी और लोकतंत्र को खतरे में डालेंगी।

उत्पादन पर हदबन्दी के प्रभाव की बात जहां तक है, श्री भानुप्रतापसिंह निश्चित रूप से यह सोचते हुए प्रतिष्ठित लोगों के साथ हैं कि 'बड़े पैमाने पर खेती' और 'आधुनिक कृषि' समानार्थी शब्द हैं। यह हमारे नीति नियामकों और शीर्ष राजनीतिक नेतागणों की निराधार धारणा है, जिसके फलस्वरूप गलत नीतियां रूपायित हुई हैं और देश में कृषि उत्पादन की स्थिति बिगड़ गई है।

बड़े फार्मों का अर्थ प्रतिएकड़ बहुत ज्यादा उत्पादन नहीं है। फसलें चाहे छोटे भूखण्ड या बड़े भूखण्ड में लगाई जाये, परिपक्व होने में एक ही जैसा समय लेती हैं और सिद्धान्त: फार्म के आकार का प्रतिएकड़ उपज के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। जहां तक तकनीकि की बात है, संक्षेप में कहें तो कृषि टेक्नोलॉजी के सिर्फ तीन समूह हैं, (1) जीव विज्ञानियों द्वारा वैज्ञानिक विधि से विकसित वनस्पतियों और जीवों की किस्में जिनमें अनेक प्रकार की संकर प्रजातियां और मवेशियों तथा मुर्गियों की बीमारियों आदि दूर करने के टीके शामिल हैं, (2) रसायन विज्ञानियों द्वारा तैयार की गई चीजें जिनमें उर्वरक, कीटनाशक, फफूंदीनाशक के साथ साथ खरपतवारनाशी और पशुधन के पूरक आहार शामिल हैं और (3) भौतिक विज्ञानियों और इंजीनियरों द्वारा प्रस्तुत ट्रेक्टर तथा खेती के अन्य यंत्र जैसी वस्तुएं और भंडारण जैसी सुविधाएं।

अब इनमें से किसी भी टेक्नोलॉजी के लिए बड़ा फार्म आवश्यक नहीं हैं और बड़े फार्मों की तरह छोटे फार्मों में भी इन्हें प्रयोग में लाया जा सकता है।

लेकिन वास्तविक व्यवहार में यह विदित है कि मालिक के ज्यादा से ज्यादा श्रम और निगरानी के चलते छोटे फार्म बड़े फार्मों की अपेक्षा ज्यादा प्रति एकड़ उपज देते हैं। मैं इस पत्र को आंकड़ों से बोझिल नहीं करना चाहता और इसी उल्लेख तक सीमित रखूंगा कि यूरोपीय फार्म, जौ औसतन अमेरिका और सोवियत संघ के फार्मों की अपेक्षा छोटे हैं उनसे ज्यादा उपज देते हैं। जापान एक और बढा चढा उदाहरण है जहां औसत फार्म का आकार मुश्किल से 3.5 एकड़ है।

अन्तत: किसानों की मुक्ति (और कुल मिलाकर देश की गरीबी की समस्या का हल) उनकी संख्या कम करने और उच्चतर आय देने वाले कृषि के भिन्न व्यवसायों में उन्हें लगाने में निहित है। हमारी गरीबी का मुख्य कारण हमारे गांवों में रोजगार का भारी संकट है। इसके बावजूद भी यह उपदेश दिया जाता है कि शिक्षित युवक गांव नहीं छोड़ें और शहरी युवकों को गांवों में जाने को कहा जाता है। यह उनके साथ मजाक है। अमेरिका और इंग्लैंड जैसे देशों में किसानों की संख्या 13 प्रतिशत से घटकर 7 प्रतिशत एवं 5 प्रतिशत तक रह गया है।

मैंने अपने विचार संक्षेप में रखे हैं ताकि पाठक समझ सकें और इनका महत्व समझें। आगे किसी विवाद में भाग लेने की मेरी इच्छा नहीं है।"

सचमुच, असली भारत, उनके ग्रामीण भारत की कितनी पहचान थी उन्हें। उनको चुनौति देना कितना मुश्किल था।